

डॉ० अभय कुमार शर्मा, उत्तर प्रदेश के विश्व प्रसिद्ध धार्मिक शहर वाराणसी के निवासी हैं। आपका जन्म वर्ष 1984 ई० में हुआ था। आपने अपनी संपूर्ण शिक्षा-दीक्षा वाराणसी से ही प्राप्त की है। शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में अपना भविष्य बनाने के उद्देश्य से आपने वर्ष 2012-13 में शिक्षाशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी से बी०एड० एवं वर्ष 2014-15 में शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से एम० एड० की उपाधि प्राप्त की। इसके उपरांत मार्च 2017 ई० में शिक्षाशास्त्र में पी-एच०डी० उपाधि हेतु शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी में प्रवेश प्राप्त करने में सफल हुए और अगस्त 2022 में अपने शोध प्रबंध को सफलतापूर्वक पूर्ण कर वर्ष के अंत तक उपाधि भी प्राप्त किया। डॉ० शर्मा का विद्वत्तापूर्ण समर्पण और योगदान सिर्फ शिक्षाशास्त्र में ही नहीं है, बल्कि इतिहास विषय में भी है। आपने इस विषय से एम०ए० की उपाधि प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त शिक्षाशास्त्र एवं इतिहास दोनों विषयों में यूजीसी नेट की अर्हता भी अर्जित की है। वर्तमान में डॉ० अभय कुमार शर्मा, महाराज बलवन्त सिंह पी०जी० कालेज, गंगापुर, वाराणसी (संबद्ध : महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी) के शिक्षाशास्त्र विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं।



डॉ० संजय कुमार वर्तमान में शुभवंती इंस्टिट्यूट ऑफ एजुकेशन, सीवान, बिहार (जे.पी. विश्वविद्यालय छपरा, बिहार से संबद्ध) के बी.एड. विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। आपने बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी (यू.पी.) से एम.एससी. (फोरेसिक साइंस), लखनऊ विश्वविद्यालय, यू.पी. से एम.एड., सीएसजेएमयू, कानपुर, यू.पी. से एम. फिल. किया है साथ ही यूजीसी-नेट-जेआरएफ भी उत्तीर्ण किया है। आपने पीएच.डी. की उपाधि आई.जी.एन.टी.यू., अमरकंटक, एम.पी. से पूर्ण की गई है। आपने विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार और कार्यशाला में प्रतिभाग किया है। आपने यूजीसी-केयर सूचीबद्ध जर्नल में तीन शोध पत्र प्रकाशित किए हैं और एक एनसीईआरटी-आरआईई भोपाल के पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। आपने यू.पी.आर.टी.ओ.यू., प्रयागराज, उत्तर प्रदेश से PGVGC, PGDEA, CSSED, CWED का प्रमाण-पत्र सफलतापूर्वक प्राप्त किया है। उन्होंने गुवाहाटी विश्वविद्यालय, असम से ओ.बी.ई. पर एक सप्ताह का एफ.डी.पी. में प्रतिभाग किया है।



मनीषा सिंघल वर्तमान में, मां शारदा विद्यापीठ, शेरा, बुलंदशहर के शिक्षाशास्त्र विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर के रूप में 8 वर्ष से कार्यरत हैं। आपने अपनी स्नातक एवं बी० एड० की उपाधि चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय से पूरी की। इसके बाद उन्होंने हिंदी और शिक्षा शास्त्र में मास्टर की डिग्री भी चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय से ही प्राप्त की। इसके अतिरिक्त संस्कृत में मास्टर डिग्री राजश्री टंडन विश्वविद्यालय से प्राप्त की। आपने अपनी शिक्षण यात्रा की शुरुआत श्री राम पब्लिक स्कूल से एक अध्यापक के रूप में की। इसके बाद इन्होंने वेंकटेश्वर इंस्टीट्यूट आफ कंप्यूटर साइंस एंड टेक्नोलॉजी में प्रवक्ता के रूप में कार्य किया। आपके कई शोध पत्र प्रतिष्ठित राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जर्नल्स में प्रकाशित हो चुके हैं। साथ ही विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में शोध-पत्र भी प्रस्तुत किए।



AD EDUXIAN PUBLICATION
N2/136 D Gh RK Puram Colony, Karmajeetpur,
Sundarapur, Varanasi (Uttar Pradesh) India
Mob. No.: 9415940465



BASIC ELEMENTS OF EDUCATIONAL PSYCHOLOGY
(शैक्षिक मनोविज्ञान के आधारभूत तत्व)

Dr. Abhay Kumar Sharma
Manisha Singhal
Dr. Sanjay Kumar

BASIC ELEMENTS OF EDUCATIONAL PSYCHOLOGY

(शैक्षिक मनोविज्ञान के आधारभूत तत्व)



Chief Editor
Dr. Abhay Kumar Sharma

Editors
Manisha Singhal
Dr. Sanjay Kumar

BASIC ELEMENTS OF EDUCATIONAL PSYCHOLOGY

(शैक्षिक मनोविज्ञान के आधारभूत तत्व)

Chief Editor

Dr. Abhay Kumar Sharma

M.A.(History), M.Ed. & Ph.D. (Education)

Assistant Professor (Education)

Maharaj Balwant Singh P.G. College,

Gangapur, Varanasi.

(Affiliated: Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi, U.P.)

Editors

Dr. Sanjay Kumar

Assistant Professor Department of

B.Ed. Subhwanti Institute of

Education, Siwan, Bihar

Manisha singhal

Assistant professor

Maa Sharda Vidyapeeth Sehra

Bulandshahr

B.Ed. college

Dear Authors, All rights are reserved in this book. No any such type of Part of this book may be reproduced, stored in retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic devices, or any AI equipment tools, without the prior written permission of the authors or publisher, if it will found doing so it will be considered as automatically rejected.

BASIC ELEMENTS OF EDUCATIONAL PSYCHOLOGY
(शैक्षिक मनोविज्ञान के आधारभूत तत्व)

Chief Editor
Dr. Abhay Kumar Sharma

Editors
Dr. Sanjay Kumar & Manisha singhal

ISBN: 978-81-976727-2-9
Year of Publication: September 2024

Front Cover:
Perfect Solution, Buxipur, Gorakhpur.

PUBLISHER:
AD EDUXIAN PUBLICATION, VARANASI
Website: www.educarepublication.com

Printed by
Shree Ganpati Printer
Sarainandan, Khojwan, Varanasi

Price: 1050 Rs.
All rights reserved
Copyright ©Authors of chapters

प्राक्थन

शैक्षिक मनोविज्ञान दो शब्दों का संयोजन है- शिक्षा और मनोविज्ञान। शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों/ व्यक्तियों के व्यवहार में परिवर्तन लाया जाता है जबकि मनोविज्ञान वह विज्ञान जो व्यक्तियों के व्यवहार का वास्तविक परिस्थितियों में अध्ययन करता है। इस प्रकार हम यह देखते हैं की शैक्षिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो शिक्षा प्रदान करने की वास्तविक परिस्थितियों में विद्यार्थियों के व्यवहार का अध्ययन करता है। इससे शिक्षा व्यवस्था से जुड़े सभी हितधारकों को विद्यार्थियों के व्यवहार को जानने में सहायता प्राप्त होती है। कक्षा में शिक्षण के दौरान शिक्षक को अपने विद्यार्थियों के व्यवहार को समझकर ही उचित रणनीतियों एवं शिक्षण विधियों को अपनाना होता है, इस हेतु शिक्षा मनोविज्ञान का अध्ययन प्रशिक्षु-शिक्षकों के लिए अति आवश्यक होता है। इसके अध्ययन से प्रशिक्षु-शिक्षक शैक्षिक मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रत्ययों एवं आधारभूत सिद्धांतों से अवगत होते हैं। साथ ही शिक्षण प्रक्रिया में निहित व्यावहारिक प्रयोगों के क्रियाविधि की भी जानकारी प्राप्त करते हैं। जिसका प्रयोग उन्हें अपने वास्तविक अध्यापन के दौरान करना होता है।

प्रस्तुत संपादित पुस्तक में शैक्षिक मनोविज्ञान से संबंधित आधारभूत सम्प्रत्ययों को सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक से स्नातक स्तर के शिक्षा शास्त्र एवं बी०एड० के विद्यार्थियों को अपने ज्ञान वर्धन में सहायता मिलेगी।

प्रस्तुत पुस्तक में जिन लेखकों ने अपना योगदान दिया है, वे शिक्षा जगत के प्रतिष्ठित विचारक, शिक्षक, प्रशिक्षक और शोधकर्ता हैं, जो शिक्षा प्रणाली के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। इनमें से कुछ लेखक शिक्षा अथवा शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में विगत कई वर्षों से अध्ययन-अध्यापन का कार्य करते आ रहे हैं। इनका यह योगदान शैक्षिक मनोविज्ञान के आधारभूत तत्व के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण व्यावहारिक और दूरदर्शी अंतर्दृष्टि प्रदान करेगा।

हमारा मानना है कि यह संपादित पुस्तक शिक्षकों और शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत सभी हितधारकों के लिए एक सहायक सामग्री के रूप में कार्य करेगी। इसका उद्देश्य शिक्षा-मनोविज्ञान से सम्बंधित चर्चा को बढ़ावा देना है।

अंत में, हम उन सभी योगदानकर्ताओं के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने हमारे इस प्रयास हेतु अपना मूल्यवान समय और अपनी विषय विशेषज्ञता को समर्पित किया। साथ ही, हम इस पुस्तक के पाठकों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, जो शैक्षिक मनोविज्ञान के आधारभूत तत्वों से अवगत होकर भारतीय शिक्षा व्यवस्था में अपना महत्वपूर्ण योगदान देंगे। साथ ही हमारा यह भी मानना है कि आप इससे लाभान्वित होकर राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था एवं यहाँ के विद्यार्थियों की उज्वल भविष्य हेतु अपना सर्वोत्कृष्ट योगदान देंगे।

सम्पादक

डॉ० अभय कुमार शर्मा

डॉ० संजय कुमार

मनीषा सिंघल

विषय सूची

क्र०	विषय	
1.	The Relation between Education and Psychology Kumari Shashi	1-9
2.	शिक्षा मनोविज्ञान की अध्ययन विधियाँ लवलेश कुमार विश्वकर्मा	10-17
3.	वंशानुक्रम और वातावरण डा० शाईस्ता बेगम	18-24
4.	Heredity And Environment: An Overview Dr. Hemant Kumar Singhal	25-31
5.	वृद्धि और विकास डॉ० धर्मेन्द्र कुमार	32-43
6.	वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया डॉ. सविता कुमारी	44-48
7.	Process Of Growth And Development Anjana Kumari	49-55
8.	संज्ञानात्मक विकास रीना कुमारी	56-63
9.	Cognitive Development: A Conceptual Functioning Of Intellect Dr. Priya	64-70
10.	संवेगात्मक विकास (Emotional development) डॉ० कुमारी सुनीता सिंह	71-77
11.	Understanding Emotional Development: From Infancy to Adulthood Shumila fatma Naqvi	78-83
12.	विकास की अवस्थाएं, शैशवावस्था प्रो० किरन सिंह,	84-88
13.	किशोरावस्था का मनोविज्ञान प्रो०(डा)संध्या उपाध्याय	89-95
14.	शारीरिक विकास (Physical Development) कुमारी शशि	96-105
15.	नैतिक विकास (Moral Development) डॉ० मंजय कुमार	106-114
16.	Nature and nurture exploring the influence of genetics and environment. Pradeep Kumar	115-117
17.	अधिगम या सीखना डॉ० लोकेन्द्र सिंह और विनोद कुमार	118-121
18.	Learning (Meaning, Nature, and Modes of Learning) Dr. Jaina Pandey	122-128
19.	Learning: Planting the seeds of knowledge Ms. Prerna A. Baria	129-136
20.	संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्त डॉ० विशेष श्रीवास्तव	137-140
21.	Cognitive Theories Of Learning Dr. Kavita Gupta	141-148

22. Transfer Of Learning Noushia Tabassum	149-158
23. Intelligence Mr.Ashish Srivastava	159-167
24. व्यक्तित्व डॉ.सुनील कुमार सिंह	168-171
25. Measurement of Personality Dr. Vinay Kumar Singh	172-179
26. Measurement of Motivation Dr. Kumari Sunita singh	180-187
27. समावेशी शिक्षा लवलेश कुमार विश्वकर्मा	188-199
28. Exceptional Children Dr. Reena Rai	200-210
29. मानसिक स्वास्थ्य एवं आरोग्यता डॉ. अरुण कुमार मिश्र	211-217
30. Measurement Of Mental Health And Hygiene Noushia Tabassum	218-226
31. सृजनात्मकता डॉ. जगदीश कुमार	227-231
32. Creativity Dr. Nikhat Afroz	232-236
33. निर्देशन मनोविज्ञान Manisha Singhal	237-257
34. रुचि, अभिक्षमता, अभिवृत्ति तथा मूल्य डॉ. रीना राय	258-265
35. Minimising Academic Stress for Higher Secondary Students in the light of NEP 2020 Abha Kumari	266-270

The Relation between Education and Psychology

Kumari Shashi
Assistant professor
Mundeshwari College for Teacher Education, Patna

Introduction

The human quest for knowledge and growth lies at the intersection of two fundamental disciplines: education and psychology. While education serves as the architect, meticulously crafting the blueprint for learning, psychology acts as the illuminator, shedding light on the intricate workings of the human mind as it absorbs, processes, and retains information. This paper delves into the profound interconnection between these fields, exploring how they inform and enrich each other, ultimately paving the way for a more holistic and effective approach to learning. Creating a positive learning environment is paramount for effective education. The paper explores how principles from behaviourism and cognitive-behavioural therapy (CBT) can be leveraged for classroom management and behaviour modification. Positive reinforcement and extinction from operant conditioning are discussed alongside CBT techniques for addressing disruptive behaviours. Building positive relationships with students is identified as another crucial aspect, emphasizing the importance of getting to know students, fostering a safe and supportive environment, establishing clear expectations, and using positive reinforcement. The burgeoning presence of educational technology necessitates a consideration of psychological principles. Exploring cognitive load theory, advocating for using technology to present information clearly, utilize multimedia elements effectively, and provide opportunities for practice and spaced repetition is also very important. Digital literacy, encompassing critical thinking and information evaluation skills, is presented as an essential skill for students navigating the digital world. Teacher well-being and competence are critical factors influencing student success. Understanding learning theories, motivation theories, and behaviour management techniques empowers educators to create effective learning environments and foster positive relationships with students. Social-emotional learning (SEL) principles are introduced, along with strategies for recognizing and supporting students' socio-emotional well-being. The paper also acknowledges the importance of managing stress and promoting teacher well-being.

Definitions

- **Education:** Education transcends the confines of classrooms and textbooks. Woolfolk's (2019) definition, capturing the "deliberate process of imparting knowledge, skills, or values to others" (p. 3), provides a foundational understanding. However, education encompasses a much broader spectrum. John Dewey, a prominent educational philosopher, emphasized the importance of "learning by doing" and fostering a spirit of inquiry within students (Dewey, 1938). This experiential dimension complements the traditional notion of knowledge transmission, highlighting the active role of the learner in constructing meaning and developing critical thinking skills. While John Dewey's emphasis on "learning by doing" (1938) sheds light on the experiential side of education, other educational philosophies offer valuable perspectives. Constructivism, for example, posits that learners actively construct knowledge based on their prior experiences and interactions with the world around them (Piaget, 1952). This necessitates a

shift from teacher-centered instruction to student-centered approaches that encourage exploration, inquiry, and collaboration.

Furthermore, proponents of informal learning highlight the vast educational potential that lies outside the confines of classrooms. Learning can occur in museums, libraries, community centers, and even through everyday interactions and experiences. Embracing informal learning encourages educators to create connections between classroom instruction and the real world, fostering a sense of relevance and purpose in students' minds.

Moreover, Paulo Freire, a champion of critical pedagogy, argued that education should not be a passive transmission of preordained knowledge but a transformative dialogue that empowers individuals to question, analyze, and challenge the status quo (Freire, 2000). This perspective underscores the potential of education to foster not just intellectual growth but also social and civic responsibility.

- **Psychology:** Psychology, as defined by the American Psychological Association (2015), is "the scientific study of mind and behavior" (p. 1). It delves into the complexities of human cognition, encompassing not just how we learn and think but also how emotions, motivations, and social interactions influence these processes. Educational psychology, a specialized branch, bridges the gap between these two disciplines. It leverages psychological insights to understand how individuals learn most effectively and translates this knowledge into practical strategies for educators. Psychology offers a wider lens than just cognition when examining learning. Humanistic psychology, for instance, emphasizes the importance of the whole person, including their emotions, values, and self-concept, in the learning process (Maslow, 1943). This perspective reminds educators to create a nurturing and supportive learning environment that caters to the emotional well-being of students alongside their academic needs. Social psychology delves into how social interactions and group dynamics influence learning. Understanding concepts like collaboration, peer pressure, and classroom climate empowers educators to foster positive social interactions and leverage the power of cooperative learning to enhance knowledge retention and social skills development.

The Relation between Education and Psychology

The following sections explore specific areas where education and psychology intersect:

1. Historical Overview: A Foundation for Educational Psychology

The formal study of the relationship between education and psychology emerged in the late 19th and early 20th centuries. Pioneering figures like Edward Thorndike, John Dewey, and Lev Vygotsky laid the foundation for the field of educational psychology. Thorndike's work on operant conditioning (discussed later) provided insights into how learning can be reinforced through rewards and punishments. Dewey, a proponent of progressive education, emphasized the importance of active learning and student-centered approaches. Vygotsky's sociocultural theory, a cornerstone of educational psychology, highlighted the role of social interaction and culture in learning. These early contributions established the importance of psychology in understanding and optimizing educational practices.

2. Cognitive Development and Learning: A Journey Through Stages

Cognitive development refers to the process by which children's thinking abilities mature over time. Psychologists like Jean Piaget and Lev Vygotsky proposed theories that have significantly influenced educational approaches.

- **Piaget's Stages of Cognitive Development:** This theory proposes that children progress through distinct stages of cognitive development, from sensorimotor to formal operational. Each stage is characterized by specific cognitive abilities.
 - **Sensorimotor Stage (Birth to 2 Years):** Infants learn about the world through their senses and motor actions. Educators can create stimulating environments with age-appropriate toys and activities that encourage exploration and manipulation.
 - **Preoperational Stage (2 to 7 Years):** Children develop symbolic thought and language skills but struggle with logical reasoning and abstract concepts. Play-based learning and storytelling are effective strategies during this stage.
 - **Concrete Operational Stage (7 to 11 Years):** Children demonstrate improved logic and can manipulate concrete objects to solve problems. Hands-on activities, manipulatives, and experiments are ideal for this stage.
 - **Formal Operational Stage (11 Years and Up):** Abstract thinking and hypothetical reasoning emerge. Students can engage in complex problem-solving, critical thinking, and analysis. Open-ended discussions, debates, and research projects encourage the development of these skills.
- **Vygotsky's Sociocultural Theory:** This theory emphasizes the role of social interaction and culture in learning. Vygotsky introduced the concept of the Zone of Proximal Development (ZPD), which refers to the range of tasks that are too difficult for a learner to complete independently but can be mastered with support. Educators can utilize scaffolding, a teaching strategy that provides temporary assistance tailored to the learner's needs, to help students reach their full potential. For example, a teacher might model a problem-solving strategy before allowing students to tackle similar problems independently.

By understanding these theories, educators can tailor instruction to meet the specific cognitive abilities of students at different developmental stages.

3. Motivation and Learning: The Fuel for Engagement

Motivation is a crucial factor in student learning. Psychological theories offer valuable insights into what motivates students and how educators can create engaging learning environments.

- **Maslow's Hierarchy of Needs:** Abraham Maslow proposed a hierarchy of human needs, ranging from basic physiological needs (food, shelter) to self-actualization (personal growth). Educators can utilize this framework by ensuring that basic needs are met (e.g., providing healthy lunches), fostering a safe and supportive learning environment, and then creating opportunities for students to fulfill higher-order needs such as belonging, esteem, and self-actualization.

- **Intrinsic vs. Extrinsic Motivation:** Intrinsic motivation refers to the desire to learn for the sake of learning itself, fueled by curiosity, enjoyment of the subject matter, and a sense of accomplishment. Extrinsic motivation, on the other hand, is driven by external rewards or punishments, such as grades, praise, or competition. While extrinsic motivation can be a useful tool in some situations, fostering intrinsic motivation is essential for long-term learning and engagement.

Educators can promote intrinsic motivation by:

- * **Creating a Culture of Curiosity:** Encourage students to ask questions, explore different topics, and make connections between their learning and the real world.
- * **Providing Choices and Autonomy:** Offer students some control over their learning by incorporating choice boards, allowing them to select projects or research topics that interest them, and encouraging self-directed learning.
- * **Fostering a Growth Mindset:** Help students develop the belief that intelligence and abilities can be developed through effort and perseverance.
- * **Providing Opportunities for Mastery:** Design learning experiences that allow students to experience success and build confidence in their abilities.
 - **Self-Determination Theory:** Developed by Deci and Ryan, this theory proposes that three core psychological needs – autonomy, competence, and relatedness – are essential for motivation.
 - **Autonomy:** The need to feel in control of one's choices and actions.
 - **Competence:** The desire to feel effective and capable in completing tasks.
 - **Relatedness:** The need to feel connected to others and have a sense of belonging.

Educators can create a classroom environment that supports these needs by:

- * **Allowing students some control over their learning:** This could involve offering choices in assignments, allowing for student-led discussions, or incorporating student interests into lesson plans.
- * **Providing opportunities for students to demonstrate mastery:** This could involve differentiated instruction, formative assessments that provide feedback and opportunities for improvement, and celebrating student successes.
- * **Building positive relationships with students:** Creating a safe and supportive classroom environment where students feel valued and respected is essential for fostering a sense of relatedness.

By understanding these motivational theories and implementing strategies that cater to both intrinsic and extrinsic motivators, educators can create a learning environment that ignites students' passion for learning and fuels their academic success.

4. Individual Differences and Diversity: Tailoring Education for All

Psychology emphasizes the importance of individual differences in learning styles, intelligence, and personality. Educational psychologists use this knowledge to create inclusive learning environments that cater to diverse needs.

- **Learning Styles:** Different learners have distinct preferences for how they receive and process information. Some may be visual learners, who benefit from diagrams and graphic organizers. Others may be auditory learners who learn best through

lectures and discussions. Kinesthetic learners thrive on hands-on activities and movement. Understanding these preferences allows educators to use a variety of instructional methods to cater to different learning styles.

- **Intelligence:** Intelligence is a complex construct, and there are multiple intelligences beyond traditional academic intelligence. Howard Gardner's theory of multiple intelligences proposes eight intelligences, including logical-mathematical, linguistic, musical, bodily-kinesthetic, spatial, interpersonal, intrapersonal, and naturalist. By acknowledging these diverse intelligences, educators can create learning experiences that cater to students' strengths and allow them to showcase their intelligence in various ways.
- **Personality:** Personality traits can also influence how students learn. For example, extroverted students may thrive in collaborative learning environments, while introverted students might benefit from opportunities for independent work and reflection. Understanding students' personalities allows educators to create a learning environment that feels comfortable and supportive for all.

In addition to these factors, educators should also consider cultural and socioeconomic backgrounds when tailoring instruction. Culturally responsive teaching acknowledges the diverse backgrounds and experiences of students and incorporates them into the curriculum. Furthermore, understanding the challenges faced by students from low-income backgrounds allows educators to provide additional support and resources to ensure all students have an equal opportunity to succeed.

5. Classroom Management and Behavior Modification: Creating a Positive Learning Environment

Maintaining a positive and productive learning environment is essential for effective teaching and learning. Psychological principles from behaviorism and cognitive-behavioral therapy (CBT) inform classroom management techniques and strategies for promoting positive behavior and addressing disruptive conduct.

- **Behaviorism:** This school of thought emphasizes the role of consequences in shaping behavior. Operant conditioning principles, such as positive reinforcement (providing rewards for desired behaviors) and extinction (allowing unwanted behaviors to diminish without reinforcement), can be used to promote positive behavior in the classroom. However, it's important to note that behaviorism should be used ethically and in conjunction with other strategies.
- **Cognitive-Behavioral Therapy (CBT):** CBT techniques can be adapted for classroom use to address disruptive behaviors. These may involve:
 - Identifying negative thought patterns that contribute to disruptive behavior.
 - Developing coping mechanisms for managing emotions that might lead to outbursts.
 - Teaching social skills and positive communication strategies.

For example, a student who acts out due to anxiety might benefit from relaxation techniques and identifying triggers for their anxiety.

- **Building Positive Relationships:** Positive relationships between teachers and students are essential for effective classroom management. When students feel respected, valued, and supported by their teachers, they are more likely to be engaged and well-behaved. Educators can build positive relationships by:
 - **Getting to know their students:** This includes learning about their interests, strengths, and challenges.
 - **Creating a safe and supportive classroom environment:** This means fostering a climate of trust and respect where students feel comfortable taking risks and making mistakes.
 - **Providing clear expectations and routines:** Students thrive on predictability. Establishing clear expectations for behavior and routines helps students understand what is expected of them.
 - **Using positive reinforcement:** Catch students being good! Acknowledge and praise positive behaviors to encourage them.

By combining these strategies, educators can create a positive and productive learning environment where students feel safe, supported, and motivated to learn.

6. Assessment and Evaluation: Measuring Progress and Informing Instruction

Assessment is an ongoing process of gathering information about student learning. Psychological theories on measurement and psychometrics guide the development of reliable assessment tools. These tools help educators measure student learning, identify areas of strength and weakness, and inform instructional decisions.

- **Formative Assessment:** This type of assessment occurs throughout the learning process and provides ongoing feedback to students and educators. Examples include exit tickets, quizzes, observations, and class discussions. Formative assessment allows educators to adjust instruction and provide targeted support to meet individual student needs.
- **Summative Assessment:** This type of assessment occurs at the end of a unit or course to measure student learning outcomes. Examples include standardized tests, essays, and projects. Summative assessment helps educators evaluate student mastery of learning objectives and inform grading decisions.

7. Special Education and Inclusive Practices: Catering to Diverse Needs

Educational psychology plays a crucial role in supporting students with diverse needs. Psychologists collaborate with educators to assess students with learning disabilities, emotional and behavioral disorders, and other exceptionalities. They work together to develop Individualized Education Programs (IEPs) that outline specific learning goals, accommodations, and modifications to ensure all students have equal access to learning.

Understanding psychological disorders and disabilities is crucial for creating inclusive learning environments. This means providing differentiated instruction, scaffolding support, and access to appropriate resources to ensure all students can participate and succeed in the classroom.

8. Educational Technology and Digital Learning: Leveraging Technology for Enhanced Learning

Digital learning tools and technology have become an integral part of the educational landscape. While these tools offer a wealth of potential benefits, it's crucial to consider the psychological principles of cognitive load theory and digital literacy to ensure effective use.

- **Cognitive Load Theory:** This theory suggests that working memory has limited capacity. Educational technology can be used to reduce cognitive load by presenting information in a clear and concise manner, using multimedia elements to enhance understanding, and providing opportunities for practice and spaced repetition.
- **Digital Literacy:** In today's digital world, it's essential for students to develop critical thinking and information evaluation skills. This allows them to navigate the online world safely and responsibly. Educators can integrate digital literacy skills into the curriculum, teaching students how to evaluate online sources, identify bias, and practice responsible online behavior.

By understanding these psychological principles, educators can leverage technology to enhance learning, personalize instruction, and create engaging learning experiences for all students.

9. Teacher Training and Professional Development: Empowering Educators

The well-being and competence of teachers are critical factors influencing student success. Psychology can inform teacher training and professional development programs, equipping educators with the skills and knowledge to create effective learning environments. Understanding psychological principles can empower educators in several ways:

- **Improved Pedagogical Skills and Strategies:**
 - Knowledge of learning theories (e.g., Piaget's stages, Vygotsky's ZPD) allows educators to tailor instruction to meet the developmental needs of their students.
 - Understanding motivation theory helps educators foster intrinsic motivation and create engaging learning environments.
 - Techniques from behaviorism and CBT can be used for effective classroom management.
- **Fostering Positive Teacher-Student Relationships:**
 - Social-emotional learning (SEL) principles, informed by psychology, can be used to create a classroom climate that fosters trust, respect, and positive communication between teachers and students.
 - Understanding communication styles and building rapport with students from diverse backgrounds are crucial for building strong relationships.
- **Supporting Students' Socio-Emotional Well-being:**
 - Educators can recognize signs of anxiety, depression, or other mental health challenges in students.

- Strategies from positive psychology, such as mindfulness techniques, can be integrated into the classroom to promote student well-being.
- Educators can collaborate with school psychologists and counselors to provide support for students facing emotional challenges.
- **Managing Stress and Promoting Teacher Well-being:**
 - The teaching profession can be demanding. Educators themselves benefit from understanding stress management techniques like relaxation exercises, time management, and seeking social support.
 - Creating a positive and supportive school environment that prioritizes teacher well-being is essential for educator retention and student success.

10. Educational Policy and Reform: A Psychological Lens on Education Systems

Psychological research plays a vital role in informing educational policy and reform. By understanding how students learn, what motivates them, and the factors that influence their success, policymakers can develop educational initiatives that promote effective teaching and learning. Here are some examples:

- **Curriculum Development:** Psychological principles can inform the development of age-appropriate curriculum that aligns with cognitive development stages and fosters critical thinking skills.
- **Assessment Practices:** Understanding measurement theory and psychometrics is crucial for developing reliable and valid assessments that accurately measure student learning.
- **Addressing Educational Disparities:** Psychological research on social-emotional learning and cultural responsiveness can inform policies and practices that address educational disparities and ensure equitable access to quality education for all students.

By integrating psychological insights into educational policy, policymakers can create educational systems that nurture well-rounded individuals and prepare them for success in a complex and ever-changing world.

Conclusion: A Symbiotic Relationship

The relationship between education and psychology is multifaceted and dynamic, with each discipline informing and enriching the other. By integrating psychological principles into educational theory and practice, educators can create inclusive learning environments that foster cognitive, socio-emotional, and behavioral development. Similarly, psychologists contribute valuable insights to educational settings, guiding policies and practices that support student success and well-being. Ultimately, the interconnection of education and psychology underscores the importance of a holistic approach to promoting lifelong learning and academic achievement.

This analysis provides a comprehensive overview of the intricate relationship between education and psychology, highlighting how principles from both disciplines intersect and influence each other in theory and practice.

References:

1. Woolfolk, A. E. (2019). Educational Psychology (14th ed.). Pearson.
2. Ormrod, J. E. (2019). Educational Psychology: Developing Learners (9th ed.). Pearson.
3. Sternberg, R. J., & Zhang, L. F. (Eds.). (2014). Perspectives on Thinking, Learning, and Cognitive Styles. Routledge.
4. McLeod, S. A. (2020). Vygotsky - Simply Psychology. Retrieved from <https://www.simplypsychology.org/vygotsky.html>
5. Woolfolk, A. E., Winne, P. H., & Perry, N. E. (2016). Educational Psychology (6th Canadian ed.). Pearson.
6. Anderman, E. M., & Anderman, L. H. (Eds.). (2019). Psychology of Classroom Learning: An Encyclopedia. Macmillan Reference USA.
7. American Psychological Association. (2015). APA Handbook of Educational Psychology (Vol. 1). American Psychological Association.
8. Snowman, J., & McCown, R. (2018). Psychology Applied to Teaching (15th ed.). Cengage Learning



शिक्षा मनोविज्ञान की अध्ययन विधियाँ

लवलेश कुमार विश्वकर्मा
शोध छात्र, शिक्षा संस्थान
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
झाँसी (उ०प्र०)

‘मनोविज्ञान’ की उत्पत्ति पाश्चात्य दर्शन से 1990 ई० में हुयी थी। प्रथम शैक्षिक मनोवैज्ञानिक एडवर्ड ली थार्नडाइक को माना जाता है। मनोविज्ञान की जननी दर्शन शास्त्र को माना जाता है। सर्वप्रथम कडोल्फ गाइकिल ने अपनी पुस्तक ‘साइकोलॉजिया’ में प्रथम बार ‘Psychology’ शब्द का प्रयोग किया था। साइकोलॉजिया को मनोविज्ञान का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। जिसका प्रकाशन 1590 ई० में किया गया था। मनोविज्ञान का जनक अरस्तु को माना जाता है जबकि आधुनिक मनोविज्ञान का जनक ‘विलियम वुण्ट’ को माना जाता है। कडोल्फ गाइकिल की पुस्तक साइकोलॉजिया जो शिक्षा मनोविज्ञान का प्रथम ग्रन्थ था। इसमें प्रयुक्त शब्द Psychology की व्याख्या मनोवैज्ञानिकों ने समय-समय पर अलग-अलग प्रस्तुत किया है जिसका वर्णन निम्नलिखित है।

1. मन या मस्तिष्क का विज्ञान :-

मध्ययुग में इटली के मनोवैज्ञानिक पम्पोनॉजी ने मनोविज्ञान को मन या मस्तिष्क के विज्ञान के रूप में व्याख्या प्रस्तुत किया था। इन्होंने Psychology शब्द की व्याख्या प्रस्तुत किया था। इन्होंने Psychology शब्द की व्याख्या करते हुए वर्णन किया है कि Psychology दो शब्दों Psy तथा Logus से मिलकर बना है जिससे Psy का अर्थ मन तथा Logus का तात्पर्य विज्ञान से है, इस प्रकार मनोविज्ञान मन या मस्तिष्क का विज्ञान है। मस्तिष्क में 5 ज्ञानेन्द्रियां विद्यमान होती है जो ज्ञान की उत्पत्ति करती है। जॉन लॉक, रीचेरी तथा थॉमस रीड महोदय ने भी पम्पोनॉजी की व्याख्या का समर्थन किया था।

2. आत्मा का विज्ञान :-

प्राचीन में मनोविज्ञान को आत्मा का विज्ञान माना जाता है जिसके समर्थक अरस्तुख प्लेटो, डेकार्टे इत्यादि थे। इन्होंने Psychology शब्द की व्याख्या करते हुए कहा था कि Psychology दो शब्दों Psy तथा Logus से मिलकर बना है जिससे Psy का अर्थ आत्मा तथा Logus का अर्थ अध्ययन है। इस प्रकार प्रारम्भ में मनोविज्ञान को ‘आत्मा का अध्ययन’ माना गया था।

3. चेतना/चेतन अनुभूति का विज्ञान :-

16 वीं शताब्दी में जर्मनी के मनोवैज्ञानिक विलियम वुण्ट ने साइकोलॉजी शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि Psychology दो शब्दों Psy तथा Logus से अर्थ अध्ययन है। इस प्रकार मनोविज्ञान चेतना अथवा चेतन अनुभूति का विज्ञान है। मनोवैज्ञानिक विलियम वुण्ट की इस विचार धारा का समर्थन जेम्स सली, वाइन तथा विलियम जेम्स ने भी किया था।

4. व्यवहार का विज्ञान :-

20 वीं शताब्दी में जॉन ब्रोड्स वाटसन जो एक अमेरिकी प्रोफेसर थे। इन्होंने साइकोलॉजी शब्द की व्याख्या प्रस्तुत किया जिसमें इन्होंने कहा था कि साइकोलॉजी (Psychology) दो शब्दों से Psy तथा Logus से मिलकर बना है जिसमें Psy का अर्थ व्यवहार तथा Logus का अर्थ अध्ययन है। इस प्रकार 20 वीं शताब्दी में मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान कहा गया। इसका समर्थन व्परस फ्रेडरिक स्किनर, क्लार्क हल, खान प्रट्रोविच पावलव तथा विलियम मैक्डूगल इत्यादि ने किया था। इस मत को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त हुयी थी।

व्यवहार शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1905 ई० में विलियम मैक्डूगल की पुस्तक ‘Outline of psychology’ में किया गया था जिसका तात्पर्य मानसिक स्थिति का बाह्य

रूप से लिया गया था। व्यवहारवाद की सर्वप्रथम घोषणा कोलम्बिया विश्वविद्यालय से 1912-13 में किया गया था। व्यवहारवाद के जनक के रूप में जे0 वी0 वाटसन को जाना जाता है।

मनोविज्ञान की प्रथम प्रयोगशाला 1879 ई0 में जर्मनी के लिपजिग नगर के लिपजिग विश्वविद्यालय में विलियम वुष्ट के द्वारा किया गया था जिसका वर्तमान नाम कार्ल मार्क्स विश्वविद्यालय कर दिया गया है। इस प्रयोगशाला में संवेदना विषय में अध्ययन किया गया तथा अतः दर्शन विधि का प्रतिपादन किया गया था। 1880 ई0 में मनोविज्ञान को स्वतंत्र विषय का दर्ज प्रदान किया गया था।

मनोविज्ञान की द्वितीय प्रयोगशाला 1890 ई0 में अमेरिका के मसाचूसेट नामक स्थान पर विलियम जेम्स ने किया था। इन्होंने चेतना के विषय में अध्ययन किया था।

भारत में सर्वप्रथम 1915 ई0 में सन गुप्त जी के द्वारा कलकत्ता में मनोविज्ञान की प्रथम प्रयोगशाला स्थापित की गयी थी लेकिन स्वतंत्रता आन्दोलन चलने के कारण इसका विकास नहीं हो सका था। देश की स्वतंत्रता के पश्चात वर्ष 1947 ई0 में देश के प्रत्येक राज्यों में मनोविज्ञान प्रयोगशालायें स्थापित की गयी थी तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के सुझावों के आधार पर प्रत्येक जिले में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किये गये तथा उनमें एक मनोविज्ञान केन्द्र के कण में एक विभाग खोला गया था।

जॉन डी.वी ने 1896 ई0 में अमेरिका के शिकागो विश्व विद्यालय में एक प्रयोगात्मक स्कूल की स्थापना किया जिसमें बालको के कार्य व्यवहार, जागरूकता तथा उनकी योग्यता के बारे में अध्ययन किया जाता था।

आधुनिक समय में शिक्षा और मनोविज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध है शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार तथा उसकी विभिन्न समस्याओं का अध्ययन शैक्षिक परिस्थितियों में करता है। शिक्षा शास्त्र और शिक्षा-मनोविज्ञान को कुछ कारणों से विशुद्ध विज्ञान की श्रेणी में नहीं रखा जाता है क्योंकि इनके नियम अटल होते हैं और उनका सम्बन्ध भौतिक पदार्थों से होता है जबकि शिक्षा एक मानवीय विषय है। यह मानव-समाज तथा शैक्षिक क्रिया-कलापों से सम्बन्ध रखती है।

शिक्षा मनोविज्ञान को अब विज्ञान की श्रेणी में रखा जाने लगा है क्योंकि इसमें कल्पना, अनुमान तथा अन्धविश्वास को त्याग करके अपने कार्यों के लिए वैज्ञानिक विधि को अपनाया है।

वैज्ञानिक विधि :-

यह एक अध्ययन पद्धति है जो वैज्ञानिक नियमों के अन्तर्गत संचालित होती है। वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग प्राकृतिक या भौतिक वस्तुओं के विषय में अध्ययन करने के लिए ही किया जा सकता है। यह एक भ्रान्ति है। सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। वैज्ञानिक पद्धति की कुछ परिभाषायें निम्नलिखित हैं।

1. समाज शास्त्री श्री अगस्त कॉम्टे के अनुसार "वैज्ञानिक पद्धति में धर्म, दर्शन या कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत पर्यवेक्षण परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित कार्य प्रणाली को वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं।"

2. श्री जार्ज-ए-लुण्डवर्ग के अनुसार " सामाजिक वैज्ञानिकों में यह विश्वास पुष्ट हो गया है कि उनके सम्मुख जो समस्याएँ हैं, उनका हल यदि होना है तो सामाजिक घटनाओं के निष्पक्ष एवं व्यवस्थित निरीक्षण, सत्यापन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण द्वारा ही होगा। इसी दृष्टिकोण को, उसके अति ठोस एवं सफल रूप को मोटे तौर पर वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है।"

शिक्षा मनोविज्ञान अपनी समस्याओं के अध्ययन एवं शोध कार्यों में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करता है। इस विधि में विश्वसनीयता, यथार्थता, वस्तुनिष्ठता तथा निष्पक्षता निहित है। वैज्ञानिक पद्धति में सत्यापनीयता (Verificability), निश्चयात्मकता (Definiteness), वस्तुनिष्ठता (Objectivity), सामान्यतया (Generality) तथा पूर्व कथनीयता (Predictability) मौजूद होती है। वैज्ञानिक पद्धति में अध्ययन कर्ता

अवलोकन या निरीक्षण द्वारा सत्य परख करके, विषय से सम्बद्ध कोई निकालकर नियम का प्रतिपादन करता है।

शिक्षा मनोविज्ञान की विधियाँ

शिक्षा मनोविज्ञान की अध्ययन विधियों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है।

आत्मगत/आत्मनिष्ठ विधियाँ (Subjective Methods): इस विधि के अन्तर्गत व्यक्ति स्वयं अपने व्यवहार की व्याख्या और विश्लेषण करता है। इसके अन्तर्गत अतः दर्शन विधि और गाथा वर्णन विधि प्रमुख है।

वस्तुगत/वस्तुनिष्ठ विधियाँ (Objective Methods)

इस विधि में दूसरो के द्वारा तथ्यों का संग्रह किया जाता है तथा उनका विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं। वस्तुनिष्ठ विधियों के अन्तर्गत बहुत सी विधियाँ आती है जो निम्नलिखित है।

1. अन्तर्निरीक्षण/अन्तर्दर्शन विधि (Introspective Method)
2. बाह्य निरीक्षण/बहिर्दर्शन विधि (observation Method)
3. प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)
4. व्यक्ति इतिहास विधि (Case History Method)
5. गाथा वर्णन विधि (Anecdotal Method)
6. विकासात्मक विधि (Developmental Method)
7. तुलनात्मक विधि (Comparative Method)
8. साक्षात्कार विधि (Interview Method)
9. प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method)
10. सांख्यिकी विधि (Statistical Method)
11. उपचारात्मक विधि (Clinical Method)
12. परीक्षण विधि (Test Method)
13. मनो विश्लेषण विधि (Psycho-Analytical Method)

1- अन्तर्निरीक्षण/अन्तर्दर्शन विधि Introspective Method:-

अन्तर्निरीक्षण या अन्तर्दर्शन का तात्पर्य 'अपने आप में देखना है। इस पद्धति में व्यक्ति स्वयं अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का निरीक्षण, विश्लेषण और वर्णन करना है। इस विधि में व्यक्ति अपने अनुभवों का स्मरण तथा अपनी भावनाओं का स्वयं मूल्यांकन करता है तथा उन्हें अभिव्यक्त करता है।

इस विधि का उपयोग प्राचीन समय में अधिक किया जाता था किन्तु आज इसे वैज्ञानिक विधि नहीं माना जाता है।

गुण— (i) इस विधि का बार—बार प्रयोग करने से विचार शक्ति बढ़ती है। इस विधि से दूसरो की मानसिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। भिन्न—भिन्न व्यक्तियों के हुये अनुभवों का तुलना की जाती है।

(ii) इस विधि द्वारा मनोविज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन प्रारम्भ हुआ था मनोविज्ञान को विज्ञान की श्रेणी में लाने का श्रेय इस विधि को जाता है। यह विधि मनोविज्ञान की एक बहुत ही सरल तथा उपयोगी विधि है।

दोष— (i) इस विधि का प्रमुख दोष यह है कि व्यक्ति स्वयं ही निरीक्षणकर्ता तथा अनुभव कर्ता होता है। उसे निरीक्षण तथा अनुभव दोनों की कार्य करने पड़ते है। यह कार्य परस्पर विरोधी है। जो दोनो एक साथ सम्भव नहीं है।

(ii) इस विधि द्वारा प्राप्त ज्ञान आत्मगत (Subjective) होता है। इससे एक ही व्यक्ति की मानसिक दशा का पता चल सकता है। इससे प्राप्त सामग्री दूसरे से भिन्न होती है। इसलिए इस विधि द्वारा न तो तुलना की जा सकती है और न ही सत्यता का पता लगाया जा सकता है।

2- गाथा वर्णन विधि Anecdotal Method:-

गाथा वर्णन विधि एक आत्मगत विधि (Subjective Method) है। इस विधि में व्यक्ति अपने जीवन में घटित किसी घटना विशेष का पुनः स्मरण करके या पूर्व अनुभवों का आधार पर एक अभिलेख तैयार करता है। उसे जो कुछ भी याद आता है। उसका वह स्वयं विवरण तैयार करता है। इस प्रकार विभिन्न घटनाओं का संचय करके उनकी परस्पर तुलना की जाती हैं और अन्त में निष्कर्ष तक पहुँचा जाता है।

गुण – (i) इसमें तथ्यों का संचय व्यक्ति स्वयं करता है। अतः वे सही ढंग से प्रस्तुत किये जाते हैं।

(ii) इस विधि में घटनाओं का संचय करके उसकी परस्पर तुलना की जाती है तथा आलोचनात्मक ढंग से तथ्यों की व्यख्या करके निष्कर्ष तक पहुँचा जाता है।

दोष– (i) यह विधि आत्मगत होने के कारण विश्वसनीय नहीं कही जा सकती है। क्योंकि विषयी जिन तथ्यों को संचित करता है उनकी सत्यता तथा विश्वसनीयता में संदेह होता है।

(ii) इस विधि में समस्त घटनायें यथार्थ रूप में प्रकट नहीं हो पाती हैं तथा उनको विश्वास नहीं किया जा सकता है।

3- बाह्य निरीक्षण/बहिदर्शन विधि **Observation Method :-**

इस विधि में अधिगम कर्ता व्यक्ति के व्यवहार और क्रियाओं का निरीक्षण अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर करता है। इसमें व्यक्ति के व्यवहार में बाह्य रूप से जो कुछ भी स्पष्ट दिखायी देता है, उसका निरीक्षण किया जाता है और उसी के आधार पर मानसिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। व्यक्ति के व्यवहार, क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करके उसकी मानसिक अवस्था का पता लगाया जाता है। जैसे किसी व्यक्ति को हँसता या मुस्कुराता देखकर हम यह अनुमान लगा लेते हैं कि वह प्रसन्न है। किसी व्यक्ति को रोता या आँसू बहाता देखकर यह अनुमान लगा लेते हैं कि वह पीड़ित या दुःखित है। बाह्य-निरीक्षक व्यक्ति की शारीरिक क्रियाओं का निरीक्षण करके, सामान्य मनोवैज्ञानिक नियमों का प्रतिपादन करता है। निरीक्षण विधि के प्रमुख सोपान निम्नलिखित हैं।

(i) दूसरे के व्यवहार का प्रत्यक्ष निरीक्षण :-

यह निरीक्षण विधि का प्रथम चरण है। इसमें निरीक्षण व्यक्ति के व्यवहार का अवलोकन करता है। इसमें निरीक्षण के द्वारा प्राप्त प्रमुख तथ्यों को सावधानी पूर्वक नोट कर लिया जाता है।

(ii) सामान्यीकरण :-

इसे निरीक्षण विधि का तृतीय चरण कहा जाता है। इस विधि की सफलता अन्तर्दर्शन पर आधारित है। अन्तर्दर्शन के आधार पर अर्जित अनुभवों के द्वारा ही हम दूसरों के व्यवहार की व्यख्या करते हैं। जब एक ही मानसिक क्रिया के लिए अनेक लोगों के व्यवहार का निरीक्षण किया जाता है। सभी निरीक्षण समान व्यवहार पाते हैं अथवा व्यवहार में कुछ भिन्नता प्रतीत होती है। ऐसी स्थिति में हमसब मानव व्यवहार के सम्बन्ध में सामान्य नियम निकाल लेते हैं। सामान्यीकरण के द्वारा ही वैज्ञानिक नियमों एवं सिद्धांतों का निर्माण होता है।

गुण (i) यह विधि बालकों का अध्ययन करने के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। इस विधि की सहायता से शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं जैसे उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि, अनुशासन, शैक्षिक प्रबन्धन तथा प्रशासन में जरूरत के अनुरूप परिवर्तन किया जा सकता है।

(ii) इस विधि से कई लोगों का एक साथ अध्ययन किया जाता है।

जैसे- भीड़, दर्शकमंडली, कक्षा-समूह इत्यादि।

(iii) इस विधि से प्राप्त परिणामों का सांख्यिकीय निरूपण किया जाता है।

(iv) इस विधि में सत्यापन की सुविधा होती है।

(v) यह वैज्ञानिक विधि है जिसमें क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित ढंग से व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

दोष–

(i) इसमें निरीक्षण कर्ता की व्यक्तिगत कचि का प्रभाव पड़ता है। इसमें आत्मनिश्चिता आ जाती है तथा निरीक्षणकर्ता पूर्व धारणाओं से ग्रसित हो जाता है फलस्वरूप परिणाम विश्वसनीय नहीं रह जाते हैं।

(ii) समस्त घटनायें निरीक्षण का अवसर नहीं प्रदान करती हैं तथा समस्त घटनायें निरीक्षण विधि द्वारा अध्ययन किये जायें योग्य नहीं होती हैं।

4- प्रयोगात्मक विधि Experimental Method :-

इस विधि का तात्पर्य है 'नियंत्रित परिस्थिति में व्यवहार का निरीक्षण करना'। नियंत्रित वातावरण में किया गया निरीक्षण ही प्रयोग विधि कहलाता है। इस विधि में नियंत्रित और विषयी के उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करके विषयी के व्यवहारों का निरीक्षण किया जाता है। नियंत्रित अवस्था में व्यक्ति की अनुभूति और व्यवहार का अध्ययन करने की विधि प्रयोगात्मक विधि है। इस विधि में प्रयोगकर्ता के सामने कोई प्रश्न या समस्या नहीं होती है जिसका उत्तर प्राप्त करने में या उसका समाधान करने में वह प्रयोग करता है। इस प्रकार के प्रयोग करने से पहले निर्धारित परिस्थितियों तथा वातावरण में निरीक्षण किया जाता है। व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करने के लिए तथा समस्याओं का समाधान करने के लिए तथ्य एकत्रित किये जाते हैं।

इस विधि में प्रयोगकर्ता सर्वप्रथम किसी समस्या का चुनाव करता है तथा इस समस्या समाधान के लिए प्रयोग करता है। चुनी गयी समस्या का समाधान करने के लिए सर्वप्रथम उद्देश्यों तथा परिकल्पना का निरूपण करता है। समस्या का समाधान करने से कारण हो सकते हैं। अतः प्रयोगकर्ता कुछ कारणों का अनुमान लगाता है और समस्या का हल निकालने के लिये एक परिकल्पना का निरूपण करता है। इस परिकल्पना की सत्यता की जाँच करना ही प्रयोग कहलाता है। इस प्रकार इस विधि द्वारा मानव अनुभूति तथा व्यवहारों से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। प्रयोगात्मक विधि अन्तर्निरीक्षण तथा बाह्य निरीक्षण दोनों विधियों का समन्वय उपस्थित करती है।

नियंत्रित अवस्था में किसी एक परिवर्त्य (Variable) या उत्तेजक (Stimulus) के प्रभाव का निरीक्षण और प्रभाव की व्याख्या करना प्रयोग होता है। प्रयोग में तीन प्रकार के परिवर्त्य मुख्य हैं जो निम्नवत हैं।

(i) स्वतंत्र परिवर्त्य (Independent Variable)

(ii) आश्रित परिवर्त्य (Dependent Variable)

(iii) नियंत्रित परिवर्त्य (Controlled Variable)

जिस परिवर्त्य का प्रभाव हम प्रयोग के अन्तर्गत देखना चाहते हैं उसे स्वतंत्र परिवर्त्य कहते हैं। स्वतंत्र परिवर्त्य द्वारा किसी क्रिया विशेष पर पड़े प्रभावों को आश्रित परिवर्त्य कहते हैं। आश्रित परिवर्त्य को जिन अन्य तत्वों के प्रभाव से बचाकर रखा जाता है उन्हें नियंत्रित परिवर्त्य कहते हैं।

गुण (i) यह विधि वैज्ञानिक है इसके द्वारा समस्त सही आँकड़े और तथ्य एकत्रित किये जा सकते हैं।

(ii) प्रयोगात्मक विधि से प्राप्त परिणाम अन्य विधियों से सत्य और विश्वसनीय पाये जाते हैं। इसमें व्यक्ति के व्यवहारों और क्रियाओं का अध्ययन नियंत्रित परिस्थिति में किया जाता है।

(iii) इस विधि के द्वारा शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को हल किया जा सकता है। यथा पाठ्यक्रम निर्माण हेतु सिद्धांतों का निरूपण, छात्रों के अधिगम स्तर का मूल्यांकन तथा उपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग करना। ?

(iv) इस विधि में वस्तुनिष्ठता पायी जाती है। इसमें प्रयोग की पुनरावृत्ति करके परिणाम की सत्यता को जाँचा जा सकता है।

दोष (i) इस विधि में वातावरण को नियंत्रित करने में कठिनाई होती है। प्रजोज्य की मानसिक अवस्था को प्रभावित करने वाले प्रत्येक कारको को नियंत्रित करना आसान नहीं होता है जिसके कारण परिणाम में विश्वसनीयता तथा वैधता की कमी की सम्भावना बनी रहती है।

(ii) यह एक स्वतंत्र विधि नहीं मानी गयी है। इसमें अन्तः दर्शन, बाह्य निरीक्षण, तुलनात्मक तथा सांख्यिकी विधि का भी प्रयोग किया जाता है। अनेक प्रयोज्यों पर किये गये प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्षों की तुलना करना पड़ता है।

(iii) इस विधि का एक अन्य दोष यह है कि समस्त प्रकार के प्रयोग मानव पर सम्भव नहीं है अतः इसकी उपयोगिता सीमित हो जाती है।

(iv) यह विधि भौतिक, रसायन एवं प्राकृतिक विज्ञानों के अनुसंधान कार्यों में अधिक उपयोगी सिद्ध हुयी है। सामाजिक विज्ञानों में इसकी उपयोगिता सीमित है।

5- व्यक्ति इतिहास विधि Case History Method

इस विधि के द्वारा प्रयोज्य के व्यक्तित्व तथा उसके गुण दोषो, सामान्यताओ तथा असामान्यताओ का अध्ययन किया जाता है। इसके माध्यम से व्यक्ति विशेष के सन्दर्भ में सम्पूर्ण जानकारी हासिल की जाती है। शिक्षा मनोवैज्ञानिक अपराधी, मानसिक मन्दित, लडाकू तथा समस्या ग्रस्त बालको के सुधार के लिए माता-पिता, शिक्षको तथा उसके मित्रों से पुंछ ताक्ष करके तथ्यों का संकलन करता है। तत्पश्चात उन कारणो का पता लगाता है जिसके फलस्वरूप प्रयोज्य का आचरण और व्यवहार असामान्य होता है।

गुण – (i) इस विधि में व्यापक ढंग से विभिन्न स्रोतो से तथ्यो का संकलन किया जाता है तथा प्राप्त निष्कर्षों में विश्वास किया जाता सकता है।

(ii) इस विधि को उपचारात्मक शिक्षण में प्रयोग किया जा सकता है।

दोष – (i) इस विधि का प्रयोग करने के लिए चिकित्सा विशेषज्ञ की आवश्यकता पड़ती है जो हर समय सम्भव नहीं हो पाता है।

(ii) इस विधि में समय, धन और श्रम अधिक लगता है। अतः इस विधि का प्रयोग करने में कठिनाई महसूस होती है।

6- विकासात्मक विधि **Developmental Method :-**

इस विधि के माध्यम से व्यक्ति के विकास की विभिन्न अवस्थाओ जैसे शैशवा वस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, नैतिक और बौद्धिक विकास पर अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी पता लगाया जाता है कि व्यक्ति के विकास पर वंशानुक्रम तथा वातावरण का क्या प्रभाव पड़ता है।

7- तुलनात्मक विधि **Comperative Method:-**

इस विधि के द्वारा प्रयोज्य के व्यवहार सम्बन्धी समानताओ और असमानताओ का अध्ययन किया जाता है। इसके माध्यम से विभिन्न पशुओ के व्यवहार, मूल प्रवृत्तियो, बुद्धि, व्यक्तित्व विकास का अध्ययन किया जाता है और मानव व्यवहार से तुलना की जाती है। सूझ द्वारा सीखने में मानव व पशु के व्यवहारो का तुलनात्मक ढंग से करके सीखने का सिद्धांत विकसित किया जाता है। मनोवैज्ञानिक इस विधि का प्रयोग करके नवीन तथ्यो का विकास करते है।

8- साक्षात्कार विधि **Interview Method :-**

इस विधि में किसी समस्या का अध्ययन करने के लिए प्रयोगकर्ता विषयी से बातचीत करके आवश्यक सूचनायें प्राप्त करता है। मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र तथा शिक्षा में कुछ ऐसे प्रदत्तो या आँकड़ो की (Data) की माँग होती है जो व्यक्ति के अपने अनुभव पर आधारित होते है तथा जिसे व्यक्ति स्वयं ही वर्णित करता है। ऐसे आँकड़ो के संग्रह के लिए साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया जाता है। करलिंगर (Kerlinger, 1985) ने लिखा है कि "साक्षात्कार एक आमने-सामने की अन्तरवैयक्तिक भूमिका परिस्थिति होती है जिसमें एक व्यक्ति (भेटकर्ता), साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति (प्रत्यर्थी) से शोध समस्या से संबंधित उत्तरों की प्राप्ति के लिए प्रश्न करता है।

9- प्रश्नावली विधि **Questionnaire Method:-**

इस विधि के द्वारा किसी समस्या का अध्ययन करने के लिए कुछ सुलझे एवं संक्षिप्त प्रश्नों की एक प्रश्नावली तैयार की जाती है और इसे किसी समूह को हल करने के लिए दे दिया जाता है। इनसे प्राप्त उत्तरों का अध्ययन करके सामान्यीकरण किया जाता है। इनसे जो निष्कर्ष प्राप्त होते है। उन्ही के आधार पर रणनीतियाँ तैयार की जाती है। मनोविज्ञान तथा सामाजिक अध्ययनो में इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम वुडवर्थ ने प्रश्नावली का निर्माण किया था।

10- उपचारात्मक विधि **Clinical Method**

इस विधि के माध्यम से साधारणतः व्यक्ति के आचरण, व्यक्तित्व, बुद्धि, चिन्तन, स्मृति तथा संवेगो सम्बन्धी जटिलताओ का अध्ययन किया जाता है। यह एक व्यक्तिगत विधि है। इसमें व्यक्ति की मनोदशाओं का अध्ययन करके, उसकी विशिष्ट जरूरते को तथा व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं के कारणों को जानकर उसे उपचारात्मक राय दी जाती है। यह विधि शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को हल करने में उपयोगी सिद्ध हुयी है।

11- सांख्यिकीय विधि **Statistical Method:-**

इस शिक्षा मनोविज्ञान की आधुनिक व लोकप्रिय विधि है। इस विधि का प्रयोग शिक्षा तथा मनोविज्ञान में किसी समस्या का परीक्षण करने के लिए किया जाता है। प्राप्त परिणामों की सत्यता (Validity) तथा विश्वसनीयता (Reliability) की जाँच की जाती है। अध्ययन समस्या से सम्बन्धित प्रदत्तों का संलग्न निरीक्षण, साक्षात्कार, प्रश्नावली विधि से किया जाता है। सांख्यिकीय विधि से उनका तुलनात्मक अध्ययन, व्याख्या तथा गणितीय विश्लेषण किया जाता है। सांख्यिकीय विधि के प्रमुख सोपान निम्नलिखित हैं।

1. समस्या से सम्बन्धित प्रदत्तों का संकलन
2. संकलित प्रदत्तों का वर्गीकरण और व्याख्या
3. प्रदत्तों का विश्लेषण
4. परिणामों की व्याख्या
5. सामान्यीकरण

गुण :- (i) यह वैज्ञानिक विधि है। इस विधि में गणित की सहायता ली जाती है। इसमें विश्वसनीयता और प्रमाणिकता अधिक पायी जाती है।

(ii) शिक्षा शास्त्र की उच्च कक्षाओं में सांख्यिकी का अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया है। इस विधि के कारण अन्य विषय प्रगतिशील विषयों के समकक्ष बन गया है।

दोष :- (i) इस विधि का प्रयोग केवल प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकता है।

(ii) इस विधि से व्यक्तिगत समस्याओं का अध्ययन करना सम्भव नहीं होता है।

12- परीक्षण विधि (Test Method) :-

आज आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वैयक्तिक विभिन्नता के सिद्धान्त को अधिक महत्व दिया जाता है। शिक्षण कार्य करते समय व्यक्ति भेदों का ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक है। इसके लिये कई प्रकार की वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ ली जाती हैं जो प्रमुख निम्नलिखित हैं।

- i. बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test)
- ii. व्यक्तित्व परीक्षण (Personality Test)
- iii. निष्पत्ति परीक्षण (Achievement Test)
- iv. अभियोग्यता परीक्षण (Aptitude Test)

उपरोक्त परीक्षाओं के परिणाम सत्य, विश्वसनीय और प्रमाणिक होते हैं तथा इनके आधार पर शैक्षिक और व्यवसायिक निर्देशन दिया जाता है।

13- मनोविश्लेषण विधि Psycho-Analytical Method :-

इस विधि के जन्मदाता सिगमण्ड फ्रायड को माना जाता है। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति के अचेतन मन का उस पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इस विधि के द्वारा व्यक्ति के अचेतन मन का अध्ययन किया जाता है और उसकी मानसिक ग्रन्थियों का पता लगाया जाता है। अचेतन मन के अध्ययन से उसकी अतृप्त इच्छाओं की जानकारी प्राप्त की जाती है और उन इच्छाओं का परिमार्जन करके प्रयोज्य के व्यवहार को अच्छा बनाने का प्रयास किया जाता है। इस विधि द्वारा आन्तरिक मनः स्थिति एवं दबी हुयी इच्छाओं और भावनाओं का विश्लेषण किया जाता है। मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों के उपचार में भी इस विधि को प्रयोग किया जाता है।

गुण (i) इस विधि से व्यक्ति की आन्तरिक स्थिति का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है।

(ii) इस विधि द्वारा भावना ग्रन्थियों तथा मानसिक विकारों की खोज की जा सकती है और इनका उपचार किया जा सकता है।

दोष (i) इस विधि के प्रयोग में समय और धन अधिक लगता है।

(ii) इस विधि के प्रयोग में समाज भी सहयोग नहीं प्रदान करता है।

(iii) इस विधि में प्रयोज्य तथा प्रयोगकर्ता दोनों को बहुत ही धैर्य से कार्य करना पड़ता है जो कि प्रायः सम्भव नहीं होता है।

14- बुद्धि मापन विधि Method of Measuring Intelligence :-

शिक्षा के क्षेत्र में बुद्धि परीक्षणों का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों के अनुसार बालक को केन्द्र मानकर शिक्षा देना चाहिए। बालक की बुद्धि का मापन करने के लिए मानसिक

आयु तथा वास्तविक आयु की आवश्यकता होती है। डॉ माथुर के अनुसार "मानसिक आयु किसी व्यक्ति के द्वारा प्राप्त विकास की सीमा की वह अभिव्यक्ति है जो उसके कार्यो द्वारा जानी जाती है तथा किसी आयु विशेष में उसकी अपेक्षा होती है।" बालक की बुद्धि ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$\text{बुद्धि-लब्धि} = (\text{मानसिक आयु} / \text{वास्तविक आयु}) \times 100$$

मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि लब्धि की गणना के आधार पर व्यक्ति की बुद्धि को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया है।

क्र० सं०	बुद्धि लब्धि वर्ग (I.Q. Group)	बुद्धि-वर्ग (Intelligence Group.)
1.	140 से 200 तक	प्रतिभाशाली Genious
2.	120 से 140 तक	प्रखर बुद्धि Very Superior
3.	110 से 120 तक	उत्कृष्ट बुद्धि Superior
4.	90 से 110 तक	सामान्य बुद्धि Average
5.	80 से 90 तक	मन्द बुद्धि Dull
6.	70 से 80 तक	निर्बल बुद्धि Feeble Minded
7.	50 से 70 तक	मूर्ख Moron
8.	25 से 50 तक	मूढ Imbecile
9.	25 से नीचे	जड़ बुद्धि Idiot

उपरोक्त विवेचन से हम कह सकते हैं कि इन विधियों ने शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार में बहुत सहायता पहुँचाई है। इसी कारण शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान की उपयोगिता और महत्व बढ़ रहा है तथा शिक्षा के समस्त कार्यक्रमों को मनोविज्ञान की सहायता से सम्पन्न करने का प्रयास किया जा रहा है। अब मनोविज्ञान तथा शिक्षा के क्षेत्र में किये गये अध्ययन अधिक वैज्ञानिक हो गये हैं। मनोविज्ञान की ये विधियाँ धीरे-धीरे वस्तुनिष्ठ, पक्षपात रहित तथा क्रमबद्ध होती गयी है। इनसे प्राप्त निष्कर्षों की सत्यता पर हम विश्वास कर सकते हैं।

सन्दर्भ (Reference)

1. सिंह, अरुण कुमार (2017): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास जवाहर नगर दिल्ली
2. सारस्वत, मालती (2002): शिक्षा मनोविज्ञान, आलोक प्रकाशन, प्रयागराज
3. गैरिट, हेनरी, एच. डी.(1984): शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग, लुधियाना कल्याणी पब्लिशर्स
4. भटनागर, ए. बी., भटनागर मीनाक्षी & अन्य (2006): भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास, सूर्या पब्लिकेशन मेरठ
5. यूट्यूब चैनल: एजुकेटर्स प्लस दिल्ली
6. मैगजीन: a प्रतियोगिता दर्पण
b यूनिवर्सिटी न्यूज
7. न्यूज पेपर: a द हिंदू
b द टाइम्स ऑफ इंडिया
8. www.google.com



वंशानुक्रम और वातावरण

डॉ० शाईस्ता बेगम

प्रवक्ता

मुण्डेश्वरी कॉलेज फॉर टीचर एजुकेशन

पटना

प्रस्तावना

मानव व्यवहार का निर्धारण करने में वंशानुक्रम एवं पर्यावरण दोनों का ही महत्वपूर्ण योगदान है। मनुष्य कुछ जन्मजात गुणों को माता-पिता से लेकर आता है तो कुछ बाह्य संसार से प्राप्त करता है। वंशानुक्रम को बीज और पर्यावरण को पोषण के रूप में भी कहा जा सकता है। जैसा बीज होगा वैसी ही उत्पत्ति होगी किंतु पोषण विकास की गुणवत्ता को अधिक बढ़ा देता है। वंशानुक्रम प्रक्रिया गर्भारण के समय से ही प्रारंभ होती है जो बालक को शारीरिक तथा मानसिक गुण प्रदान करती है किंतु जन्म के बाद वातावरण बालक के विकास में सहायता प्रदान करता है। ये दोनों ही बालक के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। व्यक्ति जो कुछ भी होता है वह वंशानुक्रम और वातावरण का ही योग है। किसी एक के कमजोर होने पर व्यक्तित्व विकास प्रभावित होता है। इस प्रकार बालक के विकास को वंशानुक्रम तथा वातावरण दोनों ही अत्यंत प्रभावित करते हैं।

वंशानुक्रम का अर्थ:— वंशानुक्रम को हम वंश परंपरा पैतृकीय आदि भावात्मक शब्दों से अभिव्यक्त करते हैं। 'अनुवांशिकता' शब्द अंग्रेजी भाषा के **“Heredity”** शब्द से बना है जिसका अर्थ है वंशक्रम, वंशानुक्रम अथवा अनुवांशिकता।

जेम्स ड्रेवर के अनुसार— “हेरीडिटी का अर्थ है— माता-पिता से शारीरिक और मानसिक लक्षणों का हस्तान्तरण।”

इससे यह पता चलता है कि वंशानुक्रम वह प्रक्रिया है जिससे प्राणी को अपने माता-पिता के शारीरिक तथा मानसिक लक्षण प्राप्त होते हैं। इस प्रकार अनुवांशिकता शब्दिक अर्थ निकाले तो ये दो शब्दों से मिलकर बना है— अनु+वंशिकता। अनु का अर्थ है— पीछे होने वाले और वांशिकता का अर्थ है— वंश के गुण-दोष। इस प्रकार अनुवांशिकता का शाब्दिक अर्थ हुआ कि “वंश के लोगों में जो शारीरिक एवं मानसिक गुण-दोष पाए जाते हैं। वे उसी पीढ़ी के बाद आने वाली पीढ़ी के लोगों में भी पाए जाते हैं। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों के अनुसार— “अनुवांशिकता जन्मजात वैयक्तिक गुण का योगफल है।” जीव शास्त्रियों के अनुसार— जब स्त्री गर्भधारण करती है तो उस समय भ्रुण की रचना होती है और इसमें केवल एक कोष हुआ करता है। इसका एक युक्ता होता है। इस एक कोष में स्त्री पुरुष का योग पाया जाता है। युक्ता में पुरुष का शुक्राणु और स्त्री का अंडाणु मिला होता है। इन दोनों के योग होने पर निषेचन क्रिया होती है और प्रथम भ्रुण का निर्माण होता है। इस भ्रुण में युक्ता परिवर्तित होती है। इस प्रकार से शुक्राणु और अंडाणु दोनों बीज कोष के रूप में पाए जाते हैं जो गुण दोष के वाहक होते हैं। बीज कोष में छोटे-छोटे जींस या पिट्रैक पाए जाते हैं जो गुण दोष के वाहक होते हैं। परंतु यह आवश्यक नहीं है कि इन बीज कोषों और पिट्रैक में माता-पिता के सभी लक्षण विद्यमान हो इसमें माता-पिता के ऊपर दादा, परदादा और अन्य लोगों से संबंधित लक्षण भी होते हैं। इन सभी लक्षणों से युक्त होने पर शिशु का जन्म होता है।

वंशानुक्रम की परिभाषाएं:— **जे० एस० थॉप्सन**— “परंपरागत संतति के मध्य उत्पत्ति के संबंध दर्शाने वाला उपयुक्त शब्द वंशानुक्रम है।”

वुडवर्थ— “वंशानुक्रम में वे सभी बातें आ जाती हैं जो जीवन का आरंभ करते समय, जन्म के समय नहीं वरन् गर्भाधान के समय से, जन्म से लगभग 9 महा पुर्व व्यक्ति में उपस्थित थी।”

बी० एन० झा— “अनुवांशिकता व्यक्ति की जन्मजात विशेषताओं का पूर्ण योग है।” इस प्रकार वंशानुक्रम एक प्रकार की जन्मजात देन है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक लगातार हस्तान्तरित

होती रहती है। इसी के बल पर व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक विकास करता है और बढ़ता रहता है।

वंशानुक्रम की प्रक्रिया:— मानव जीवन का प्रारंभ एक कोशिका के रूप में होता है अनेक कोशिकाओं के योग से शरीर का निर्माण होता है।

कोष के दो भाग होते हैं—

1 केंद्र

2 कोशिका द्रव्य कोषारस

केंद्र में रासायनिक तत्वों का जटिल संगठन होता है। जो कि वंशानुक्रम के निर्धारक होते हैं। कोशिका के केंद्र में गुणसूत्र होते हैं। इन्हीं गुणसूत्रों में जिन की एक श्रृंखला पाई जाती है। युग्मक संयुक्त कोष का निर्माण दो बीज कोषों के जोड़ने से होता है। इस युग्मक में एक पिता का दूसरा माता का होता है, जिसमें क्रमशः पितृकोष या शुक्र और मातृकोष या अंडाणु होते हैं। दोनों के सहयोग से निषेचन क्रिया आरंभ होती है और युग्मक भ्रुण में परिवर्तित हो जाती है। मातृकोष और पितृकोष का समन्वय होते ही कोशिका के विभाजन की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है।

परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध होता हो चुका है कि मातृकोष और पितृकोष में 23-23 गुणसूत्र होते हैं। इस प्रकार युग्मक में गुणसूत्र के केवल 23 जोड़े रह जाते हैं। जिनमें आधे पिता और आधे माता के होते हैं। इस प्रक्रिया को “घटोतरी कोशिका विभाजन” कहते हैं।

गुणसूत्र के संबंध में मनोवैज्ञानिक मन का कथन— “हमारी असंख्य परंपरागत विशेषताएं इन 46 गुणसूत्रों में उपस्थित रहती है। गुणसूत्रों में छिपे वंशानुक्रमिय कारकों को जिन कहते हैं। जिसका अर्थ है— वंशानुक्रम निर्धारक।

यह जीन ही विभिन्न गुणों का निर्धारण करते हैं। इन जीनों में माता-पिता के अतिरिक्त पूर्वजों के गुण या लक्षण भी आ सकते हैं। प्रायः वंशानुक्रमणीय गुण या लक्षण $1/2$ माता-पिता, $1/4$ दादा-दादी, $1/8$ परदादा-परदादी तथा इसी प्रकार से शेषांश अन्य पूर्वजों से मिलते हैं।

सोरेन्सन के अनुसार—“पितृक/जीन के सम्मिलन के परिणाम को ही हम वंशानुक्रम कहते हैं।”

वंशानुक्रम के सिद्धांत या नियम:— वंशानुक्रम की प्रक्रिया के संबंध में विभिन्न परीक्षण एवं प्रयोग किए गए हैं। हम वंशानुक्रम के स्वरूप को इन्हीं परीक्षणों के आधार पर परिभाषित कर सकते हैं। अतः विभिन्न विद्वानों द्वारा की गई खोजों को हम सिद्धांत एवं नियम मानते हैं। इनका वर्णन इस प्रकार से है—

1 मूल जीवाणु की निरंतरता का नियम:—फ्रांसिस गाल्टन ने वर्ष 1775 में बालक को उतना ही योग्य बताया था, जितना कि उसके पूर्वज। उन्होंने अपने अनेक अध्ययनों से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले थे—

1 वंशानुक्रम $1/2$ पिता + $1/2$ माता पक्ष।

2 दादा तथा परदादा आदि पूर्वजों के गुण निश्चित मात्रा में होते हैं।

3 वंश-दर-वंश यह गुण कम होते जाते हैं, जैसे— $1/2$, $1/4$, $1/8$ तथा $1/16$ आदि।

गाल्टन का समर्थन करते हुए वीजमैन ने बालक की उत्पत्ति बीज कोष से बतलाई है। मानव शरीर में कायकमोष और उत्पादक कोष होते हैं। कायकमोष शारीरिक विकास करते हैं और उत्पादक कोष वंश परंपरा में हस्तान्तरित होते रहते हैं।

गॉल्टन ने 25 पीढ़ियों तक चूहों पर प्रयोग किए। वे चूहों की पूँछों को हर बार काट देते थे। लेकिन बिना पूँछ के चूहे कभी भी पैदा नहीं हुए। अतः यह निष्कर्ष निकला कि अगली संतान में मूल जीवाणु हस्तांतरित होते रहते हैं।

2 अर्जित गुणों का हस्तांतरण:— लैमार्क, मैक्डूगल, पावलॉव एवं हैरिसन आदि प्रमुख विद्वानों ने वंशानुक्रम का आधार अर्जित गुणों का हस्तांतरण माना है। लेमार्क ने जिराफ की गर्दन का लंबा होना परिस्थितिवश बताया, लेकिन अब वह वंशानुक्रमीय हो चुका है।

इसी प्रकार से मैक्डूगल ने चूहों पर प्रयोग किया। आपने पानी से भरे बड़े बर्तन में चूहों को छोड़ दिया। बर्तन से बाहर आने के दो मार्ग थे— प्रकाशित मार्ग और अंधकारयुक्त मार्ग। प्रकाशित मार्ग में बिजली का झटका लगता था और अंधकारयुक्त मार्ग में नहीं। अतः सभी चूहे झटके से परेशान होकर अंधकार वाले मार्ग से बाहर निकलते थे। 23 पीढ़ियों के अध्ययन में पाया गया कि

पहली पीढ़ी में चूहों ने 165 बार त्रुटियाँ की और 23वीं पीढ़ी ने सिर्फ 25 बार। अतः स्पष्ट होता है कि अर्जित गुणों का अगली पीढ़ी में हस्तान्तरण होता है।

3 प्रत्यागमन का नियम:— प्रत्यागमन शब्द का अर्थ विपरीत होता है। जब माता-पिता के बच्चे उनके विपरीत विशेषताओं वाले विकसित होते हैं तो यहां पर प्रत्यागमन का सिद्धांत लागू होता है; जैसे— मन्द बुद्धि माता-पिता की संतान का प्रखर बुद्धि होना।

विद्वानों ने इसके संदर्भ में निम्न धारणाएं प्रस्तुत की हैं—

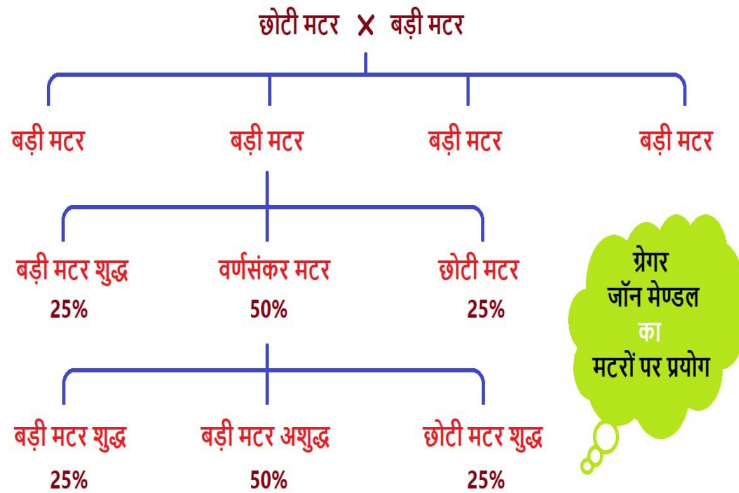
- 1 यदि वंश सूत्रों का मिश्रण सही रूप से नहीं हो पता है तो विपरीत विशेषताओं वाले बच्चे विकसित होते हैं।
- 2 जागृत और सुषुप्त दो प्रकार के गुण वंश को निश्चित करते हैं। विपरीत विशेषताएं सुषुप्त गुणों का परिणाम होती हैं।

4 मेण्डल का नियम:— वंशानुक्रम की विशेषताओं का पता लगाने के लिए ग्रेगर जॉन मेण्डल ने विभिन्न प्रयोग किए थे। आप चेकोस्लावाकिया में एक ईसाई मठ के पादरी थे। इनके प्रयोगों के निष्कर्षों को ही मेण्डलवाद या मेण्डल का नियम कहा जाता है।

वंशानुक्रम से संबंधित मेण्डल के प्रयोग:— वंशानुक्रम से संबंधित निम्न प्रयोग है—

- 1 मटरों पर प्रयोग
- 2 चूहों पर प्रयोग

1 मटरों पर प्रयोग:—मेण्डल ने समान संख्या में छोटी तथा बड़ी मटरों को बोया। जो मटरें उत्पन्न हुईं, वे सभी बड़ी मटरें थीं। फिर उसने इन वर्णसंकर मटरों को बोया, इससे वर्णसंकर मटरें पैदा हुईं। जैसा कि निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट है—



3 चूहों पर प्रयोग:— इसी प्रकार से मेण्डल ने चूहों पर भी प्रयोग किये और पूर्व निष्कर्षों को प्राप्त किया। इन्होंने सफेद तथा काले चूहों को साथ रखा। इसके समागम से पहले काले चूहे उत्पन्न हुए। फिर वर्णसंकर चूहों को एक साथ रखा गया, इसमें सफेद एवं काले दोनों ही प्रकार के चूहे उत्पन्न हुए।

मेण्डल का निष्कर्ष:— मेण्डल के प्रयोगों से निम्न निष्कर्ष स्पष्ट होते हैं—

- मेण्डल का नियम प्रत्यागमन को स्पष्ट करता है।
- बच्चे में माता-पिता की ओर से एक-एक गुणसूत्र आता है।
- गुणसूत्र की अभिव्यक्ति संयोग पर निर्भर करती है।
- एक ही प्रकार के गुणसूत्र अपने ही प्रकार की अभिव्यक्ति करते हैं।
- जागृत गुणसूत्र अभिव्यक्ति करता है, सुषुप्त नहीं।
- कालांतर में यह अनुपात 1:2, 2:4, 1:2 तथा 1:2 होता जाता है।

बालक पर वंशानुक्रम का प्रभाव:— वंशानुक्रम का व्यक्ति के विकास पर निम्न प्रकार से प्रभाव पड़ता है—

1 दैहिक लक्षणः— वंश परंपरा की भिन्नता के कारण ही व्यक्तियों के रूप-रंग, बाल, नाक की रचना, चेहरा आदि भिन्न-भिन्न होते हैं। चीनी तथा जापानी व्यक्ति छोटे कद के होते हैं। उनका रंग पीला होता है तथा नाक चपटी होती है। अफ्रीका के लोग काले होते हैं। यूरोप आदि देशों के गोरे। इस भिन्नता का कारण वंश परंपरा है।

2 बुद्धि पर प्रभावः— समानता के दृष्टिकोण के अनुसार प्रतिभाशाली माता-पिता की संतान प्रतिभाशाली होगी तथा मन्द बुद्धि माता-पिता की संतान मन्द बुद्धि। यह बात कालीकॉक नामक एक सैनिक के वंशजों का अध्ययन करके सिद्ध हुई है। कालीकॉक ने पहले एक मन्द बुद्धि स्त्री से और कुछ समय बाद एक तीव्र बुद्धि की स्त्री से विवाह किया। पहली स्त्री के 480 वंशजों में से 143 मन्द बुद्धि, 36 अवैध संतान, 32 वैश्याएं, 24 शराबी, 8 वैश्यालय स्वामी, 3 मिर्गी रोग वाले और 3 अपराधी थे। दूसरी स्त्री के 496 वंशजों में से केवल 3 मन्द

बुद्धि वाले और चरित्रहीन थे। शेष ने व्यवसायियों, डॉक्टरों, शिक्षकों, वकीलों आदि के रूप में समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त किये।

3 मूल शक्तियों पर प्रभावः— थार्नडाइक का मत है कि बालक की मूल शक्तियों का प्रधान कारण उसका वंशानुक्रम है।

4 शारीरिक लक्षणों पर प्रभावः— कॉलर पिर्यसन का मत है कि यदि माता-पिता की लंबाई कम या अधिक होती है तो उनके बच्चे की लंबाई भी अपने माता-पिता जैसी ही होती है।

5 प्रजाति की श्रेष्ठता पर प्रभावः— विलनबर्ग का मत है कि बुद्धि की श्रेष्ठता का कारण प्रजाति है। यही कारण है कि अमेरिका की श्वेत प्रजाति, नीग्रो प्रजाति से श्रेष्ठ है।

6 व्यावसायिक योग्यता पर प्रभावः— कैटल का मत है कि व्यावसायिक योग्यता का मुख्य कारण वंशानुक्रम है। वह इस निष्कर्ष पर अमेरिका के 885 वैज्ञानिकों के परिवारों का अध्ययन करने के परिणामस्वरूप पहुंचा। उसने बताया कि इन परिवारों में से 2/5 व्यवसायी वर्ग के, 1/2 उत्पादक वर्ग के और केवल 1/4 कृषि वर्ग के थे।

7 सामाजिक स्थिति पर प्रभावः— गुणवान और प्रतिष्ठित माता-पिता की संतान प्रतिष्ठा प्राप्त करती है। रिचर्ड एडवर्ड के परिवार का अध्ययन करके पता चला। रिचर्ड स्वयं गुणवान और प्रतिष्ठित मनुष्य था। उसने एलिजाबेथ नामक जिस स्त्री से विवाह किया था, वह भी उसी के समान थी। इन दोनों के वंशजों ने विधानसभा के सदस्यों, महाविद्यालयों के अध्यक्षों आदि के प्रतिष्ठित पद प्राप्त किये, उनका एक वंशज अमेरिका का उपराष्ट्रपति बना।

8 चरित्र पर प्रभावः— डगडेल का मत है कि चरित्रहीन माता-पिता की संतान चरित्रहीन होती है। उसने यह बात 1877 ई० में ज्यूकस के वंशजों का अध्ययन करके सिद्ध की। 1720 ई० में न्यूयार्क में जन्म लेने वाला ज्यूकस एक चरित्रहीन मनुष्य था और उसकी पत्नी भी उसके सामान चरित्रहीन थी।

9 महानता पर प्रभावः— गाल्टन का मत है कि व्यक्ति की महानता का कारण वंशानुक्रम है। यह वंशानुक्रम का ही परिणाम है कि व्यक्तियों के शारीरिक और मानसिक लक्षणों में विभिन्नता दिखाई देती है। व्यक्ति का कद, वर्ण, वनज, स्वास्थ्य, बुद्धि, मानसिक शक्ति आदि उसके वंशानुक्रम पर आधारित रहते हैं।

वातावरण का अर्थः— वे सभी भौतिक एवं अभौतिक वस्तुएं जो मानव के सर्वांगीण विकास को प्रभावित करती हैं वातावरण कहलाती हैं। वातावरण से तात्पर्य बाह्य शक्तियों, परिस्थितियों एवं प्रभावों से है जो किसी भी मानव के विकास को जन्म के बाद प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। मनुष्य अपने वंशानुक्रम से जो भी गुण प्राप्त करता है वे सभी परिवर्तनशील होते हैं उन सबमें पर्यावरण के अनुसार परिवर्तन होता है। वातावरण के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों के द्वारा दी गई प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार हैं—

वूडवर्थ के अनुसार— “अनुवांशिकता में भिन्न व्यक्ति समान नहीं होते हैं किंतु सामान वातावरण उन्हें समान बना देता है।”

टी० डी० इलिट के अनुसार— “किसी भी चेतन पदार्थ की इकाई के प्रभावशाली उद्दीपन एवं अंतःक्रिया के क्षेत्र को वातावरण कहते हैं।”

बेरिंग, लैंगफील्ड एवं वील्ड के अनुसार— “व्यक्ति के वातावरण के अंतर्गत उन सभी उत्तेजनाओं का योग आता है जिन्हें वह जन्म से मृत्यु तक ग्रहण करता है।”

उपयुक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि मानव के चारों ओर का वातावरण अत्यधिक विस्तृत होता है जो उसे गर्भाधान के बाद से जीवन पर्यंत प्रभावित करता है। वातावरणीय तत्वों से प्रभावित होकर ही मानव विकास होता है।

वातावरण के प्रकार:— आमतौर पर वातावरण को तीन भागों में बांटा जा सकता है—

1 प्राकृतिक परिवेश:— इसमें सभी प्राकृतिक पदार्थ जीव-जंतु आदि आ जाते हैं। मानव का प्रकृति के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है। व्यक्ति के रहन-सहन पर, रूप-रंग पर, खान-पान आदि पर प्राकृतिक परिवेश का प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक वातावरण के कारण ही व्यक्ति में भिन्नता पाई जाती है। गर्म प्रदेशों तथा अधिक वर्षा वाले प्रदेशों में वहां के लोगों का जीवन देखकर हम प्राकृतिक परिवेश के प्रभाव का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

2 सामाजिक वातावरण:— सामाजिक वातावरण के अंतर्गत तीन भाग किया जा सकते हैं—

पारिवारिक परिवेश
विद्यालय परिवेश
सामाजिक संबंध।

वे सब प्रभाव जो बालक पर उसके माता-पिता, भाई-बहन तथा अन्य संबंधियों द्वारा अंकित होते हैं, वे पारिवारिक परिवेश में सम्मिलित किये जा सकते हैं। ऐसे सभी बाह्य प्रभाव जो पाठशाला द्वारा, शिक्षकों द्वारा और अन्य सहपाठियों द्वारा विद्यार्थी पर पड़ते हैं, वे विद्यालयी परिवेश के अंतर्गत आते हैं। बाह्य प्रभावों का जो असर वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन, बोलचाल आदि पर पड़ता है उन्हें हम सामाजिक संबंधों में ले सकते हैं।

3 सांस्कृतिक वातावरण:— मनोविश्लेषणवादी युग का मत है कि जातीय संस्कृति व्यक्ति की नस-नस में तथा बाह्य वातावरण में हमेशा मौजूद रहती है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी, बराबर आगे चलती रहती है।

बालक के विकास में वातावरण का प्रभाव:—

- 1 क्या बुद्धिमान माता-पिता का बच्चा बुरे स्कूल में पढ़कर जीवन में सफल हो सकता है? शायद हाँ? लेकिन अच्छे स्कूल में पढ़कर उसके डॉक्टर या इंजीनियर बनने की संभावना खराब स्कूल में पढ़ने से कहीं ज्यादा है। इससे पता चलता है कि पर्यावरण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- 2 पर्यावरण सिद्धांत यह बताता है कि जब बच्चे जन्म लेते हैं तो उसका दिमाग खाली स्लेट की तरह होता है और उसके सभी व्यवहार और लक्षण पर्यावरण के द्वारा परिवर्तित किया जा सकते हैं।
- 3 यदि हिंदू परिवार में जन्म लेने वाले बच्चे का पालन-पोषण मुस्लिम परिवार में होता है तो उस बच्चे में मुस्लिम गुण आ जाएंगे। जो यह दर्शाता है कि पर्यावरण मानव विकास का बहुत बड़ा कारक है।
- 4 दो मुख्य सिद्धांतकार वॉटसन और लॉक हैं, जिनका विचार था कि पर्यावरण का विकास पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।
- 5 जॉन वॉटसन का विचार था कि तेज बच्चों को गंदे वातावरण में डालकर उसे गंदे स्वभाव का बनाया जा सकता है चाहे उसकी अनुवांशिकता कितनी भी अच्छी क्यों ना हो।
- 6 जॉन लॉक का विचार था कि प्रत्येक बच्चे का दिमाग जन्म के समय एक खाली स्लेट की तरह होता है। इस चीज को “टेबुला रासा” भी कहते हैं। अगर उसे अच्छी जगह या स्कूल में डालेंगे तो वह बच्चा अच्छा होगा अगर गंदे वातावरण में रखेंगे तो उस पर गंदा प्रभाव पड़ेगा।

वंशानुक्रम तथा वातावरण का संबंध:—वंशानुक्रम तथा वातावरण एक दूसरे से पृथक नहीं है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे की सार्थकता नहीं है। स्वस्थ बीज तभी स्वस्थ पौधे का रूप धारण कर सकता है, जब वातावरण स्वस्थ एवं संतुलित हो। अच्छी खाद, समय पर पानी, धरती की तैयारी आदि वातावरण की सृष्टि करती है। **लैण्डिस** का कथन है— वंशक्रम हमें

विकसित होने की क्षमताएं प्रदान करता है। इन क्षमताओं के विकसित होने के अवसर हमें वातावरण से मिलते हैं, वंशक्रम हमें कार्यशील पूंजी देता है और परिस्थिति हमें इसको निवेश करने के अवसर प्रदान करती है।

मेकाइवर तथा पेज ने वंशक्रम तथा वातावरण दोनों के महत्व को स्वीकार किया है। इन्होंने लिखा है “जीवन की प्रत्येक घटना दोनों का परिणाम होती है। किसी भी निश्चित परिणाम के लिए एक उतनी ही आवश्यक है जीतनी कि दूसरी। कोई भी न तो हटाई जा सकती है और न ही कभी पृथक की जा सकती है।

वुडवर्थ तथा मारेक्विस ने कहा है— “व्यक्ति वंशक्रम तथा वातावरण का योग नहीं, गुणनफल है। विकास की किसी अवस्था में बालक या व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक विशेषताओं की व्याख्या करने के लिए साधारणतः वंशक्रम और वातावरण शब्दों का प्रयोग किया जाता है प्राचीन समय में यह विश्वास किया जाता था कि वंशानुक्रम और वातावरण एक दूसरे से पृथक थे और बालक के व्यक्तित्व और कार्य क्षमता को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते थे। आज के समय में इस धारणा में परिवर्तन हो गया है। माना जाता है कि व्यक्ति जो कुछ सोचता या करता है वह वंशानुक्रम के कारकों और वातावरण के प्रभावों के पारस्परिक संबंधों का परिणाम होता है।

वंशानुक्रम तथा वातावरण का सापेक्षिक महत्व:— व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए वंशानुक्रम अधिक उत्तरदायी है या वातावरण, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। इस बारे में मनोवैज्ञानिक और विद्वान् स्पष्ट रूप से दो पक्षों में विभाजित हैं। एक पक्ष वंशानुक्रम को अधिक महत्व देना चाहता है तो दूसरा वातावरण को। कट्टर वंशानुक्रमवादी व्यक्तित्व के विकास के लिए वंशानुक्रम को ही सब प्रकार से उत्तरदायी ठहराते हैं। इनके अनुसार व्यक्तित्व के निर्माण में शिक्षा, प्रशिक्षण और अन्य वातावरण संबंधी शक्तियों के कार्य की तुलना लकड़ी की कुर्सी, मेज इत्यादि फर्नीचर पर पॉलिश या रंग करने के कार्य से की जा सकती है। जिस तरह कोई भी अच्छी से अच्छी पॉलिश या पेंट मेज, कुर्सी वा फर्नीचर में लगी हुई आम की लकड़ी को सागवान या शीशम की नहीं बना सकता, वह उसे चमका कर उसकी शोभा या आयु में केवल नाममात्र की वृद्धि कर सकता है, उसी तरह अच्छे से अच्छा वातावरण भी बच्चे की मूल प्रकृति या विकास क्रम को नहीं बदल सकता। वह वही बनता है जो वंशानुक्रम द्वारा तय किया हुआ है।

दूसरी ओर कट्टर वातावरणवादी व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रम को कोई भी भूमिका नहीं देना चाहते। व्यक्ति को अपने माता-पिता या पूर्वज से कुछ गुण या विशेषताएँ विरासत में मिलती हैं। इस बात को ये केवल कल्पना का महल समझते हैं। इनके अनुसार एक बालक वही बनता है जो उसका वातावरण उसे बनाता है। जो कुछ एक व्यक्ति ने किया है दूसरा भी अगर उसे समुचित वातावरण और अवसर प्राप्त हो जाए, वही कर सकता है। इस तरह से कोई भी बालक आगे जा कर गांधी, लिनकन, शिवाजी या राणा प्रताप बन सकता है। वातावरण की शक्तियों पर अपनी अटूट आस्था व्यक्त करते हुए वाटसन जैसे वातावरणवादी ने तो यहां तक कह दिया कि आप मुझे कोई बालक दें, मैं उसे वही बना दूंगा जो आप चाहते हैं। इस तरह से वातावरण के पक्ष के विद्वान् बालक की वृद्धि और विकास के लिए वातावरण को ही सर्वसर्वा मान कर चलना चाहते हैं। अपने-अपने विचारों की पुष्टि के लिए वंशानुक्रमवादी एवं वातावरणवादी दोनों ही मनोवैज्ञानिक प्रयोगों एवं परीक्षणों का आश्रय लेते रहे हैं। इनके परिणामों के आधार पर वे वंशानुक्रम और वातावरण दोनों की सापेक्ष महत्ता पर टीका-टिप्पणी भी करते रहे हैं।

संदर्भ

- 1 पाठक आर० पी०, पियर्सन, “उच्च शिक्षा मनोविज्ञान” “प्रकाशक डॉर्लिंग किडरस्ले (इंडिया) प्रा० लि० दक्षिण एशिया में पियर्सन एजुकेशन के लाइसेंसी”, आई०एस०बी०एन०: 978-81-317-5925-7 पृ०सं० 23-24.
- 2 [http://www.bhimpathshala.com\(pdf\)](http://www.bhimpathshala.com(pdf)).
- 3 <https://mycoaching.in>

- 4 सिंह दीपा, पाठक सीमा, "षिक्षा मनोविज्ञान" "एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स 18-12-2021. पृ0सं0 50-51.
- 5 कुमारी डा0 अनिता, "मानव विकास के मूल तत्व" ठाकुर पब्लिकेषन्स प्रा0 लि0 पटना आई0एस0बी0एन0 978-93-5755-978-2 प्रथम संस्करण 2024. पृ0सं0 34-35.
- 6 प्रषार डा0 मधु, अग्रवाल रिंकी, "षिक्षाषास्त्र" "एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेषन्स" पृ0सं0 54-55.
- 7 परबे नितिष, "बाल विकास एवं षिक्षाषास्त्र" "ब्लू रोज़ पब्लिषरस" आई0एस0बी0एन0 978-93-5628-66-0. पृ0सं0 24.
- 8 प्रषार डा0 मधु, अग्रवाल रिंकी, "षिक्षाषास्त्र" "एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेषन्स" पृ0सं0 55-56.
- 9 मंगल एस0 के0, मंगल शुभ्रा, "बाल्यावस्था एवं वृद्धि-उन्मुख बालक" पी0एच0आई0 लर्निंग प्रा0 लि0 पृ0सं0 166.



HEREDITY AND ENVIRONMENT (AN OVERVIEW)

Dr. Hemant Kumar Singhal
PGT Physics
Shiksha Bharti Global School
Dwarka New Delhi -77

INTRODUCTION: A child typically shares more similarities with siblings, parents, grandparents, and other family members due to heredity. This means that offspring inherit most personality traits from their parents and ancestors, leading to a resemblance. Life qualities are generally inherited, with the expression of certain traits influenced by the environment. McIver and Page stated that no two individuals are identical in body and behavior, indicating inherent differences among all people. Even twins can exhibit disparities. Various factors contribute to individual differences, including inherent characteristics and environmental influences. Despite similar environmental conditions, individuals may differ due to inherited qualities shaping their personality. While both inheritance and environment play roles in individual distinctions, the debate on their relative significance has long persisted, particularly in education. It is widely accepted that heredity impacts behavior and personality development, with psychologists underscoring its substantial influence on these aspects.

The observable characteristics of an organism, including its structure and behavior, are collectively referred to as its phenotype. These traits are a result of the interaction between the organism's genetic makeup and its surroundings. Consequently, many aspects of an organism's phenotype are not inherited. For instance, exposure to sunlight leads to suntanned skin, which is not passed down to offspring. However, variations in how individuals tan can be attributed to differences in their genetics. Individuals with albinism, for example, do not tan at all due to an inherited trait, making them highly susceptible to sunburn. Traits that can be passed from one generation to the next are transmitted through DNA, a molecule that carries genetic information. DNA is a lengthy polymer consisting of four interchangeable bases. The sequence of these bases along a DNA molecule determines the genetic information, akin to a series of letters forming a sentence. Before cell division occurs through mitosis, DNA is replicated to ensure that each resulting cell inherits the same DNA sequence. A gene is a segment of DNA that encodes a specific functional unit, each with its unique sequence of bases. DNA strands within cells coil into structures known as chromosomes. Offspring inherit genetic material in the form of homologous chromosomes from their parents, each containing a distinct combination of DNA sequences that encode genes. The specific position of a DNA sequence on a chromosome is termed a locus. When variations exist in the DNA sequence at a locus among individuals, these distinct forms are referred to as alleles. Mutations can lead to changes in DNA sequences, creating new alleles. If a mutation arises within a gene, the new allele may impact the trait controlled by that gene, thereby altering the organism's phenotype.

Although a simple correspondence between an allele and a trait is effective in certain cases, most traits are intricately controlled by multiple genes that interact within and

among organisms. Developmental biologists propose that complex genetic networks and cell communication can result in heritable variations that may influence developmental plasticity and canalization mechanisms. Recent research has validated significant instances of heritable changes that cannot be solely attributed to DNA. These instances fall under epigenetic inheritance systems, which evolve independently of genes. While the study of epigenetic inheritance mechanisms is still nascent, it has garnered considerable attention for expanding the understanding of heritability and evolutionary biology. Noteworthy examples of epigenetic inheritance systems include DNA methylation, chromatin marking, self-sustaining metabolic loops, RNA-mediated gene silencing, and protein conformation alterations like prions at the organism level. Heritability can also manifest at broader scales, such as ecological inheritance through niche construction, where the actions of organisms in their environment create a legacy that influences subsequent generations' selection. Beyond gene-controlled heritability, other evolutionary processes include the inheritance of cultural traits, group heritability, and symbiogenesis, collectively known as multilevel or hierarchical selection. This concept has been a focal point of intense debate in the evolutionary science community.

Definition of Heredity: Heredity is the sum total of the traits potentially present in the fertilized egg. Here it is the transmission from parents to offspring of physical and mental characteristics. Every act of generation in nature is the transmission by the parents to their offspring of certain characteristics, biological or psychological. The complex characteristic that is transmitted is known as the name of heredity.

According to Woodworth: "Heredity covers all the factors that were present in the individual when the life began, not at birth, but at the time of conception, about nine months before birth."

Environmentalists emphasize the impact of the environment, while both heredity and environment play a significant role in shaping an individual's personality. In scientific terms, inheritance is a biological concept rooted in genetics. According to zoological principles, specific qualities or traits are passed down from one generation to the next, known as biological inheritance. This process results in similarities between generations, where offspring inherit traits from their parents. For instance, children of scholars often become scholars themselves. However, there are cases where children of educated parents may not exhibit the same traits, while children of less educated parents may excel academically. These variations can be attributed to individual differences and the blending of physical and mental characteristics inherited from ancestors.

Mechanism of Heredity: There are germ cells in the human body of these reproductive cells. It is composed of many genes. These genes are passed on from generation to generation by progeny flow. The shape of the germ cell is rod-like. This is called chromosome. These are thread-shaped genes only. (A gene is the carrier of a unit character of a hereditary factor which is always transmitted as a unit in all or none fashion - Anne Anastasia). The characteristics of the lineage are passed on to the next generation. According to Anastasia - Gene is the carrier of the characteristics of inheritance which is always changing in some form or the other. "All of our innumerable inherited characteristics are represented in the forty-six chromosomes. Chromosomes are called genes, which mean determiners." - N. L. Munn

Heredity-Determining Process: The lineage begins from the position of the womb. This is a question which children and teenagers want to know. Parents don't want to tell children and when the teacher goes around and says this, their curiosity starts increasing even more. Mothers give many types of misleading information to other

children about the birth of a child. Therefore, knowledge of the process of child birth is necessary for the healthy development of the child mandatory.

Conception: The position of the fetus Mother and father's ovum and it happens due to the combination of sperm. Father's countless sperms waiting in mother's womb run to meet the egg. Whichever one among them gets combined with the ovum, the same due to this, the condition of pregnancy is achieved. Sex cells in both men and women are there. These cells are produced by reproductive organs in male. Male reproductive cells are produced in the (Gonad) glands. It is called sperm are their number is innumerable.

Non-identical Twins: Normally only one ovum is present in a woman ripens in time. Therefore the woman gives birth to a child but sometimes more ova develop and enter the fallopian tubes. Adopt the qualities of when these sperms combine then different pregnancies take place. Study of characteristics found in twins is important in child development yoga is happening physical similarities are found in samayajas. This similarity sometimes it is so spectacular that it becomes difficult to recognize the twins. Language more or less the same similarity is found in the qualifications also. Revenge in these when they grow up, feelings of competition, inferiority etc. also development of their personality.

Laws of Heredity: Heredity is a matter not only for psychologists but also for biologist's very interesting and mysterious topic has been the topic to study the mechanisms of inheritance. Many research works and experiments have been done for this. Based on these researches work and experiments but some general rules of inheritance have been propounded. The main rules of descent are as follows-

- (1) Law of Continuity of Germ Plasm
- (2) Law of Resemblance
- (3) Law of Variation
- (4) Law of Regression Traits
- (5) Law of Transmission of Acquired qualities
- (6) Mendel's Law

Hereditary Traits: Biologists and psychologists have studied many things through different methods. Hereditary traits have been detected till now almost 200 hereditary traits have been determined. Hereditary traits are as follows can be divided into four categories-

(1) Structural Traits: This group of inherited traits under the category come those traits which are related to the structure of the person's body are size and shape of body or organs, color of hair, shape of hair (straight or yunyarale), hair style, eye color, skin color and condition, dentin and enamel of teeth etc. are structural features. Dwarfism, Syndactyly and Short Fingers (Brachydactyla) are important examples of structural hereditary traits.

(2) Functional Traits: This class of inherited traits symptoms related to the functioning systems of the expressed body come under it health, physical, strength, longevity, fertility, blood group and susceptibility to diseases etc. are important examples of functionally inherited traits.

(3) Mental Traits: This class of inherited traits, that are the traits related to mental abilities and personality, intelligence, literary, mathematical, scientific abilities like singing, thrift, devotion, self-respect, temperament etc. These symptoms are prime examples of mental hereditary traits.

ENVIRONMENT: The environment refers to the surroundings, encompassing both living and non-living elements such as physical, chemical, and natural forces. Organisms

within the environment interact and adapt to its conditions, fostering various interactions between animals, plants, soil, water, and other living and non-living entities. The term "environment" encompasses a wide range of elements like trees, rivers, and oceans, and its interpretation varies across different fields of study. For instance, in fields like psychology and medicine, an individual's environment includes the people, physical objects, and locations they are surrounded by, influencing their growth and development both physically and mentally. Weather patterns, climate changes, and the presence of other organisms further impact the conditions for living organisms within an environment.

Meaning of Environment: The synonym 'Paryavaran' is also used for 'environment'. Environment is made up of two words - 'Pari' and 'Avaran' (Environment = Surround + Cover)" means 'around' and 'cover' means 'to cover' or 'to surround'. Environment is the thing that surrounds the person, consciously or unconsciously covered or surrounded by. Environment has an important place in human development person in favorable environment. Natural development takes place and in adverse environment its development is reduced. Thus, from the social and psychological point of view, all those elements within the environment and affect social relations. For this reason psychologists call it 'social also called 'Vashanukaram' (Social Heredity). Under the elements of the environment, all those physical and psychological stimuli come from which the living being, from conception to life it continues to be affected till then circumstances; energy changes, objects and events, Electricity shock and sound waves, teacher's control, prayers of friends etc. are some such elements which affect the person. Thus, it is the environment itself that makes a person (besides his parentage).

Definition of Environment "Environment is any external force which influences us."-
J.S. Ross

"Environment is anything immediately surrounding an object and exerting a direct influence on it" **P. Gisbert.**

"A person's environment consists of the sum total of the stimulations which he receives from his conception until his death.

The term environment is used to describe, in the aggregate, all the external forces, influences and conditions, which affect the life, nature, behaviour and the growth, development and maturation of living organism. -**Douglas & Holland**

Types of Environment: Generally environment can be classified into the following two major categories-

(a) Internal Environment

(b) External Environment

(a) Internal environment: It refers to the circumstances of pregnancy that surround the fetus. Chromosomes and chromosomes inside the cell and genes to inherit. Therefore, the environment in which they grow in the uterus is very important. Chromosomes and chromosomes are held inside the cell by cytoplasm. The environment is called inter cellular environment. This environment affects the ancestors due to which special qualities are also affected. They go and according to the same a child is born.

"In fact what the organism becomes, is determined by its cytoplasm as well as its heredity" -**N. L Munn.** The embryo develops in the mother's uterus create an environment of fetus in uterus. The impact of this environment lasts throughout life. If it is disordered, there is a possibility of physical deformities in the child. Thus, the internal environment before birth also has special importance.

(b) External Environment: External environment of the organism includes all those circumstances which collectively or mixed affect its development and keeps influencing. These circumstances surround the creature. They continuously influence him, whether studied in a favorable or unfavorable direction. For convenience, the external environment can be classified as follows-

(i) Physical Environment

(ii) Social Environment

Relative Importance of Heredity and Environment: Both heredity and environment have their own importance. It has been proven through tests related to heredity and environment that the same despite heredity and similar environment, there are individual differences are found in children. Therefore, the development of a child is not only dependent on heredity but the environment also affects.

According to Crow and Crow "A person is neither 'born' to be, nor 'made what he is. Rather he is the product of the integration of biological inheritances and social heritage".

Heredity plays a more important role in the development of a child or environment; it's hard to say for sure. A section of psychologists said that fools cannot be made intelligent. In this way they increase the inheritance it is important that the class that gives importance to the environment says that anything can be made, that is, a fool can be made intelligent. This likely they give more importance to the environment, But the reality is that human development and growth both have their own importance in life and for proper development, both are important. No one can be disregarded as relative influence of both in human development and are complementary and helpful to each other. It is written in "Social Living" of Landis and Landis, "Heredity gives the capacities to be developed but opportunity for the development of these capacities must come from the environment. Heredity gives our working capital; environment gives us the opportunity to invest it. Nothing is more certain than that heredity and environment are connecting influences and that both are essential to achievement."-Garrett. The preceding discussion highlights the essential role of inheritance in shaping the educational system. Understanding both heredity and environment is crucial, as these factors significantly influence a child's development. Education plays a key role in guiding the child's growth direction.

Importance of heredity and environment in education: In modern child-centric education, the child holds significant importance in the learning process, influenced by a combination of personality, heredity, and environment. Education delivery must consider both genetic traits and surroundings. The interplay of nature and nurture is crucial in education, shaping a well-rounded individual ready for life. Educators emphasize the equal importance of heredity and environment in teaching and learning. Teachers should recognize how these factors impact learning, guiding students to take ownership of their education rather than imparting knowledge passively. By fostering independence and critical thinking, educators help students become lifelong learners, expanding their minds and hearts. Information concerning the environment and its influence on child maladjustment can be beneficial. Rather than disregarding this issue, it is advisable to establish an environment that minimizes its effects and enhances the child's behavior. Studies have demonstrated the significant impact of the environment on a child's behavior. Consequently, schools strive to cultivate a supportive educational setting. Library for all this In addition to sports and exercise, various co-curricular activities are arranged. The impact of an environment abundant in such activities on a child's emotions is extensive. Consequently, the environment plays a significant role in shaping character.

Newman and Freeman conducted research on twins, demonstrating that the environment influences educational accomplishments, personality, and temperament to a greater extent. The child's development is influenced by the environment. A positive environment can lead to virtuous and well-rounded children, while a negative environment can result in negative behavior and lack of character. Parents, schools, and teachers play a crucial role in shaping the school environment to promote positive development in children. Efforts are made to ensure that children develop in a positive direction. The primary focus of the education system is instruction and its key elements. Teachers, according to contemporary psychologists and educators, play a crucial role in ensuring the optimal and well-rounded growth of children, taking into account their backgrounds. This pertains to the facilitation of a positive and conducive classroom setting, which is integral to teaching. Successful teaching requires teachers to understand both heredity and environment. Sorenson believes that heredity plays a crucial role in human development for educators. Additionally, having a good grasp of the impact and interplay between the environments is essential.

Conclusion: Human development is a complex process. Both heredity and environment do not solely determine the course of development. They work in tandem during the developmental process. Heredity requires an environment to function, while environmental factors can only contribute to the genetic capabilities of a growing organism. The environment encompasses physical and social elements that influence a child's development, such as home, family, neighborhood, peers, school, teachers, political and religious institutions, and society at large. Every individual changes from birth to maturity. Environmental components can impact a person's health. The environment includes everything that influences a child beyond their inherited traits. Heredity and environment are equally important in shaping human nature. Sometimes heredity has a more significant impact on children's development during their preschool years or at home. Conversely, in other cases, the environment plays a crucial role in shaping human nature. Parents have the power to influence both factors and can work together to enhance their child's development. While preschool teachers cannot control a child's heredity, they can improve the child's environment. Therefore, as educators, it is essential to provide a rich and stimulating environment to support the child's healthy development.

References:

1. Akamatsu CT. Mind, Culture and Activity. Intelligence, Heredity, and Environment (Book Review). 1999; 6(1):84-89.
2. Birch HG, Cussow JD. Disadvantaged children: Health, Nutrition and school failure. New York: Grune & Stratton, 1970.
3. Bouchard TJ, McGue M. Science. Familial studies of intelligence: A review, 1981; 212(4498):1055-1059.
4. Freeman FN, Holyinger KH, Mitchell BC. The influence of environment on the intelligence, school achievement, and conduct of foster children. Year of the National Society for the study of Education, 1928; 27:103-217.
5. Haldance JBSC. The interaction of nature and nurture Annals of Eugenics, 1946; 13:197-205.
6. Hanson RA. Consistency and stability of home environmental measures related to IQ Child Development, 1975; 46:470-480.

7. Jencks C, Smith M, Acland H, Bane MJ, Cohen B, Gneiss H et al. *Inequality : A reassessment of the effects of family and schooling in America*. New York: Basic Books, 1972.
8. Lloyd-Still JD. Clinical studies on the effects of malnutrition during infancy and subsequent physical and intellectual development. In J.D. Lloyd - Still (Ed.), *Malnutrition and intellectual development*. Littleton, MA: Publishing Sciences Group, 1976.
9. Oberle MW. Lead poisoning: A preventable childhood disease of the stums *Science*, 1969; 165:991-992.
10. Plomin R, DeFries JC, Lochlin JC. Genotype environment interaction and correlation in the analysis of human behavior. *Psychological Bulletin*, 1977; 84:309-322.
11. Singh BR. *Educational studies* (Carfax publishing). The genetic environmental influences on individual cognitive functioning or IQ, 1996; 22(1):41-57.
12. Stein ZA, Susser M, Saenger G, Marolla F. *Famine and human development: The Dutch hunger winter of 1944/45*. New York: Oxford University Press. 1975.
13. Vale JR. *Genes, environment, and behavior*, New York: Harper & Row. 1980.
14. Wolf RM. The measurement of environments. In C.W. Harris (Ed.), *Proceedings of the 1964 Invited Conference on Testing Problems*. Princeton: Educational Testing Service, 1965



वृद्धि और विकास

धर्मेन्द्र कुमार,
प्राचार्य

आर. एल. महतो इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन
रामपुर जलालपुर, दलसिंह सराय, जिला— समस्तीपुर, बिहार

प्रस्तावना

मानव विकास का अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है। एक शिक्षक को बालक की वृद्धि के साथ साथ उस में होने वाले विभिन्न प्रकार के विकास तथा उसकी विशेषताओं का ज्ञान होना आवश्यक है तभी वह शिक्षा की योजना का क्रियान्वयन, विकास तथा वृद्धि के सन्दर्भ में कर सकता है। वृद्धि एवं विकास, ये दोनों शब्द प्रायः बिना कोई भेदभाव किये पर्यायवाची शब्दों के रूप में इस्तेमाल किये जाते रहे हैं। परन्तु अगर कुछ बारीकी से देखा जाये तो वृद्धि एवं विकास दोनों के बीच बहुत कुछ अंतर दिखलाई पड़ता है। इस अंतर की समझ को बढ़ाने के लिए हम इस इकाई का अध्ययन कर सकते हैं।

वृद्धि और विकास से तात्पर्य

फ्रैंक ने वृद्धि को कोशीय वृद्धि के रूप में प्रयुक्त करते हुए कहा है "शरीर एवं व्यवहार के किसी पहलू में होने वाले परिवर्तन को वृद्धि कहते हैं एवं समय की दृष्टि से व्यक्ति में जो परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं वे विकास कहलाते हैं।"

मेरिदिथ ने अपने शब्दों में वृद्धि का प्रयोग केवल आकार की वृद्धि के अर्थ में किया है और विकास का प्रयोग विभेद या विशिष्टीकरण के रूप में।

सोरेन्सन के अनुसार "सामान्य रूप से वृद्धि शब्द का प्रयोग शरीर और उसके अंगों के भार और आकार में वृद्धि के लिए किया जाता है। इस वृद्धि को नापा और तोला जा सकता है। विकास का सम्बन्ध "वृद्धि" से अवश्य होता है पर यह शरीर के अंगों में होने वाले परिवर्तनों को विशेष रूप में व्यक्त करता है।"

हरलॉक के अनुसार "विकास, वृद्धि तक ही सीमित नहीं है। इसके बजाय, इसमें प्रोढावस्था के लक्षण की और परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताओं और नवीन योग्यताएँ प्रकट होती हैं।"

अतः "वृद्धि" शब्द का उपयोग, किसी व्यक्ति के शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक संरचना में होने वाले उन परिवर्तनों के लिए किया जाता है जो आसानी से दृष्टिगत हो या जिन्हें सरलता से नापा जा सके। विकास का अर्थ उन गुणात्मक परिवर्तनों से है, जिसे व्यक्ति अपने अनुभवों और परिपक्वता के कारण प्राप्त करता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है की वृद्धि विशेष आयु तक चलने वाली प्रक्रिया है तथा यह परिणात्मक परिवर्तन की अभिव्यक्ति है। आगे वृद्धि विकास का एक चरण है। वृद्धि में हुए परिवर्तनों को देखा और नापा जा सकता है एवं यह केवल शारीरिक परिवर्तन को प्रकट करता है। वहीं विकास जन्म से मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया है तथा यह गुणात्मक तथा परिणात्मक पक्षों की अभिव्यक्ति है। विकास में वृद्धि भी सम्मिलित है। विकास में हुए परिवर्तनों को अनुभव किया जा सकता है लेकिन उन्हें नापा नहीं जा सकता। विकास में संपूर्ण पक्षों के परिवर्तनों को संयुक्त रूप से महसूस किया जा सकता है।

एक व्यक्ति के जीवन की प्रत्येक अवस्था में कुछ निश्चित विकासात्मक प्रक्रियायें घटित होती रहती हैं जो की उसके जीवन के विभिन्न पक्षों जैसे सामाजिक, शारीरिक, संवेगात्मक, मनोवैज्ञानिक आदि में परिवर्तन लाती हैं। परिवर्तन की गति अथवा उसकी दर व्यक्तियों में भिन्न भिन्न हो सकती हैं पर यह एक निश्चित एवं पूर्वानुमानित प्रारूप के अनुसार ही घटित होती हैं। वृद्धि और विकास के बीच अंतर को हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं।

वृद्धि	विकास
वृद्धि शब्द तादाद या परिणाम सम्बन्धी परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे बच्चे के बड़े होने के साथ आकर, लम्बाई, ऊंचाई और भार आदि में होने वाले परिवर्तन को वृद्धि कहते हैं।	विकास शब्द वृद्धि की तरह केवल परिमाण सम्बन्धी परिवर्तनों के व्यक्त न कर ऐसे सभी परोवार्तनों के लिए प्रयुक्त होता है जिससे बालक की कार्यक्षमता, कार्यकुशलता और व्यवहार में प्रगति होती है।
वृद्धि एक तरह से संपूर्ण विकास प्रक्रिया का एक चरण है। विकास के परिमाण और तादाद सम्बन्धी पक्ष कहा जाता है।	विकास शब्द अपने आप में एक विस्तृत अर्थ रखता है। यह व्यक्ति में होने वाले सभी परिवर्तनों को प्रकट करता है।
वृद्धि शब्द व्यक्ति के शरीर के किसी भी अवयव तथा व्यवहार के किसी भी पहलू में होने वाले परिवर्तनों को प्रकट कर सकता है।	विकास किसी एक अंग प्रत्यंग में अथवा व्यवहार के किसी एक पहलू में होने वाले परिवर्तनों को नहीं बल्कि व्यक्ति में आने वाले संपूर्ण परिवर्तनों को इकट्ठे रूप में व्यक्त करता है।
वृद्धि की क्रिया आजीवन नहीं चलती, बालक द्वारा परिपक्वता ग्रहण करने के साथ साथ यह समाप्त हो जाती है।	विकास एक सतत प्रक्रिया है। वृद्धि की तरह बालक के परिपक्व होने पर समाप्त न होकर यह आजीवन चलती है।
वृद्धि के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन बिना कोई विशेष प्रयास किये दृष्टिगोचर हो सकते हैं। साथ ही इन्हें भली भांति नापा जा सकता है।	विकास शब्द कार्यक्षमता, कार्यकुशलता और व्यवहार में आने वाले गुणात्मक परोवार्तनों को भी प्रकट करता है। इस परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप में मापना कठिन है। इन्हें केवल अप्रत्यक्ष तरीकों जैसे व्यवहार करते हुए बालक का निरीक्षण करने आदि से ही मापा जा सकता है।
वृद्धि के साथ साथ सदैव विकास होना भी आवश्यक नहीं है। मोटापे के कारण एक बालक के भार में वृद्धि हो सकती है परन्तु इस वृद्धि से उसकी कार्यक्षमता एवं कार्यकुशलता में कोई वृद्धि नहीं होती और इस तरह से उसकी वृद्धि विकास को साथ लेकर नहीं चलती है।	दूसरी और विकास भी वृद्धि के बिना संभव हो सकती है। कई बार यह देखा जाता है कि कुछ बच्चों की ऊंचाई, आकर और भार में समय गुजरने के साथ कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता परन्तु उनकी कार्यक्षमता तथा शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक योग्यता में बराबर प्रगति होती रहती है।

इस तरह से बारीकी से देखने पर वृद्धि और विकास दोनों प्रक्रियाओं में पर्याप्त अंतर दिखाई पड सकता है। मानव जीवन के सामाजिक, शारीरिक, संवेगात्मक, बौद्धिक आदि पहलुओं से सम्बंधित ये सभी परिवर्तन जैसे कि हर्लोक (1956) का विचार है, निम्न प्रमुख वर्गों में रखा जा सकता है –

- १) **आकर में परिवर्तन** – गतिवाही अनुक्षेत्रों में व्यक्ति के शरीर का वजन बढ़ जाता है, जबकि मानसिक दृष्टि से उसकी स्मरण शक्ति, शब्दावली, प्रत्यक्षीकरण, तर्क एवं निर्णय आदि की क्षमता में वृद्धि होती है।
- २) **अनुपात में परिवर्तन** – शारीरिक दृष्टि से व्यक्ति के कायिक डील डौल, गठन एवं विभिन्न अंगों के अनुपात में तबदीली होती है जबकि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह अपनी दुनिया के बारे में अति कल्पना की दशा से ऊपर उठकर वास्तविकता को समझने लग जाता है।
- ३) **पुराने लक्षण लुप्त होना** – शारीरिक क्षेत्रों के थैमस ग्रंथि, बाल, दांत, आँख, कान, आदि की आकृति तथा मानसिक क्षेत्रों में तुतलाकर बोलने, अतिकल्पनात्मक मान्यताओं तथा अभिवृत्तियों में तबदीली आ जाती है।
- ४) **नए लक्षण प्रकट होना** – शरीर के गुप्त स्थलों में बाल, सिर के बाल, छाती तथा कूल्हों में स्थूलता आदि नयी आकृतियों के अधिग्रहण की निशानी है, जबकि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्ति के आचरण, उसकी नैतिकता एवं मानसिकता में परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देने लग जाता है।

इन सभी प्रकार के परिवर्तनों के परिमाणात्मक और गुणात्मक दोनों ही पहलू हैं। ऊपर व्यक्त किये गए विकास, मानव के जीवन में विभिन्न आयामों में होता है।

वृद्धि और विकास के विभिन्न आयाम

अगर वृद्धि और विकास को हम सामान अर्थों में प्रयुक्त करें तो बच्चे के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हमें निम्न रूपों अथवा पहलूओं में बढता हुआ व्यक्त होता है –

- 1) **शारीरिक विकास** – व्यक्ति के शारीरिक विकास में उसके शरीर के बाह्य एवं आंतरिक अवयवों का विकास शामिल होता है।
- 2) **मानसिक और बौद्धिक विकास** – इसमें सभी प्रकार की मानसिक शक्तियां जैसे – सोचने विचारने की शक्ति, कल्पना शक्ति, स्मरण शक्ति तथा एकाग्रता, सृजनात्मकता, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, और सामान्यीकरण आदि से सम्बंधित शक्तियों का विकास सम्मिलित होता है। इसमें विभिन्न संवेगों की उत्पत्ति, उनका विकास तथा इन संवेगों के आधार पर संवेगात्मक व्यवहार का विकास सम्मिलित होता है।
- 3) **संवेगात्मक विकास** – संवेग, व्यक्ति की उत्तेजित दशा है। इसके अंतर्गत अपने संवेगों पर नियंत्रण और उसका उचित समय पर उचित प्रदर्शन की क्रियाओं का विकास सम्मिलित है।
- 3) **नैतिक अथवा चारित्रिक विकास** – इसके अंतर्गत नैतिक भावनाओं, मूल्यों तथा चरित्र संबंधी विशेषताओं का विकास सम्मिलित होता है।
- 4) **सामाजिक विकास** – एक बच्चा प्रारंभ में एक असामाजिक प्राणी होता है। उसमें उचित सामाजिक गुणों का विकास कर समाज के मूल्यों एवं मान्यताओं के अनुसार व्यवहार करना सिखना सामाजिक विकास के अंतर्गत आता है।
- 5) **भाषात्मक विकास** – भाषात्मक विकास में बालक के अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का जानना और उसके प्रयोग से सम्बंधित योग्यताओं का विकास शामिल होता है।

अन्य प्राणियों की अपेक्षा, मनुष्य के शारीरिक विकास की गति धीमी होती है। शैशवावस्था में शारीरिक वृद्धि एवं परिवर्तन तीव्रतम गति से होता है। बाल्यावस्था में यह गति धीमी हो जाती है परन्तु किशोरावस्था में विकास तीव्रतम गति से होता है। शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था में शारीरिक विकास 'सिर से पैर की ओर' एवं 'निकट से दूर की ओर' के नियमनुसार होता है।

शारीरिक वृद्धि और विकास

शारीरिक वृद्धि और विकास का अर्थ

हमारे शारीरिक ढांचे और आंतरिक तथा बाह्य अवयवों में जन्म से लेकर मृत्यु तक कुछ न कुछ परिवर्तन आते रहते हैं। परिवर्तनों की इस प्रक्रिया को ही शारीरिक वृद्धि और विकास का नाम दिया जाता है। सामान्यतया उस प्रकार के परिवर्तन निम्नलिखित दिशाओं के देखने को मिलते हैं –

- 1) **डोल डोल एवं बाह्य ढांचे से सम्बंधित परिवर्तन** – इस प्रकार के परिवर्तनों में ऊंचाई, भार, शारीरिक, अनुपात आदि ऊपरी दिखाई देने वाले सभी प्रकार के परिवर्तन शामिल किये जा सकते हैं।
- 2) **आंतरिक अवयवों में होने वाले परिवर्तन** – इसके अंतर्गत शरीर के सभी महत्वपूर्ण तंत्रों जैसे स्नायु तंत्र, श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र, रक्त तंत्र, उत्सर्जन एवं उत्पादक आदि महत्वपूर्ण तंत्रों तथा विभिन्न ग्रंथियों की कार्यप्रणाली और क्षमता से सम्बंधित सभी प्रकार के परिवर्तन शामिल किये जाते हैं।

शारीरिक वृद्धि और विकास की प्रक्रिया व्यक्तित्व के उचित समायोजन और विकास के मार्ग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जन्म के प्रारंभ से एक शिशु सब तरह से दूसरों की कृपा पर निर्भर करता है। उसे अपनी सभी प्रकार की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए माँ बाप एवं परिवार के सदस्यों पर आश्रित रहना पडता है। शारीरिक वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप आये हुए परिवर्तनों के माध्यम से धीरे धीरे वह अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के समर्थ बन जाता है। इस क्षेत्र में आई हुई आत्म-निर्भरता उसे अपने व्यक्तित्व के अन्य पक्षों में भी पर्याप्त रूप से स्वावलंबी बनाने में सहायता करती है और इस तरह वह धीरे धीरे पूर्ण परिपक्वता की ओर अग्रसर होता चला जाता है।

शारीरिक वृद्धि और विकास का सामान्य स्वरूप

1) ऊंचाई और भार के वृद्धि का सामान्य स्वरूप –

जन्म के समय एक बच्चे की ऊंचाई 19 या 20 इंच तथा भार 7 या 8 पौंड से लगभग होता है। उस समय लडके लडकियों की अपेक्षा भार और ऊंचाई दोनों में ही आगे होते हैं। पहले दो वर्षों में दोनों की ही ऊंचाई और भार में तेजी से वृद्धि होती है। तीसरे वर्ष से वृद्धि की यह गति कुछ कम हो जाती है और पूर्व बाल्यावस्था तक यही हाल रहता है। पांच वर्ष तक एक सामान्य बालक की ऊंचाई उसके जन्म के समय की ऊंचाई की लगभग दो गुनी तथा भार लगभग पांच गुना हो जाता है। किशोरावस्था के आगमन के साथ साथ एक बार फिर शैशवावस्था की तरह भार और ऊंचाई दोनों की वृद्धि में तीव्रता आती है। लडकियाँ लडकों की अपेक्षा किशोरावस्था में जल्दी प्रवेश करती हैं। अतः 10 और 12 वर्ष के बीच ऊंचाई और भार दोनों में ही लडकियाँ अपनी आयु के लडकों से आगे निकल जाती हैं लेकिन इस मुकाबले में वह बहुत दिनों तक आगे नहीं रह पाती तथा किशोरावस्था की समाप्ति होते होते लडके लडकियों से बाजी मार लेते हैं।

2) शारीरिक अनुपात में परिवर्तन –

आकर में वृद्धि होने के साथ साथ बच्चों के शारीरिक अवयवों के अनुपात में भी उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। उदहारण के लिए जन्म के समय बच्चे का सिर उसके शरीर की सम्पूर्ण लम्बाई का एक चौथाई भाग होता है और यह आकर में हाथ पैरों की तुलना में अधिक बड़ा दिखायी देता है, परन्तु जैसे जैसे बच्चा बड़ा होता चला जाता है उसका सिर अपने अनुपात में छोटा होता जाता चला जाता है और किशोरावस्था की समाप्ति तक यह शारीरिक लम्बाई के 1/8 भाग के बराबर ही रह जाता है। सिर के अतिरिक्त टांगे, बाजू तथा शरीर के अन्य अवयवों के अनुपात में भी तेजी से परिवर्तन आते चले जाते हैं।

3) आंतरिक अंगों में वृद्धि और विकास

जन्म के बाद से ही शरीर के समस्त आंतरिक अंगों में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है जिसके फलस्वरूप बच्चा अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने में पर्याप्त स्वावलंबी बन जाता है। नीचे कुछ महत्वपूर्ण अंगों की वृद्धि और विकास का संक्षिप्त रूप से वर्णन किया जा रहा है

क) स्नायु तंत्र – मां के गर्भ और जीवन के प्रथम चार वर्षों में स्नायु तंत्र तेजी से विकसित होता है। इस विकास के फलस्वरूप जन्म से स्नायु कोशिकाओं की संख्या और आकार में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। जन्म के बाद वर्षों तक नवीन कोशिकाओं का निर्माण नहीं होता अपितु कोशिकाओं में जो कुछ अपरिपक्वता रह जाती है उसे पूरा करने के लिए ही विकास कार्य चलता रहता है।

ख) मांसपेशी तंत्र – जन्म के पश्चात ही मांसपेशियों का निर्माण नहीं होता फिर भी उसका समुचित रूप से विकास होता रहता है। बच्चे की मांसपेशियाँ हड्डियों से भली-भांति नहीं जुड़ी रहती और पौधों की अपेक्षा अधिक नाजुक होती है परंतु धीरे-धीरे उनकी आकृति, आकार एवं संरचना में अंतर आता चला जाता है और वे अधिक से अधिक शक्तिशाली होती जाती हैं।

ग) रक्त परिभ्रमण और श्वसन तंत्र – जीवन के प्रारंभिक वर्षों में फेफड़े और हृदय दोनों ही आकार में बहुत छोटे होते हैं। आयु के साथ साथ उनका आकार और वजन बढ़ता चला जाता है और किशोरावस्था की समाप्ति पर उनका पर्याप्त विकास हो जाता है। आकर, वजन आदि बढ़ने के साथ-साथ उनकी कार्य क्षमता में भी यथेष्ट वृद्धि हो जाती है। जहां किशोरावस्था से पहले उनका विकास तेजी से होता है वहीं किशोरावस्था के पश्चात विकास की गति बहुत कम ही रह जाती है।

घ) पाचन तंत्र – बड़ों की तुलना में बच्चों के पेट का आकार बहुत छोटा होता है। जहां बड़ों का पेट थैली जैसी आकृति का होता है वहां बच्चों का पेट नली जैसी आकृति का होता है। इसी कारण बच्चों के पेट में एक साथ ना केवल कम भोजन समा सकता है बल्कि वह बड़ों की अपेक्षा खाली भी जल्दी हो जाता है। इसी कारण बच्चों को बड़ों की अपेक्षा अधिक बार भोजन ग्रहण करने की आवश्यकता होती है। अधिक भोजन ग्रहण करने के अतिरिक्त उन्हें अपने विकास की प्रकृति को यथावत बनाए रखने के लिए अधिक संतुलित और शक्ति जन्य आहार की आवश्यकता होती है।

अगर शारीरिक वृद्धि और विकास का ठीक प्रकार से अवलोकन किया जाए तो हमें निष्कर्ष के रूप में निम्न बातें मिलती हैं

1. पहले दो या तीन वर्षों में शारीरिक वृद्धि और विकास की गति बहुत तीव्र होती है।
2. इसके पश्चात के भागों में किशोरावस्था के शुरु होने तक यह मंद गति से आगे बढ़ता रहता है।
3. किशोरावस्था के पहले तीन वर्षों में इस गति में शैशवावस्था की तरह तीव्रता देखने को मिलती है।
4. बाद के वर्षों में परिपक्वता ग्रहण करने तक वृद्धि और विकास की गति में पुनः गिरावट आने लगती है।

शारीरिक वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक

शारीरिक वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक हो सकते हैं। कुछ महत्वपूर्ण कारकों का उल्लेख नीचे किया गया है।

1. गर्भाधान के समय वंशानुक्रम द्वारा ग्रहण की गई पैतृक विशेषताएं और गुण
2. अकेले एक बच्चे का अथवा एक साथ कई बच्चों का जन्म
3. गर्भ काल में माता की शारीरिक और मानसिक अवस्था
4. गर्भावस्था में माता के माध्यम से बच्चों को प्राप्त होने वाली पोषक सामग्री
5. माता के द्वारा बच्चों को सामान्य अथवा असामान्य रूप से जन्म देना
6. जन्म देते के समय माता का स्वास्थ्य और उसकी देखभाल
7. जन्म के बाद शिशु और माता की देखभाल
8. जन्म के पश्चात के वर्षों में शिशु का पोषण
9. शारीरिक दोषों एवं न्यूनता की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति
10. सारी सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां तथा वातावरण
11. आत्माभिव्यक्ति और खेल कूद, व्यायाम तथा मनोरंजन के अवसर
12. बालक का संवेगात्मक और सामाजिक समायोजन
13. पर्याप्त अथवा अपर्याप्त निद्रा एवं विश्राम
14. पर्याप्त अथवा अपर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं

शारीरिक वृद्धि और विकास का महत्व और उसकी शैक्षणिक उपयोगिता

शारीरिक विकास व्यक्तित्व के सभी पक्षों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः इस पर पूरा पूरा ध्यान दिया जाना आवश्यक है। बच्चों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। यदि अध्यापक बच्चों के शारीरिक वृद्धि और विकास की प्रक्रिया से अपने आप को परिचित कर लेता है तो उसे निम्न प्रकार से सहायता मिल सकती है –

1. शारीरिक रूप से आसामान्य बच्चों के विषय में अवगत होने पर एक अध्यापक ऐसे बच्चों के समुचित सामाजिक एवं संवेगात्मक समायोजन तथा शिक्षा ग्रहण करने में सहायता कर सकता है।
2. बालकों के समुचित विकास में शारीरिक वृद्धि और विकास से परिचित होने से अध्यापक को बालकों के सर्वांगीण विकास में सहायता मिल सकती है।
3. बच्चों की रुचियाँ, आवश्यकताएँ इच्छाएँ, दृष्टिकोण और उनका संपूर्ण व्यवहार शारीरिक वृद्धि और विकास पर निर्भर करता है और इस प्रकार के ज्ञान द्वारा अध्यापकों को बालकों को भली-भाँति समायोजित करने, उनकी समस्याओं को सुलझाने और आवश्यकताओं को पूरा करने में आसानी होती है।
4. बच्चों की शारीरिक वृद्धि और विकास के सामान्य ढांचे से परिचित हो कर अध्यापक को पाठान्तर क्रियाओं, समय विभाग चक्र, पढ़ाने की विधि, पाठ्यपुस्तक, सहायक सामग्री और पढ़ने के लिए उपयुक्त स्थान, फर्नीचर और वातावरण का चुनाव करने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है।

मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास

मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास का अर्थ

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार शारीरिक वृद्धि और विकास के फलस्वरूप बालकों की सारी क्षमताओं, योग्यताओं और सामर्थ में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। इस कारण वे युवावस्था में ऐसे कार्य करने में समर्थ हो जाते हैं जो वे छोटी आयु में नहीं कर पाते थे। इसी प्रकार बच्चा अपने

बाल्यकाल में ऐसे कार्य नहीं कर सकता था जिन्हें करने के लिए अधिक विकसित मानसिक शक्तियों की आवश्यकता होती है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है वैसे वैसे उसकी मानसिक योग्यताएँ और क्षमताएँ बढ़ती जाती हैं और वह ऐसी समस्याओं को जिन्हें वह बचपन में नहीं सुलझा पाता था आसानी से सुलझाने लगता है। इस प्रकार से मानसिक अथवा बौद्धिक विकास से तात्पर्य बालक की उन सभी मानसिक योग्यताओं और क्षमताओं में वृद्धि और विकास से है जिसके फलस्वरूप वह अपनी निरंतर बढ़ते हुए वातावरण में ठीक प्रकार समायोजन करता है और बड़ी-बड़ी तथा उलझनपूर्ण समस्याओं को सुलझाने में अपनी मानसिक शक्तियों को पूरी तरह समर्थ पाता है।

मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास का सामान्य स्वरूप

वृद्धि और विकास की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाली मानसिक वृद्धि और विकास को ध्यान में रखकर आगे के पृष्ठों में मानसिक विकास के विभिन्न पहलुओं या दूसरे शब्दों में विभिन्न महत्वपूर्ण मानसिक और बौद्धिक योग्यताओं और शक्तियों के क्षेत्र में बच्चा अपनी आयु के साथ-साथ किस प्रकार आगे बढ़ता है इस बात की चर्चा की गई है।

क) संवेदना और प्रत्यक्षीकरण

संवेदना और प्रत्यक्षीकरण, दोनों ही मानसिक विकास के महत्वपूर्ण पहलू माने जाते हैं। आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा आदि जननेंद्रियों के द्वारा हमें जो कुछ भी अनुभूति होती है उसे संवेदना कहा जाता है। जब संवेदनाओं से कोई निश्चित अर्थ निकालने की चेष्टा की जाती है तो वह प्रत्यक्षीकरण का रूप धारण कर लेती है। प्रारंभ में एक बच्चा संवेदना और प्रत्यक्षीकरण दोनों में बहुत पिछड़ा हुआ होता है। उसकी ज्ञानेंद्रियां इतनी अधिक विकसित नहीं होती कि वह वस्तुओं की पहचान कर सकता है और ना उससे कोई विशेष अर्थ ग्रहण कर पाता है। आयु के साथ वह व्यक्तियों और वस्तुओं में अंतर को समझने और उन्हें पहचानने लग जाता है। अब वह परिचित तथा अपरिचित में भेद करने लगता है। इस प्रकार से धीरे-धीरे वह अपने वातावरण से परिचित होने लगता है और उस में निहित वस्तुओं और व्यक्तियों को पहचान कर उनको भली-भांति जानने, अर्थ ग्रहण करने तथा उनसे प्रयोजन सिद्ध करने की चेष्टा करने लगता है। धीरे-धीरे वह वस्तुओं के प्रत्यक्ष संपर्क में आकर उनके नाम या कोई ध्वनि विशेष के माध्यम से ही अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करना आरंभ कर देता है। इस प्रकार से वह अपनी ज्ञानेंद्रिय का उपयोग करना प्रारंभ कर देता है तो उसकी अपने चारों ओर के वातावरण के विषय में अधिक से अधिक जानने की जिज्ञासा भी बहुत बढ़ जाती है। वह किसी घटना या वस्तु को क्यों, क्या और कौन जैसे प्रश्नों से जोड़ कर अनगिनत प्रश्न पूछने का प्रयास करता है। प्रारंभ में बच्चों में समय, स्थान, आकर, गति और दूरी से संबंधित प्रत्यक्षीकरण विकसित नहीं होते। इसी कारण उसे दूर जाती हुई वास्तविक रेलगाड़ी अपनी खिलौना गाड़ी जैसी दिखाई देती है। धीरे-धीरे उसकी प्रत्यक्षीकरण योग्यता विकसित होने लगती है। जैसे जैसे वह किशोरावस्था की ओर पग बढ़ता है, ज्ञानेंद्रियों की कार्यकुशलता और क्षमता अपने शिखर तक पहुँच जाती है और उनके प्रत्यक्षीकरण का ढंग सुव्यवस्थित और विवेक पूर्ण बन जाता है। अब उसके प्रत्यक्षीकरण अनुभव अधिक निश्चित, अर्थपूर्ण एवं विस्तृत हो जाते हैं तथा उनके ऊपर उसकी आवश्यकताओं, रुचियों और मानसिक तैयारी के अतिरिक्त उसके विश्वासों, विचारों तथा आदर्शों इत्यादि की गहरी छाप पड़ना प्रारंभ हो जाता है।

ख) संप्रत्यय निर्माण

बच्चों में संप्रत्ययों का निर्माण, उनके मानसिक विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। संप्रत्यय एक प्रकार से ऐसे सामान्यकृत विचार हैं जो एक व्यक्ति द्वारा विभिन्न प्रत्यक्षीकरण द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से विभिन्न व्यक्ति तथा क्रियाओं के बारे में बना लिया जाता है। संप्रत्यय निर्माण में विविधीकरण और समानीकरण से संबंधित दोनों प्रकार की योग्यताओं का उपयोग होता है। वस्तुओं अथवा मनुष्यों को पहचान कर विविधीकरण कर सकने की योग्यता बच्चे में बहुत शीघ्र विकसित होने लगती है। बाद में जब वह अपनी प्रत्यक्षीकरण संबंधी अनुभव के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करना प्रारंभ कर देता है तब संप्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। संप्रत्यय निर्माण में सभी प्रकार के पूर्व तथा वर्तमान अनुभव महत्व रखते हैं। बाल्यावस्था के प्रारंभ में वास्तविक वस्तुओं के द्वारा ग्रहण किए गए अनुभव संप्रत्यय निर्माण में बहुत सहयोग देते हैं। इन की सहायता से बच्चे के अंदर विभिन्न संप्रत्ययों का निर्माण हो जाता है। जब बच्चा कुछ बड़ा हो जाता है तो उस में प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा संप्रत्ययों का निर्माण होने लगता है। बाद

के वर्षों में बालकों में ना केवल नए-नए संप्रत्ययों का निर्माण होता है बल्कि उसके अंदर पहले से ही विद्यमान पुराने संप्रत्ययों को भी नवीन रूप में मिलता रहता है। नयी अनुभवों का कसौटी पर खरा ना उतरने के कारण त्याग भी करना पड़ता है।

ग) स्मरणशक्ति का विकास

विकास का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू स्मरण शक्ति है। जन्म के समय बच्चों में स्मरण शक्ति कितनी मात्रा में होती है इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। आयु में वृद्धि होने पर परिपक्वता और अनुभवों के माध्यम से इसका धीरे-धीरे विकास होने लगता है। शुरु के छह महीने के बच्चे जो बातें उनके चारों ओर होती है केवल उन्हीं को स्मरण रखते हैं परंतु साल के अंत तक उनमें वास्तविक स्मरणशक्ति विकसित होने के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। बाल्यावस्था के प्रारंभ में बच्चों में स्मरणशक्ति के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देने लग जाते हैं परंतु छोटी अवस्था में बच्चों की स्मरणशक्ति रद्द तोते की तरह होती है। बाल्यावस्था के बाद के वर्षों और किशोरावस्था में मनन शक्ति धीरे धीरे तर्क और सूझ-बूझ पर निर्भर होने लगती है। प्रौढ़ अवस्था के अंतिम वर्षों में स्मरण शक्ति कम होना प्रारंभ कर देती है।

घ) समस्या समाधान योग्यता का विकास

समस्या समाधान करने की योग्यता भी मानसिक विकास का महत्वपूर्ण पहलू है। किसी के सामने किसी न किसी रूप में अनगिनत समस्याएं रहती हैं। उनका समाधान करने के लिए इस प्रकार की योग्यता की आवश्यकता होती है। सोचने, विचारने और तर्क करने की शक्ति दो से तीन वर्ष की आयु तक विकसित हो जाती है परंतु उनकी विचार शक्ति अधिक सूक्ष्म नहीं होती। वह अमूर्त विचारों का चिंतन करने में प्रायः असमर्थ होता है लेकिन धीरे-धीरे आयु बढ़ने के साथ उसमें अमूर्त विचारों का चिंतन करने और सूक्ष्मता के साथ संबंध बनाने की योग्यता आने लगती है। अब वह मौलिक तथा अमूर्त विचारों, काल्पनिक चित्रों, सूत्रों तथा संकेतों की सहायता से विभिन्न समस्याओं को सुलझाने में समर्थ बन जाता है। इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रारंभिक अवस्था में बच्चों के सामने हल करने के लिए ऐसी सरल और उपयोगी समस्याएं प्रस्तुत की जानी चाहिए जो उनके वातावरण से संबंधित हो और जिनके हल के लिए काल्पनिक या अमूर्त विचार, चिंतन तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षण की कम-से-कम आवश्यकता पड़ती हो फिर जैसे जैसे उनकी उम्र बढ़ती जाए, उनके सामने कठिन और कठिनतर समस्याएं रखी जानी चाहिए। इस प्रकार से बच्चों में धीरे धीरे समस्या समाधान योग्यता विकसित की जानी चाहिए।

मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक

वंशानुक्रम और वातावरण दोनों ही मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास को अधिक से अधिक प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं। गर्भाधान के समय अपने माता-पिता के माध्यम से मानसिक विशेषताओं और गुणों के रूप में जो कुछ भी वंशानुगत पूंजी उसे प्राप्त होती है, वह भविष्य में उसकी मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास की दिशा में एक ठोस आधार का कार्य करती है। इस आधार के ऊपर अपनी आयु में वृद्धि के साथ साथ बच्चा अपने भौतिक, सामाजिक और शैक्षिक वातावरण के सहारे मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास के रूप में भव्य प्रसाद के निर्माण में संलग्न रहता है। वास्तव में देखा जाए तो परिपक्व और सीखना दोनों ही मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परिपक्व द्वारा शारीरिक वृद्धि और विकास में होने वाली यह वृद्धि मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास को काफी प्रभावित करती है। जन्म के समय मस्तिष्क और स्नायु तंत्र दोनों ही बहुत विकसित होते हैं। जन्म के पश्चात् इस में तेजी से वृद्धि और विकास आरंभ हो जाता है और जैसे-जैसे इन में परिपक्वता आती जाती है वैसे वैसे बच्चे की मानसिक और बौद्धिक शक्तियां और योग्यताएं बढ़ जाती हैं। इस प्रकार स्नायु तंत्र मानसिक और बौद्धिक विकास को एक निश्चित दिशा प्रदान करने में पूरी तरह से सहायक सिद्ध होता है।

सीखने की प्रक्रिया भी, चाहे वह औपचारिक शिक्षा अथवा किसी माध्यम से हो या फिर चाहे वह अनौपचारिक शिक्षा अथवा व्यक्तिगत अनुभव के ऊपर आधारित हो, स्वाभाविक रूप से परिपक्वता के परिणाम स्वरूप होने वाली मानसिक वृद्धि और विकास को अपनी चरमसीमा तक पहुंचाने में पूरी तरह सहायक सिद्ध होती है। मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास में इसकी भूमिका की तुलना शारीरिक वृद्धि और विकास की दिशा में शारीरिक व्यायाम द्वारा उठाए जाने वाले लाभ से की जा

सकती है जैसा कि सोरेन्सन ने लिखा है "एक बच्चे की टांगें, भुजाएं और शरीर स्वास्थ्यप्रद खेल द्वारा सशक्त बनता है। हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि मस्तिष्क और स्नायु तंत्र दोनों ही पढ़ने, गणना करने, स्मरण रखने, बोलने, कल्पना करने और अन्य मानसिक क्रियाओं के करते रहने में होने वाले अभ्यास और मानसिक व्यायाम द्वारा उन्नत और अधिक सक्षम बन जाते हैं।

मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास का महत्व और उसकी शैक्षणिक उपयोगिता

विभिन्न अवस्थाओं में मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास के स्वरूप का ज्ञान और मानसिक और बौद्धिक योग्यताओं और क्षमताओं में आयु के साथ-साथ होने वाले परिवर्तनों की अमूल्य जानकारी अध्यापक के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस उपयोगिता को संक्षिप्त रूप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

1. विभिन्न आयु स्तरों पर पाठ्यक्रम संबंधी और सहगामी क्रियाओं तथा अनुभवों के जीवन और नियोजन में इससे सहायता मिल सकती है।
2. किस विधि और तरीके से पढ़ाया जाए, सहायक सामग्री तथा शिक्षण साधन किस प्रकार उपयोग में लाया जाए, शैक्षणिक वातावरण किस प्रकार का हो यह सब निश्चित करने में भी अध्यापक को इस से सहायता मिलती है।
3. विभिन्न अवस्थाओं और आयु स्तरों पर बच्चों की मानसिक बुद्धि और विकास को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें तैयार करने में भी इस से सहायता मिल सकती है।
4. इसकी सहायता से अध्यापक को यह ज्ञात हो जाता है कि एक विशेष प्रकार की पढ़ाई और कार्य जिन्हें करने के लिए मानसिक और बौद्धिक जिस प्रकार की शक्तियों की आवश्यकता होती है, उपयुक्त समय पर उन शक्तियों के विकसित होने पर ही प्रारंभ कराने चाहिए। अनावश्यक शीघ्रता और देरी दोनों ही इस अवस्था में हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं।
5. इस प्रकार के ज्ञान द्वारा अध्यापक अपने शिष्यों की मानसिक और बौद्धिक शक्तियों और क्षमताओं के पूर्ण विकास में संपूर्ण सहयोग प्रदान कर सकता है। वह समस्याओं के समाधान और सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण दे सकता है। बिना सोचे समझे तोते की तरह रटने और अंधों की तरह इधर-उधर हाथ मारकर कार्य में सफल होने के लिए प्रयास करने की अपेक्षा तर्क शक्तियों तथा सूझ-बूझ के आधार पर ध्यान रखना और अन्य कार्य संपन्न करने में भी वह उनकी सहायता कर सकता है। उनकी निरीक्षण, प्रत्यक्षीकरण, सामान्यीकरण संबंधी योग्यताओं को विकसित करने में भी उनकी मानसिक और बौद्धिक शक्तियों की वृद्धि और विकास के स्तर को ध्यान में रखते हुए वह उनकी पूरी मदद कर सकता है।

संवेगात्मक वृद्धि और विकास

संवेगात्मक वृद्धि और विकास का अर्थ

एक बालक के संवेगात्मक विकास और व्यवहार के आधार है – उसके संवेग। हर्ष, प्रेम और उत्सुकता के समान अभिनंदनीय संवेग उसके शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास में सहयोग देते हैं जबकि भय, क्रोध और खुशियां जैसे निंदनीय संवेग उसके विकास को विकृत और कुंठित कर सकते हैं। इस प्रकार जैसा कि गेट्स एवं अन्य ने लिखा है "बालक का संवेगात्मक व्यवहार उसके विकास के अन्य पहलुओं के अनुरूप होता है और उनसे उसका अन्तःसंबंध होता है।" किसी संवेग से अभिप्राय एक ऐसी विशेष भावात्मक अनुभूति से है जिसकी उपस्थिति का एहसास शरीर के भीतर होने वाले परिवर्तनों एवं बाहर दिखाई देने वाले विशेष लक्षणों से प्रतीत होता है तथा जिसके वशीभूत व्यक्ति एक विशेष प्रकार का व्यवहार करते हुए पाया जाता है।

संवेगात्मक विकास मानव वृद्धि और विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। प्रेम, क्रोध, भय, घृणा आदि संवेग बच्चे के व्यक्तित्व और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। व्यक्ति का संवेगात्मक व्यवहार केवल उसकी शारीरिक वृद्धि और विकास को भी प्रभावित नहीं करता बल्कि बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक और सौंदर्य बोध के विकास पर भी यथेष्ट प्रभाव डालता है। संवेगों की मानव जीवन में इस बहुमुखी उपयोगिता के कारण उनके बारे में पूरी तरह जानना अति आवश्यक हो जाता है।

मॉकडूगल ने मूल प्रवृत्तियों को जन्मजात प्रवृत्तियां मानते हुए उन्हें सभी प्रकार के संवेगों को जन्म देने वाला कहा है। उनके अनुसार मूल प्रवृत्तिजन्य व्यवहार के तीन पक्ष होते हैं – ज्ञानात्मक पक्ष, भावात्मक पक्ष और क्रियात्मक पक्ष। उदाहरण के रूप में जब बच्चा किसी भयानक जानवर को

अपनी ओर आता हुआ देखता है तब उसकी मूल प्रवृत्ति जन्य व्यवहार में उपरोक्त तीन पक्ष देखने को मिलते हैं। पहले तो वह उस भयानक जानवर का प्रत्यक्षीकरण करता है। यह जानकर कि वह एक भयानक जानवर है उसे भय नामक संवेग की अनुभूति होती है। इस अनुभूति के परिणाम स्वरूप व भागकर अपने प्राण रक्षा का प्रयत्न करता है। इस प्रकार के उदाहरणों के आधार पर माँकडूगल ने यह निष्कर्ष निकाला की मूल प्रवृत्तिजन्य उत्तेजना के समय होने वाली भावात्मक अनुभूति को ही संवेग कहा जाता है। उसने मुख्य रूप से 14 मूल प्रवृत्तियों की चर्चा की और स्पष्ट रूप से संवेगों को इन प्रवृत्तियों से विकास होते हुए दिखाया है। कौन से संवेग के साथ कौन सी मूलप्रवृत्तियाँ जुड़ी है इसका ज्ञान नीचे दी गई तालिका क्र 2.3 से हो सकता है।

तालिका क्र 2.3 मूलप्रवृत्तियाँ एवं उनसे सम्बंधित संवेग

क्रमांक S.No.	मूलप्रवृत्ति (Instinct)	सम्बन्धित संवेग (Emotion accompanying it)
1.	पलायन या भागना (Escape)	भय (Fear)
2.	युयुत्सा, युद्धप्रियता (Combat)	क्रोध (Anger)
3.	निवृत्ति (Repulsion)	घृणा (Disgust)
4.	जिज्ञासा (Curiosity)	आश्चर्य (Wonder)
5.	शिशुरक्षा (Parental)	वात्सल्य, स्नेह (Tender emotion, Love)
6.	शरणागति (Appeal)	विषाद (Distress)
7.	रचनात्मकता (Construction)	संरचनात्मक भावना (Feeling of creativeness)
8.	संचयप्रवृत्ति (Acquisition)	स्वामित्व की भावना (Feeling of ownership)
9.	सामूहिकता (Gregariousness)	एकाकीपन (Feeling of loneliness)
10.	काम (Sex, Mating)	कामुकता (Lust)
11.	आत्मगौरव (Self-assertion)	श्रेष्ठता की भावना (Positive self-feeling or Elation)
12.	दैन्य (Submission)	आत्महीनता (Negative self-feeling)
13.	भोजनान्वेषण (Food-seeking)	भूख (Appetite)
14.	हास (Laughter)	आमोद (Amusement)

विकास की विभिन्न अवस्थाओं में संवेगात्मक विकास

विकास अपने सामान्य रूप में आगे बढ़ने के साथ साथ होने वाले परिवर्तनों का ही दूसरा नाम है। जन्म के पश्चात बच्चे में धीरे-धीरे विभिन्न संवेगों का जन्म होता रहता है। बचपन में संवेगों को जागृत करने वाले उद्दीपकों की प्रवृत्ति में भी बाद में पर्याप्त अंतर आता चला जाता है। संवेगों के अभिव्यक्ति करने का ढंग भी परिवर्तित होता जाता है। इन सब परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले संवेगात्मक विकास का निम्नलिखित रूप में वर्णन किया जा सकता है।

क) शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास

अपने जन्म के समय से ही अपनी चिख पुकार और हाथ-पैर चलाने के द्वारा बच्चा अपने अंदर संवेगों की उपस्थिति का आभास देता है। लेकिन इस अवस्था में उस में कौन-कौन से संवेग विद्यमान रहते हैं इस बात के कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलते। सामान्य उत्तेजना व्यक्त करने की यह अंधावस्था कुछ समय पश्चात समाप्त हो जाती है। शिशु की सामान्य उत्तेजना के द्वारा उसके हर्ष और विषाद का अनुमान लगाया जा सकता है। अचानक होनेवाली जोर की आवाज और शोरगुल, गीला बिछौना, अधिक ठंडी और गर्म चीजों का स्पर्श, भूख लगना आदि उद्दीपकों के प्रति शिशु की प्रतिक्रिया विषादयुक्त होती है वहीं दूसरी ओर प्यार से थपथपाना, गोदी में लेकर प्यार करना और मां द्वारा स्तनपान करना आदि उद्दीपकों के प्रति उसकी क्रिया आनंदमय चेष्टाओं के रूप में प्रकट होती है। शैशवावस्था में संवेगों की अभिव्यक्ति में भी निरंतर निखार आता रहता है। शैशवावस्था के प्रारंभिक महीनों में संवेगात्मक रूप से उत्तेजित करने वाली परिस्थितियों में शिशु अपनी प्रतिक्रिया शरीर के द्वारा व्यक्त करता है। धीरे-धीरे आयु के बढ़ने के साथ-साथ वह अपने संवेगों की अभिव्यक्ति गत्यात्मक क्रियाओं के माध्यम से न कर भाषा के द्वारा करने लगता है।

ख) बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास

जैसे जैसे एक बालक शैशवावस्था से बाल्यावस्था की ओर बढ़ता है उसकी दुनिया भी बड़ी होती जाती है और उसके संवेग अनेक प्रकार के उद्दीपक और परिस्थितियों द्वारा जागृत होना प्रारंभ कर

देते हैं। बालक के संवेगात्मक व्यवहार को स्कूल का वातावरण, हम जोलियों के साथ उसका संबंध और अन्य वातावरण संबंधी कारक प्रभावित करते हैं। यहां बालक अपने संवेगों की अभिव्यक्ति उचित माध्यम से करने का प्रयास करता है। संवेगात्मक रूप से तब उसमें कुछ स्थिरता एवं गंभीरता आने लगती है। परिवर्तनों के मूल में कई कारण हैं, प्रथम तो बाल्यावस्था में बालक को अपनी भावनाओं के प्रकाशन के लिए भाषा का माध्यम मिल जाता है, दूसरे अब वह अधिक सामाजिक हो जाता है और यह अनुभव करने लगता है कि अब उसे डरना, बातचीत में रोना अथवा गुस्सा होना शोभा नहीं देता और तीसरे, उसमें बुद्धि का पर्याप्त विकास हो जाने के कारण वह अपने संवेगात्मक उफान पर नियंत्रण स्थापित करने में समर्थ बन जाता है।

ग) किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास

किशोरावस्था में एक बार फिर संवेगात्मक संतुलन बिगड़ने लगता है। जीवन के किसी अन्य अवस्था में संवेगात्मक शक्ति का प्रभाव इतना तीव्र नहीं होता जितना की इस अवस्था में पाया जाता है। एक किशोर के लिए अपने संवेगों पर नियंत्रण रखना बहुत कठिन होता है। योनि ग्रंथियों के तेजी से क्रियांवित होने और शारीरिक शक्ति में पर्याप्त वृद्धि हो जाने के कारण बाल्यावस्था में पाई जाने वाली संवेगात्मक स्थिरता और शांति भंग हो जाती है। वह संवेगात्मक दृष्टिकोण से बहुत चंचल और अस्थिर हो जाते हैं। जरा-जरा सी बात पर बिगड़ जाना, उत्तेजित हो जाना, निराश होकर आत्महत्या पर उतारु हो जाना, प्रथम दृष्टि में विपरीत लिंग के व्यक्ति को दिल दे बैठना आदि किशोरों के संवेगात्मक व्यवहार की सामान्य विशेषताएं हैं। अतः इस अवस्था में संवेगों को ठीक प्रकार प्रशिक्षित करने और संवेगात्मक शक्तियों को अनुकूल दिशा में प्रवाहित करने की अत्यंत आवश्यकता है। प्रौढ़ अवस्था आने तक संवेगात्मक विकास अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। इस अवस्था में प्रायः सभी व्यक्तियों में संवेगात्मक रूप से परिपक्वता आ जाती है

संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कई कारक हो सकते हैं। इनका विवरण नीचे दिया गया है।

1) स्वास्थ्य और शारीरिक विकास

शारीरिक विकास एवं स्वास्थ्य का संवेगात्मक विकास के साथ बहुत गहरा संबंध है। स्वस्थ एवं पुष्ट बच्चों की अपेक्षा प्रायः कमजोर एवं बीमार बच्चे संवेगात्मक रूप से अधिक असंतुलित एवं असमायोजित पाए जाते हैं। संतुलित संवेगात्मक विकास के लिए विभिन्न ग्रंथियों का ठीक प्रकार काम करना अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकार शारीरिक विकास की दशा और उसके स्वास्थ्य का बच्चे के संवेगात्मक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

2) बुद्धि

सामान्य रूप से अपनी ही उम्र के कुशाग्र बालकों की अपेक्षा निम्न बुद्धि स्तर के बालकों में कम संवेगात्मक संयम पाया जाता है। विचार शक्ति, तर्क शक्ति आदि बौद्धिक शक्तियों के सहारे ही व्यक्ति अपने संवेगों पर अंकुश लगा कर उन को अनुकूल दिशा देने में सफल हो सकता है। अतः प्रारंभ से ही बच्चों की बौद्धिक शक्तियां बच्चों के संवेगात्मक विकास को दिशा प्रदान करने में लगी रहती है।

3) पारिवारिक वातावरण और आपसी संबंध

अक्सर परिवार में यह देखा जाता है कि बड़ों का जैसा संवेगात्मक व्यवहार होता है, बच्चे भी उसी तरह का व्यवहार करना सीख जाते हैं। परिवार का अशांत वातावरण बच्चों में क्रोध, भय, चिंता, ईर्ष्या आदि संवेगों को ही जन्म देता है। जबकि प्रेम, दया, सहानुभूति और आत्म सम्मान से भरपूर वातावरण बच्चे में उचित और अनुकूल संवेद पैदा करता है। माता पिता तथा अन्य परिजनों के द्वारा उसके साथ किया जाने वाला व्यवहार भी उसकी संवेगात्मक विकास को प्रभावित करता है। यहाँ तक कि परिवार में बच्चों अथवा भाई-बहनों की संख्या, उस की पहली, दूसरी या आखरी संतान होना, परिवार की सामाजिक और आर्थिक स्थिति, माता पिता द्वारा उसकी उपेक्षा या आवश्यकता से अधिक डाँट और लाड दुलार आदि बातें भी बच्चों के संवेगात्मक विकास को बहुत अधिक प्रभावित करती है

4) विद्यालय का वातावरण और अध्यापक

विद्यालय का वातावरण भी बालकों के संवेगात्मक विकास पर पूरा-पूरा प्रभाव डालता है। विद्यालय के वातावरण में व्याप्त सभी बातें जैसे विद्यालय की स्थिति, उसका प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश, अध्यापन का स्तर, पाठान्तर क्रियाओं और सामाजिक कार्यों की व्यवस्था, मुख्य अध्यापक एवं अध्यापकों के पारस्परिक संबंध और अध्यापकों का स्वयं का संवेगात्मक व्यवहार आदि बालक के संवेगात्मक विकास को पर्याप्त रूप से प्रभावित करता है।

5) सामाजिक विकास और हमजोलियों के साथ संबंध

बच्चा जितना अधिक सामाजिक होगा संवेगात्मक रूप से उतना ही परिपक्व और सहनशील बनेगा। बच्चों का ठीक-ठाक संवेगात्मक विकास और संवेगात्मक व्यवहार अपेक्षित है। उस का पोषण बच्चे में उचित सामाजिक गुणों का विकास पर भी निर्भर करता है और इस दृष्टि से सामाजिक विकास संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने में पूरी-पूरी भूमिका निभाता है।

6) पास पड़ोस, समुदाय और समाज

परिवार और विद्यालय के अतिरिक्त बच्चों का अपने पड़ोस, समुदाय और समाज जिसमें वह रहता है उसके संवेगात्मक विकास को बहुत प्रभावित करते हैं। अपने संवेगात्मक व्यवहार से संबंधित सभी अच्छे बुरे संवेग और आदतों को वह अपने संपर्क में आने वाले सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से ग्रहण करता है। एक साहसी और निर्भय जाति या समुदाय में पैदा होने वाले अथवा ऐसे वातावरण में पलने वाले बच्चे में भी साहस और निर्भयता के गुण आ जाना स्वाभाविक हैं। जिस समाज में बड़े लोग शीघ्र ही उत्तेजित होकर गाली गलोच और मारपीट करते रहते हैं उनके बच्चे भी अनायास ही संवेगात्मक कमजोरियों के शिकार हो जाते हैं।

बच्चों के संवेगात्मक विकास में अध्यापक की भूमिका

अध्यापकों को बालकों के संतुलित संवेगात्मक विकास में अपनी भूमिका अच्छी तरह निभानी चाहिए। यह किस प्रकार की जा सकती है इसकी चर्चा निम्न पंक्तियों में की जा रही है।

संतुलित संवेगात्मक विकास के लिए स्वास्थ्य और शारीरिक विकास बहुत आवश्यक है। अध्यापकों को स्वस्थ और निरोग कैसे रहा जाए इसके विषय में अच्छी जानकारी देनी चाहिए। माता पिता के सहयोग से बच्चों के संतुलित आहार और खानपान की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। अध्यापकों को अभिभावकों के साथ संपर्क स्थापित कर उन्हें उनके बच्चों की शारीरिक कमजोरियाँ, न्यूनताओं, बीमारियों आदि से अवगत कराना चाहिए तथा उनके निराकरण के लिए घर विद्यालय और चिकित्सालयों द्वारा उचित प्रबंध की व्यवस्था करवानी चाहिए।

अध्यापकों को बच्चों के संवेगात्मक व्यवहार का विशेष ध्यान रखना चाहिए तथा उनके माता-पिता के साथ उनके कल्याण के लिए उचित परामर्श देने का प्रयत्न करना चाहिए तथा अपने स्वयं के व्यवहार के द्वारा भी उनको संवेगात्मक संतुलन बनाने में पूरी सहायता देनी चाहिए। बच्चों की संवेगात्मक शक्तियों के उचित प्रकाशन और अभिव्यक्ति के लिए उन्हें पाठान्तर क्रियाओं तथा रोचक क्रियाओं के माध्यम से उचित अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। पाठ्यक्रम और अध्यापन विधियाँ यथेष्ट रूप से परिवर्तनशील, प्रगतिशील और बाल केंद्रित होने चाहिए। बालकों को अपने अध्यापकों से पर्याप्त स्नेह और सहयोग मिलना चाहिए। अध्यापकों को बालकों के स्वाभिमान का ध्यान रखकर ही उन्हें उनकी भूल का एहसास दिलाना चाहिए।

धार्मिक और नैतिक शिक्षा को विद्यालय कार्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। अध्यापकों को स्वयं अपना उदाहरण प्रस्तुत कर बालकों को संवेगात्मक रूप से अधिक संतुलित और संयमित बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। बालकों को उनकी मित्र मंडली और सामाजिक परिवेश में उचित स्थान मिलना चाहिए। अध्यापकों द्वारा बालक का संवेगात्मक व्यवहार सामान्य है अथवा नहीं इस बात का अच्छी तरह से अध्ययन करना चाहिए। अगर उसमें उन्हें कुछ असमानता का आभास हो तो समय से पहलेयोग्य व्यक्तियों की सहायता ले कर उसके निराकरण और रोकथाम के लिए पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

सारांश

वृद्धि की तुलना में विकास शब्द अपने आप में काफी बड़ा और विस्तृत है। विकास में परिणात्मक तथा गुणात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तन शामिल हैं जबकी वृद्धि शब्द केवल मात्र परिणाम संबंधी परिवर्तनों के लिए उपयोग किया जाता है। परिपक्वता आ जाने पर वृद्धि थम जाती है लेकिन

विकास जन्म से प्रारंभ होकर मृत्यु तक चलती रहती है। वृद्धि और विकास के विभिन्न आयाम हैं। इन आयामों में शारीरिक विकास, मानसिक और बौद्धिक विकास, संवेगात्मक विकास, नैतिक और चारित्रिक विकास, सामाजिक विकास और भाषा का विकास शामिल है। एक व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए इन सभी आयामों में विकास का महत्वपूर्ण स्थान है। विकास और वृद्धि के विभिन्न आयामों के सामान्य स्वरूप का अध्ययन प्रत्येक अध्यापक को अत्यंत आवश्यक रूप से करना चाहिए। आयामों के सामान्य स्वरूपों के ज्ञान से एक अध्यापक एक विशिष्ट उम्र के बालक के लिए उचित अधिगम प्रणाली बना सकता है।

संदर्भित एवं विशेष अध्ययन ग्रंथ

1. Carmicheal, L (1946) (Ed.), *Manual of Child Psychology*, New Delhi, John Wiley,
2. Crow, L.D. and Crow, Alice (1973) *Educational Psychology*, New Delhi, Eurasia Publishing House
3. Hobart, C. Frankel, J. and Walker, M. (2009). *A practical guide to child observation and assessment*. (4th Edition.) Cheltenham: Stanley Thornes Publishers
4. Hurlock, E. B. (1956), *Child Development*, Tokyo, McGraw-Hill
5. Mangal, S. K. (2002), *Advanced Educational Psychology*, New Delhi, Prentice-Hall of India
6. Marry, F. K. and Marray, R. V. (1940) *From Infancy to Adolescence*, New York: Harper and Brothers.
7. Mathur S.S.(2007), *Fundamentals of Educational Psychology*, Himalaya Publishing House.
8. Sorenson, Herbert (1948) *Psychology in Education*, New York, McGraw-Hill
9. Wood, J. (1974) *How do You Feel?* Englewood Cliffs, New Jersey, Prentice Hall



वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया

डॉ. सविता कुमारी,

सहायक प्राध्यापिका

आर.एल.महतो इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन

रामपुर जलालपुर, दलसिंहसराय, जिला समस्तीपुर, बिहार

प्रस्तावना

वृद्धि तथा विकास सतत् चलने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जो बालक को असंहाय शिशु से आत्मनिर्भर प्रौढ़ बनाती है। बालक के विकास की प्रक्रिया माना कि गर्भ से ही प्रारम्भ हो जाती है और वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया जन्म से ही प्रारम्भ हो जाती है और जन्म के बाद शैशावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था तक क्रमशः चलती रहती है। विकास की प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषताएं, अपनी दशाएं और दिशाएँ होती हैं, शिक्षा के क्षेत्र में वृद्धि और विकास का बड़ा महत्व है। शिक्षा मनोविज्ञान बालक के विकास के विभिन्न पक्षों व विकास की विभिन्न अवस्थाओं में घटित होने वाली वृद्धि-विकास की प्रक्रिया के स्वरूप तथा बालक-बालिकाओं में होने वाले शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक आदि परिवर्तनों का ज्ञान कराता है, जिससे विभिन्न आयु के बालकों के विकास के लिए प्रशिक्षण, अनुदेशन और निरन्तर अभ्यास का सुनियोजन किया जा सकता है। एक कुशल अध्यापक को बालक की अभिवृद्धि के साथ-साथ उसमें होने वाले विभिन्न प्रकार के विकास एवं उनकी विशेषताओं की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। तभी वह शिक्षा की योजना कर कियान्वयन, विकास तथा अभिवृद्धि के संदर्भ में कर सकता है।

शोध उद्देश्य आजकल शिक्षक के जीवन को ज्ञान से समृद्ध कर उसे उचित उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता पहुँचाता है। उचित उद्देश्य के मार्गदर्शन मिलने पर ही शोधकर्ता अपने शोध के दायित्वों का भली-भाँति निर्वाह करने में सफल होता है। शोध के उद्देश्य के माध्यम से कार्यविधि क्रमबद्ध, वैज्ञानिक तथा तार्किक होती है।

बालक के विकास की प्रक्रिया जन्म से पूर्व जब वह माता के गर्भ में आता है, तभी से आरम्भ हो जाती है और जन्म के बाद शैशावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था तक क्रमशः चलती रहती है। इस प्रकार वह विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है जिनमें उसका शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास होता है। विकास एक बहुमुखी प्रक्रिया है। इसमें बहुत-सी बातों का समावेश होता है। शिक्षा-मनोविज्ञान के अध्ययन में बालक का केवल बौद्धिक पक्ष ही नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक अवस्थाएँ भी महत्वपूर्ण हैं। विकास के ये सभी पक्ष परस्पर सम्बन्धित हैं। शिक्षा-मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों में मानव-व्यवहार का अध्ययन करता है और उसका लक्ष्य बालक के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन करना है। अतः शिक्षक को बालक की अभिवृद्धि एवं विकास के विषय में तथा इनके परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों को जानना भी आवश्यक है।

परिकल्पनाएँ:

परिकल्पना शोध समस्या का सम्भावित समाधान होता है। परिकल्पनाएँ एक अनुमानित निष्कर्ष होती हैं, जिन्हें शोध से प्राप्त तथ्यों के आधार पर प्रमाणित होना शेष रहता है। परिकल्पना ऐसे समाधान को प्रस्तुत करती है, जिसकी पुष्टि प्रदत्तों के आधार पर की जा सके। यह समस्या का समाधान बड़ी सूझ-बूझ के साथ प्रतिपादित किया जाता है।

वैज्ञानिक शोध कार्य परिकल्पना द्वारा ही किया जा सकता है। परिकल्पना समस्या तथा समाधान की मध्यस्थता करती है। परिकल्पना समस्या का सम्भावित समाधान देती है। परिकल्पना शोधकर्ता का निर्देशन देती है तथा उसके कार्य की रूपरेखा प्रस्तुत करती है, जिससे शोध के चरणों का बोध होता है। परिकल्पना तथ्यों की सार्थकता को निर्धारित करती है। परिकल्पना शोधकर्ता को रचनात्मक कार्यों के लिए निर्देशित करती है।

मानव विकास का अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है। एक शिक्षक को बालक की अभिवृद्धि के साथ-साथ उसमें होने वाली विभिन्न प्रकार के विकास तथा उसकी विशेषताओं का ज्ञान होना आवश्यक है। तभी वह शिक्षा की योजना का क्रियान्वयन, विकास तथा अभिवृद्धि के संदर्भ में कर सकता है। सामान्य रूप से 'अभिवृद्धि' शब्द का प्रयोग शरीर और उसके अंगों के भार और आकार में वृद्धि के लिए किया जाता है।

अभिवृद्धि' और 'विकास' की प्रक्रियाएँ उसी समय से आरम्भ हो जाती हैं, जिस समय से बालक का गर्भाधान होता है। ये प्रक्रियाएँ, उसके जन्म के बाद भी चलती रहती हैं। फलस्वरूप, वह विकास की विभिन्न अवस्थाओं में से गुजरता है, जिनमें उसका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आदि विकास होता है। विकास, अभिवृद्धि तक ही सीमित नहीं है। इसके बजाय, इसमें प्रौढ़वस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषतायें और नवीन योग्यतायें प्रकट होती हैं।

वृद्धि का अर्थ एवं परिभाषा

व्यक्ति के स्वाभाविक विकास को अभिवृद्धि कहते हैं। सामान्य रूप से वृद्धि शब्द का प्रयोग कोशीय वृद्धि के लिए किया जाता है। गर्भाशय में भ्रूण बनने के पश्चात् जन्म से लेकर शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था होते हुए प्रौढ़ावस्था तक पहुँचने के दौरान व्यक्ति के विभिन्न अंगों के आकार, लम्बाई तथा भार आदि में आने वाले परिवर्तनों को वृद्धि कहा जा सकता है। उसके शारीरिक अंगों में बाह्य और आन्तरिक दोनों अंग आते हैं। बाह्य अंगों में हाथ, पैर, सिर और पेट आदि आते हैं और आन्तरिक अंगों में विभिन्न तन्त्र कंकाल, पाचन, रक्त, श्वसन आदि आते हैं। वृद्धि को मापा तथा तौला जा सकता है। अभिवृद्धि की एक दिशा और सीमा होती है। बालक में होने वाली वृद्धि को अन्य व्यक्ति स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। शुद्ध वायु, स्वच्छ जल, पोषक भोजन तथा अच्छा वातावरण आदि बालक की अभिवृद्धि को अच्छी दिशा और उच्च सीमा प्रदान कर सकती हैं।

सोरेनसन के अनुसार— "सामान्य रूप से 'अभिवृद्धि' शब्द का प्रयोग शरीर और उसके अंगों के भार और आकार में वृद्धि के लिये किया जाता है। इस वृद्धि को नापा-तौला जा सकता है।

विकास का अर्थ एवं परिभाषा

विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रारम्भ गर्भाधान से होता है। यह जीवन पर्यन्त किसी न किसी रूप में चलता रहता है। जन्म से पूर्व गर्भावस्था से विकास प्रारम्भ हो जाता है। आन्तरिक वातावरण से बाह्य वातावरण में आता है। प्राणी के जीवन विकास में शारीरिक, मानसिक क्षमताओं के स्वरूप में जो क्रमगत परिवर्तन होते हैं, उन्हीं को विकास कहते हैं। विकास क्रम में प्राणी के शारीरिक तथा मानसिक पक्ष में जो कुछ भी प्रगतिशील परिवर्तन होता है उसे हम विकास कहते हैं।

बालकों में होनेवाले क्रमिक तथा संगत परिवर्तनों के उत्तरोत्तर क्रम को विकास कहा जाता है। जैसे एक खास उम्र आने पर बालकों में वागीन्द्रिय (Vocal organ) विकसित हो जाती है, जिससे वह अक्षरों का सही-सही उच्चारण कर पाता है तथा उसके हाथ की अंगुलियाँ इतनी परिपक्व हो जाती हैं कि वह कलम या पेंसिल पकड़कर कुछ लिख सकता है। इन सभी परिवर्तनों को एक क्रम में सुव्यवस्थित कर लेने के बाद हम कह सकते हैं कि बालक में भाषा विकास हो रहा है।

सामान्य रूप से वृद्धि शब्द का प्रयोग कोशीय वृद्धि के लिए किया जाता है, जबकि विकास शब्द का प्रयोग वृद्धि के फलस्वरूप शरीर के समस्त अंगों में आए परिवर्तनों के संगठन से है। निःसेदेह विकास में वृद्धि का भाव निहित रहता है, परंतु यह वृद्धि से अधिक व्यापक होता है।

हरलॉक के अनुसार— "विकास अभिवृद्धि तक सीमित नहीं है, अपितु इसमें परिवर्तनों का वह प्रगतिशील क्रम निहित है जो परिपक्वता के लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताएँ और नवीन योग्यताएँ प्रकट होती हैं।"

वृद्धि एवं विकास

वृद्धि एवं विकास एक क्रमिक जीवनभर चलने वाली प्रक्रिया है। जब बालक विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करता है, तब हम उसमें कुछ परिवर्तन देखते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन ने यह सिद्ध कर दिया है कि ये परिवर्तन निश्चित सिद्धांतों के अनुसार होते हैं। इन्हीं को विकास एवं वृद्धि के सिद्धांत कहा जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने यह तथ्य उजागर किया कि मानव विकास एक सतत् प्रक्रिया है जो जन्म से मरण तक निरन्तर चलती रहती है और उसमें कोई भी विकास अचानक ढंग से नहीं होता, धीरे-धीरे होता है। पर यह गति कभी तीव्र और कभी मन्द होती है, उदाहरणार्थ प्रथम तीन वर्षों में बालक के विकास की प्रक्रिया बहुत तीव्र गति से और उसके बाद मन्द पड़ जाती है। इसी प्रकार शरीर के कुछ भागों का विकास तीव्र गति से और कुछ का मन्द गति से होता है। पर विकास की प्रक्रिया चलती अवश्य रहती है।

प्रत्येक जाति, चाहे वह पशु जाति हो या मानव जाति, अपनी जाति के अनुरूप विकास के प्रतिमान का अनुसरण करती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मानव विकास एक निश्चित प्रतिमान के अनुसार होता है। उदाहरण के लिए पहले हम पशुओं के विकास प्रतिमान को लेते हैं। हम जानते हैं कि गाय का बच्चा जन्म लेते ही खड़ा हो जाता है, जबकि भैंस का बच्चा 8-10 दिन बाद खड़ा हो पाता है। अब मनुष्य के विकास प्रतिमान को लेते हैं। मनुष्य जाति का बच्चा चाहे जिस स्थान पर, चाहे जिस जलवायु में और चाहे जिस सामाजिक पर्यावरण में पैदा हो वह लगभग चार माह की अवस्था में पेट के बल खिसकता है, लगभग छह माह की अवस्था में घुटने के बल चलता है, लगभग आठ माह की अवस्था में अपने पैरों के बल खड़ा होता है और लगभग 10-12 माह की अवस्था में अपने पैरों के बल चलता है।

मनोवैज्ञानिकों ने स्पष्ट किया कि बालक का विकास की क्रिया सिर से पैर की दिशा की ओर चलती है। प्रारम्भ में बालक केवल अपना सिर उठा पाता है। तीन मास तक वह अपने नेत्रों की गति नियन्त्रण कर लेता है। छः मास में उसका अपने हाथों की गतियों पर नियन्त्रण हो जाता है। नौ मास में वह सहारे से बैठने लगता है तथा एक वर्ष तक वह लड़खड़ा कर चलने लग जाता है। अर्थात् पहले सिर का विकास होता है, फिर धड़ का और अन्त में पैरों का।

बालक गामक और भाषा संबन्धी आदि विकास एक निश्चित क्रम में होता है। शर्ले, गेसेल, पियाजे, रूमिस आदि की परीक्षणों ने यह बात सिद्ध कर दी है, उदाहरणार्थ 32 से 36 माह तक बालक वृत्त को उल्टा, 60 माह का बालक (Clock wise) और 72 माह का फिर उल्टा बनता है। इसी प्रकार, जन्म के समय वह केवल रोना जानता है। 3 माह में वह गले से एक विशेष प्रकार की आवाज निकालने लगता है। 6 माह में वह आनन्द की ध्वनि करने लगता है। 7 माह में वह अपने माता-पिता के लिए पा, बा, दा आदि शब्दों का प्रयोग करने लगता है। जब वह भाषा का बोलना सीख जाता है तो उसे क्रमशः भाषा का पढ़ना और लिखना सिखाया जाता है। आप यदि यह चाहें कि उसे सुनने से पहले बोलना सिख दे तो यह सम्भव नहीं है।

मनुष्य का विकास सामान्य प्रतिक्रियाओं से विशिष्ट प्रतिक्रियाओं की ओर होता है। हरलॉक ने इसी बात को इस प्रकार कहा है विकास की सब अवस्थाओं में बालक की प्रतिक्रियाएं विशिष्ट बनने से पूर्व सामान्य प्रकार की होती है। उदाहरणार्थ बच्चा पहले हर वस्तु को मुँह में रखता है उसके बाद वह अनुभव द्वारा केवल खाद्य पदार्थों को ही मुँह में रखता है और उसके बाद एक निश्चित समय पर एक निश्चित ढंग से खाना सीखता है। इसी प्रकार भाषा का विकास भी प्रारम्भ में टूटे-फूटे शब्दों का प्रयोग पर बाद में पूरे और सार्थक शब्दों के रूप में होता है।

मनोवैज्ञानिकों ने यह भी स्पष्ट किया कि मनुष्य का विकास पूर्ण तसे अंश और अंशान से पूर्ण की ओर होता है। इस तथ्यम को उन्होंने एकीकरण के सिद्धांतन के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। विकास में पूर्ण से अंशों की ओर और अंशों से पूर्ण की ओर गति रहती है। हम इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किए देते हैं। जब 4-5 माह का शिशु अपने पास किसी वस्तु को पड़ा देखता है तो वह उसके उपर पुरा हाथ का पंजा रखता है, उसके बाद धीरे-धीरे वह उसे अंगुलियों के प्रयोग से उठाना सीखता है और फिर हाथ एवं उँगलियों को एक साथ चलाना सीखता है। अब जब वह थोड़ा बड़ा होता है तो उसके देखने समझने और हाथ से उठाने की क्रिया एक साथ होती है, उनमें एकीकरण हो जाता है।

मनुष्य का विकास भिन्न-भिन्न अवस्था में भिन्न-भिन्न गति से होता है— जन्म से 3 वर्ष की आयु तक विकास अपेक्षाकृत सबसे अधिक तीव्र गति से होता है, 3 वर्ष से 6 वर्ष की आयु तक मन्द गति से होता है, 6 से 9 वर्ष की आयु तक पुनः तीव्र गति से होता है, 9 से 12 वर्ष की आयु तक पुनः मन्द गति से होता है, 12 से 18 वर्ष की आयु तक सामान्य गति से होता है और उसके बाद बहुत मन्द गति से होता है। इसे ही विकास की विभिन्न गति का सिद्धांत कहा जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने स्पष्ट किया कि मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, भाषायी, संवेगात्मक, सामाजिक और चारित्रिक सभी प्रकार के विकास में पारस्परिक सम्बंध होता है, ये एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं और एक के विकास के साथ अन्य सबका विकास होता है। शारीरिक विकास के साथ-साथ उसकी रुचि, ध्यान तथा व्यवहार में परिवर्तन होता जाता है। उदाहरण के लिए मनुष्य के शारीरिक विकास को लीजिए, जैसे-जैसे मनुष्य के शरीर के बाह्य एवं आन्तरिक अंगों की वृद्धि होती है, उनका आकार एवं भार बढ़ता है जैसे-तैसे उसके शरीर के अंगों की कार्यक्षमता का विकास होता है और जैसे-जैसे उसके शरीर के अंगों विशेषकर ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों बढ़ती है वैसे-वैसे उसका मानसिक, भाषायी, संवेगात्मक, सामाजिक और चारित्रिक विकास भी होता है। हां यह बात अवश्य है कि इस सबके लिए उचित पर्यावरण और शिक्षा की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत मन्द बुद्धि बालकों का शारीरिक एवं सामाजिक विकास भी बन्द होता है।

मानव विकास के दो मूल कारक तत्व हैं- एक वंशानुक्रम और दूसरा पर्यावरण-वातावरण वंशानुक्रम से तात्पर्य उन गुणों से है जो बच्चा अपने वंश एवं माता-पिता के पित्रैकों से प्राप्त करता है और उसके पर्यावरण से तात्पर्य उसके उस प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश से है जिसमें वह रहता है और अपना विकास करता है। वंशानुक्रम उन सीमाओं को निश्चित करता है जिसके आगे बालक का विकास नहीं किया जाता सकता, जैसे यदि कोई बच्चा लम्बाई के पित्रैकों से वंचित रहा है तो उसे लम्बा नहीं बनाया जा सकता और यदि निम्न बुद्धि लेकर पैदा हुआ है तो उसकी बुद्धि को उच्च नहीं बनाया जा सकता है। जहाँ तक बच्चे के पर्यावरण की बात है तो बदलता रहता है और बदला भी जा सकता है। इसी प्रकार यह प्रमाणित किया जा चुका है कि जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में दूषित वातावरण और गम्भीर रोग, जन्मजात योग्यताओं को कुंठित या निर्बल बना सकते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने सिद्ध किया कि बच्चे का विकास इन दोनों तत्वों वंशानुक्रम और पर्यावरण पर निर्भर करता है। किसी बच्चे के विकास में वंशानुक्रम और पर्यावरण का योग नहीं होता अपितु इन दोनों की अन्तः क्रिया का परिणाम होता है।

प्रत्येक बालक और बालिका के विकास का अपना स्वयं का स्वरूप होता है। मनोवैज्ञानिकों ने यह तथ्य भी उजागर किया कि जन्म से कोई दो बच्चे अपने में समान नहीं होते, यहां तक कि जुड़वाँ बच्चे भी, उनमें भी कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य होती है। दूसरी तरफ लाख प्रयत्न करने पर भी हम सभी बच्चों को समान पर्यावरण नहीं दे पाते। कुछ माता-पिता तो अपने बच्चों को सही पोषण आहार भी नहीं दे पाते। इससे बच्चों में वैयक्तिक भिन्नता और बढ़ जाती है। मनोवैज्ञानिकों ने सिद्ध किया कि बच्चे अपनी वंश परम्परा से प्राप्त गुणों और अर्जित क्षमताओं के अनुसार ही विकास करते हैं। उदाहरणार्थ लम्बाई के जीन्स प्राप्त बच्चों की लम्बाई तेजी से बढ़ती है और वे परिपक्वता पर जाकर लम्बे हो जाते हैं। इसके विपरीत लम्बाई के जीन्स से वंचित बच्चों की लम्बाई धीमी गति से बढ़ती है और परिपक्वता प्राप्त होने पर भी वे छोटे कद के ही रहते हैं। इसी प्रकार निम्न बुद्धि के बालकों का मानसिक, भाषायी, संवेगात्मक और चारित्रिक विकास मन्द गति से होता है और उच्च बुद्धि के बच्चों का तीव्र गति से। एक ही आयु के दो बालकों के शारीरिक मानसिक और सामाजिक विकास में वैयक्तिक विभिन्नताएं स्पष्ट दिखाई देती हैं।

प्रत्येक व्यक्ति से विकास की समस्त अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है। जन्म के पश्चात् शैशवकाल, शैशवकाल के पश्चात् बाल्यावस्था, किशोरावस्था और अन्त में प्रौढ़वस्था और वृद्धावस्था आती है।

निष्कर्ष-

अन्त में हम कह सकते हैं कि बालकों में होनेवाले शारीरिक तथा मानसिक विकास के कुछ सिद्धान्त हैं जिनके आधार पर उन्हें आसानी से समझा जा सकता है। वृद्धि और विकास के सिद्धान्तों से शिक्षकों एवं माता-पिता दोनों को ही बालकों का मार्ग-दर्शन करने में सुविधा होती है। इन सिद्धान्तों की जानकारी से शिक्षक यह निश्चित रूप से पूर्वकथन कर पाते हैं कि बालकों में किस तरह का विकास हो रहा है और कब विकास की गति धीमी होती है और कब मंद इससे शिक्षक यह निश्चित कर लेते हैं कि बालकों को किस ढंग का पाठ्यक्रम कब पढ़ाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, एस.पी. (2007), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, युनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)।
2. सारस्वत, मालती (2009) शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा. आलोक प्रकाशन, अमीनाबाद, लखनऊ, (उत्तर प्रदेश)
3. माथुर, एस.एस. (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशनन: संजय प्लेस, आगरा, (उत्तर प्रदेश)
4. सिंह, अरुण कुमार (2011) शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन: ठाकुरबाड़ी रोड, पटना।
5. पाठक, पी.डी. (2013-14) . शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशनन्स: संजय प्लेस, आगरा, (उत्तर प्रदेश)



Process of Growth and Development

Anjana Kumari

Assistant Professor

Mundeshwari College For Teachers Education

Patna(Bihar).

Introduction :-

The sole aim of education is to bring an all-round development in the personality of education. Educational psychology, being a science and technology of education, should help in the realization of this aim. AS we know that human life starts from a single fertilized cell. The constant interaction with environment results in the growth and development of the innate capacities, abilities and potentialities of the child. The taste of formal as well as informal education is to help him in this path of growth and development. It is clear that the changes that occur in the size, length and weight of various organs of a person during the period from conception to infancy through adolescence to adulthood can be called growth. The growth can be measured or weighed. While development indicates the work capacity of different organs of the body. Psychologist Meridith has said some writers reserve the use of ‘growth’ to destinate increments in size and of development to mean differentiation. In the words of Hurlock – Development is not limited to growing larger. Instead, it consists of progressive series of changes towards the goal of maturity. Development results in new characteristics and new abilities on the part of the individual. Similarly, Munro also gave the definition of growth and development – Development is a state of change in which the creature passes, from pregnancy to maturity. In all the above sentences, growth and development have been defined in clear ways by various scholars which appear to be appropriate.

Viewpoint of Growth and Development

An individual starting from a fertilized egg, turns into a full – fledged human adult. In this term over process, he undergoes a cycle of changes brought about by the process of growth and development in various dimensions – physical, mental, social, emotional etc. However, in the strict sense of terminology, these two terms, growth and development have different meanings that can be put in the way given below : -

GROWTH	DEVELOPMENT
The word growth is used in purely physical sense.	Development implicit over all changes in shape.
It generally refers to an increase in size, length, height and weight.	But in the procedure of development, form or structure resulting in improved working or functioning.
Growth has quantitative aspect.	But development has both qualitative and quantitative aspect.
Growth is one of the parts of development process.	Development is a wider and comprehensive term.
Growth does not continue through life. It stops when maturity has been attained.	It refers to overall changes in the individual growth is one of its parts. Development is a continuous process. It goes from womb to tomb. It doesn't end with the attainment of maturity.

Individual differences exist.	Children offers in the level of development.
It is purely a physical attribute.	It implies improved adaptation and functioning.

Facets of proportions of growth and development :

Major dimensions in which a human child goes ahead for his complete development can be named in follows: -

1. Physical Development – Body growth that includes height and weight changes.
2. Intellectual or Mental Development – It includes the development of intellectual powers like the powers of reasoning and thinking, imagination, concentration, creativity, sensation, perception, memory, association, discrimination, and generalization.
3. Social Development – Refers to interactions and relationships with other people.
4. Emotional – Refers to feelings and includes dealing with love, hate, joy, fear, excitement, and other similar feelings.
5. Language Development – It includes the learning of the language for communication and the development of various skills and abilities for the effective use of language.

Factors influencing growth and development:

- Genetic factors : Parental phenotype and familiar patterns, race and nationality, sex, genetic disorder (chromosomal / gene defects).
- Parental factor : Maternal nutrition, infection, substance use illness, hormones.
- Postnatal factors : Growth potentials, nutrition, childhood illness, physical environment, psychological environment, cultural differences, social economic states, climate and season, play and exercise, birth order of the child, hormonal influence.

Stages of Growth and Development :

As we no that we start our life from the mother’s womb. The nine months Spen in the mother’s womb are a called pre-natal period. A Child is considered born when it is comes out of the womb and has its first contact With the external environment it is called the postnatal. And is in fact the beginning of completion of chronological age

There are mainly five stages of human development which are as follows _

1. **In fancy** -:Infancy is the first stage of human development from birth .Infancy is considered the most important period of life. The first 6 years after the birth of a child are called infancy. According to Psychologist the body and mind are extremely receptive in the first 5-6 years of life whatever is thought to children at this stage, it leaves an indelible impression on the child .Technically the period from zero to 3 years of age is called infancy.

Development Characteristics of Infancy

- I. Rapidity in physical development.
- II. Rapidity in mental potentialities.
- III. Rapidity in learning.
- IV. Tendency of repetition.
- V. Curiosity tendency.
- VI. Dependence on others.
- VII. Feeling of self love.
- VIII. Emotional expression.
- IX. Instinctive behaviour.
- X. Sex instinct.

2. Early childhood -: Early childhood covers the period from 2 to 6 years. Early childhood is a beautiful phase of life. It is a period associated with play, fantasy and innocence. In early childhood the child learns to control the expression of emotion. It is called different names as the toy age, pre-school age, toddler age or pre-adolescent age.

Some characteristics of Early childhood age

- i. Excessive crying and insecurity
- ii. To learn to get along with peers.
- iii. A desire for isolation, boredom and social antagonism.
- iv. Obstinate, stubborn, disobedient, negative and hostile.

3. Late childhood -: Generally the period between 6 to 12 years is called late childhood.

In this stage he starts learning personal and social behaviour and his formal education starts in this stage. From an educational point of view, childhood is the most important stage of life. In this stage the child forms patterns of his habits, behaviours, interests, desires etc. which become very different to change later.

There are some characteristics of late childhood

- I. Stability in physical growth
- II. Increase in mental ability
- III. Forceful curiosity.
- IV. Feeling of self-dependence.
- V. Interest in construction work.
- VI. Intensity of gregariousness.
- VII. Development of social and moral qualities.
- VIII. Development of extrovert personality.
- IX. Acquisition tendency.
- X. Lesser sense of sex.

4. Adolescent stage:- Adolescence is the 3rd stage of post-natal development which begins after the end of childhood and continues till the beginning of adulthood. The word adolescence is derived from the Latin word *adolescere* which means growth and maturity.

Elliott and Feldman (1990) described

- I. Early Adolescence as 10 to 14 years.
- II. Middle Adolescence as 15 to 17 years.
- III. And late Adolescence as 18 years to the mid 20s.

G. Stanley Hall coined the term adolescence –

He defined this as the years between puberty and adulthood. He believed that during this time adolescents go through a period of storm and stress.

Characteristics of adolescence stage.

- I. Physical development and Mental development.
- II. Lack of instability.
- III. Differences in behaviour.
- IV. Fast friendship.
- V. Changes and stability in interest.
- VI. Maturity of sex instinct.
- VII. Feeling of self-respect.
- VIII. Development of Delinquency.
- IX. Anxiety for vacation.
- X. Feeling of independence and revolt.

5. Adulthood :- The period in the human life span in which full physical and intellectual maturity have been attained. Adulthood is commonly thought of as beginning at an age of

20 or 21 years middle age commencing at about 40 years is followed by old age at about 60 years .

Adults are characterised by-

- Self -confidence
- Autonomy
- Solid decision making

And are generally more practical, multitasking purposeful ,self directed experiences and less open minded and receptive to change all these traits affect their motivation as well as their ability to learn.

Name of the Stage	Period and approximate age
Pre-Natal (Pre-birth) stage	From conception to birth
Stage of infancy	From birth to two years.
Childhood stage	From 3 to 12 years or in strict sense up
a) Early childhood	From 3 to 5 years
b) Later childhood	From 6 to 12 years.
Adolescent stage	From the onset of puberty to the age of maturity (generally) from 12 to 19 years.
Adulthood	From 20 years and beyond or in strict sense from the age of attaining maturity till death.

Factors that influence our growth include-

Genetics -:Our growth is usually determined by genetics or rather by the growth of our parents .According to studied 60 to 80 of growth is determined by genetics where as 20 to40 percent is determined by other factors such by nutrition and lifestyle.

Nutition -:Nutrition can play key role in determining our growth as visible in trends in height taken worldwide . Studied report that children and adolescents who are malnourished may not Achieve their desired growth and fail to survive for longer periods With increased awareness about nutrition and life style people today have better growth and development on average than their ancestors 1000 years ago.

Culture -:Cultural factors can affect the physical growth of human beings certain cultures ne follows restrictive dietary pattern that that may deprive the child of proper nutrition.

Socio economic factors -:Socio economic factors can play a significant role in children’s growth. Some way by which socio-economic factors can influence physical growth include, children belongings to a higher socio economic status including higher income have better growth due to adequate nutrition better child care and better medical and social services.

Sex -:Women tend to be shorter than men. Girls hit puberty earlier than boys .Meaning the growing ends of their bones fuse earlier. Moreover hormonal differences in boys such as higher testosterone levels stimulate the bones to grow thicker and longer.

Exercise -: Exercise or physical activity during childhood can promote the release of growth harmones responsible for increasing height.

Certain medical conditions -: some medical conditions that can effect growth include _

1. Down syndrome (a poor genetic disorder that causes poor Growth)
2. Achondroplasia (Genetic bone disease)
3. Precocious puberty.
4. Gigantism
5. Cushing syndrome.
6. Dwarfism.
7. Cancer.
8. Malnutrition.
9. Digestive tract disease.

10. Turner syndrome (Genetic problems that occur in girls due to missing or partly missing x chromosomes).

The role of teacher in growth and development

There is a need for all round development of the personality of the child. He must see harmonious growth and development in all the aspects or dimension of growth and development -social, emotional, moral and spiritual.

Below are some areas in which the teacher has to play a major role like_

- **Diagnosing the potentialities-**A teacher must have try to study and investigate potentialities of his students and then decide to provide do guidance and incentives for the development like social, mental emotional, moral or spiritual.
- **Helping in proper goal settings -:**In light of diagnosed potentialities and achievement motivation the teacher must help the students in setting of proper goals and objectives for their striving.
- **Arranging needed facilities for their adequate developments-:**The teacher should take care of all types of men material facilities helpful in the adequate development of students in all the dimension of their personality . In the shape of physical academic curricular and co- curricular activities as well as formal or informal direct or indirect experiences in short whatever is useful and needed for their multidimensional growth and development of students should be helped by the teacher for proper access to maximum extent possible.
- **Provide for the own example for their proper development-:**It is as well as known saying that example is always better than precept . Whatever teacher wants to see in this students must try to provide model for such expectation for his students..
- **The teacher must have a proper knowledge of development psychology-:**The teacher must have the knowledge of psychology and development task get further child at particular age.

Education implications of the principles of growth and development

The Knowledge of the principles of growth and development is very important for our life which we can show in the following way_

- Development is a continuous and non stop process at all periods and stages of human life. Therefore we should never give up our efforts to achieve perfection in terms of development in the different dimensions of our personality..
- The principles related to growth and development suggest a pattern or trend for the advancement of children on the developmental path. This knowledge can help as to what can be expected in terms of the proper growth and development at a particular development stage and we can then plan accordingly to achieve it by organising the environmental experience..
- The principle and knowledge of individual differences reminds us to understand the white individual differences that surface at all periods of growth and development among children. Each child should be helped along the development process within the sphere of his own strengths and limitations..
- The knowledge of individual differences helps us to what to expect and when to expect from an individual child with respect to his physical mental social development etc. at different stages of development . The correct knowledge of growth trend of a child helps the parents and teacher not to under or overestimate the future competency or exit expectancy of their child.
- Principles like “proceedings from general to specific responses “and the principle of ‘integration ‘help us to plan the learning processes and arrange suitable learning experiences so as to achieve maximum gains in terms of growth and development.

- It helps us to know the direction as well as the general pattern of the development. It guards us to locate the degree of abnormality in our children and students and to take likewise remedial steps. The knowledge that development starts from whole to parts and then from parts to whole helps us to plan a learning procedure and set the learning methods accordingly.
- Principles of interrelation and interdependence of the various aspects of growth and development help us to aim for the harmonious growth and development of the personalities of the child and warn us not to develop a particular aspect at the cost of one or the other.
- The knowledge of the uniformity of pattern with respect to growth and development makes it possible for the parents and teachers to plan ahead of time for the change that will take place in their children. Children will also get benefited if they can be acquainted with these changes beforehand.
- The principle of spiral advancement of development helps us to make adequate arrangement for the subsequent progress and consolidation of the progress achieved during specific development stage..
- The cephalocaudal and proximodistal tendencies as suggested by the principle of development direction help us to arrange the suitable learning experiences.. Processes and environmental setup so as to accommodate and help the youngster to grow and develop according to that trend and nature of this tendencies.
- The principle of interaction reminds us to recognise the joint responsibility of heredity and environment in the development of personality. Accordingly although they can develop within the limits of their genetic makeup yet to attain maximum development, we have to arrange for the best environment settings and experiences for our children. The environment that we provide should always be conducive to developing their potentiality and never prove to be an obstacle in the way of the adjustment of their self with their environment.

WAYS TO INCREASE HEIGHT

Usually women's height stop increasing after the attain puberty. They might still gain height till the age of 18. However it is extremely challenging to increase height once you reach your 20s.

Here are some of the most common ways to try and increase your HEIGHT _____

- **Exercise** -According to research bones adapt to mechanical load and become stronger. Exercise like stretching, hanging, cycling and swimming can help increase height in children. However it is unclear if exercising can increase height in adults..
- **Get 7-8 Hours Sleep** -According to research improper sleep can slow down the body metabolism and restrict . There are not enough studies that suggest lack of sleep can slow down . height. However according to the Harvard school of public health, sleep deprivation can affect brain health it can hamper overall bodily growth. Therefore you must get proper sleep if you want to increase your height
- **Improve body posture**-It is difficult to increase height in . However you can try certain things that can make you appear taller. one of these ways is to improve your body posture. Slouching can make you look short. So you should practice correct body posture to appear tall.
- **Have a balanced diet**-According to research one of the best ways to facilitate height growth is to have a nutritious diet It is a sincere to consume food rich in calcium protein and fiber to increase height .Another research suggests that adequate nutrition is essential for physiological growth. Vitamin D, zinc,iron and

foliate are a few micronutrients that that promote growth so a healthy diet is vital to increase height .

- **Drink plenty of water**-Drinking 7 -8 glasses of water daily provides several health benefits. It helps remove toxins from the body and promotes the proper functioning of jbody organs .According to research hydration is crucial for physical growth and cognitive development. Therefore you must drink at least two litre of water daily for normal body growth.
- **Take vitamin D**-A study on children's shows that vitamin D deficiency can slow down growth. According to research , diet and lifestyle changes to increase your height will only be effective without a vitamin D deficiency. Therefore you should spend 5-10 minutes under direct sunlight if you want to increase your height.
- **Nutritious diet**-According to research nutrition is one of the most important factor determining a person's height. Access to food high higher socio economic status improved sanitation and living standard have increased the average height of people
- **Hormones**-According to research,The body's hormones are also responsible for a person's height.Normal height growth is affected by the growth hormone produced by the pituitary gland, thyroid harmone and the sex harmone oestrogen.Another sudy suggests that taking small dose of the growth harmone can significantly increase adult height.

Along with exercising, you should also focus on a nutritious diet .It is best to have almonds, green leafy, vegetables, eggs,or chicken bananas apple, watermelon and other healthy foods.

Conclusion:

Overall we can say that the growth and development help us to know there are wide individual differences among the children with respect to their rate of growth and development. Therefore, we must pay attention to their individual pattern and growth rate. While, planning the course for their education and development. The process of growth and development helps us to know, how a person will develop physically and mentally at different stages of development. The adequate information about the growth trend of a child helps the parent and teachers not to under or over-estimate the future competency or expentancy of their child. The knowledge of the uniformity of pattern with respect to growth and development makes it possible for the parents and teachers to plan ahead of time for the changes that will take place in their children. Children will also get benefited if they can be acquainted with these changes before hand.

Reference :-

1. Gupta. Alka, and. Gupta, . S.P., (2008) Educational psychology, Sharda Pustak Bhavan, Publishers and Distributors, University road, Allahabad – 21102.
2. Upadhya . Brijesh & Singh. Yogesh Kumar (2012), Educational psychology, APH Publishing Corporation DaryaGanj, New Delhi – 110002
3. 158918146 GROWTH and DEVELOPMENT ppt. pdf.
4. Jha A.S.& Bhatt D.P.(2012), Educational psychology.A.P.H. publishing corporation 4435-36/7Ansari road, Darya Gang New Delhi -110002.
5. Mangal s.k(2021),Advanced Educational Psychology. By PHI Learning private limited , Delhi.



संज्ञानात्मक विकास

रीना कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर (बी.एड.)

मुंडेश्वरी कॉलेज फॉर टीचर एजुकेशन

प्रस्तावना

मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं के अनुसार संज्ञानात्मक विकास वह विकास है जो बच्चों की सोच, कौशल, धरणा में होने वाले बदलावों से जुड़ा है। संज्ञानात्मक विकास बाल विकास एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जिसमें भाषा सीखना, तर्क, विचार, मोटर कौशल जैसे इत्यादि कार्य शामिल होते हैं। संज्ञानात्मक विकास पूरी तरह से बच्चों के मानसिक विकास से संबंधित होता है। संज्ञानात्मक शब्द का प्रयोग बालक के बाल्यावस्था को समझने के लिए किया जाता है। संज्ञानात्मक शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के कॉग्नोसियर (cognoscere) शब्द से हुई है जिसका अर्थ है जानना या ज्ञान (getting to know or knowledge)। संज्ञानात्मक विकास की बात सबसे पहले महान दर्शन दार्शनिक अरस्तू ने की। अरस्तू ने संज्ञानात्मक क्षेत्र पर ध्यान देना शुरू किया जिसमें स्मरण, धरणा, तथ मानसिक बुद्धि सम्मिलित होते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार संज्ञानात्मक विकास संस्कृति, अनुवांशिक और शिक्षा जैसे विभिन्न कारकों से प्रभावित होता है जो संज्ञानात्मक क्षेत्र के विकास को प्रभावित करता है।

संज्ञानात्मक ज्ञान की परिभाषा :

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार संज्ञानात्मक की परिभाषा है-विचार, अनुभव और इंद्रियों के माध्यम से ज्ञान अर्जित करने की एक मानसिक प्रक्रिया है। संज्ञानात्मक या संज्ञान की कोई निश्चित परिभाषा नहीं हो सकती है। साधारण शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संज्ञानात्मक विकास किसी व्यक्ति की सोच, प्रक्रिया और क्षमताओं का विकास है। यह निर्णय लेने, स्मृति, धरणा और भाषा जैसे जुड़ा बालक के विकास का एक मूलभूत पहलू है। अलग-अलग आयु और अनुभव के आधार पर बालक में दुनिया को समझने और जाने की क्षमता विकसित हो जाती है। जैसे-जैसे एक बालक की आयु बढ़ती है उनकी सोचने की प्रक्रिया में लगातार बदलाव आता है। संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया यह समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है कि बच्चे की बौद्धिक क्षमताएं समय के साथ-साथ कैसे बढ़ती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार संज्ञानात्मक विकास संस्कृति, अनुवांशिकी जैसे विभिन्न कारकों से प्रभावित होता है, जो बालक के विकास को प्रभावित करता है।

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के कुछ महत्वपूर्ण अवधारणा

(some important concept of piaget theory of cognitive development):

1. अनुकूलन (Adaptation):

पियाजे के अनुसार बालकों में अपने वातावरण में समायोजन करने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति को अनुकूलन की संज्ञा दी गई है, बालक शुरू से ही वातावरण के अनुकूलन कार्य करना प्रारंभ कर देता है।

अनुकूलन नई जानकारी और अनुभवों के साथ तालमेल बिठाने की क्षमता है। नयी जानकारी सीखना अनिवार्य रूप से हमारे लगातार बदलते परिवेश के अनुरूप चलता है ताकि संसार में अधिक प्रभावी ढंग से कार्य कर सके। जैसे कोई बालक पहली बार कोई वस्तु को देखा है तो वह प्रक्रिया आत्मसातकरण करता है लेकिन कोई और वस्तु को इस रूप में उसके सामने प्रकट की जाए तो बालक अपनी मानसिक अवधारणा में बदलाव लाता है। वह वस्तु की पहचान एक अलग रूप में करता है। जैसे कोई बालक पहली बार बिल्ली देखा है वह जानता है कि बिल्ली कैसी दिखती है पर जब वह कुत्ता देखेगा तो वह उसी रूप में होगा पर उसकी पहचान में गलती नहीं करेगा इस प्रक्रिया को अनुकूलन कहा जाता है।

2.समायोजन(Equilibration):

पियाजे के अनुसार बालक आत्मसात और आवास की प्रक्रियाओं के बीच संतुलन बनता है। जब बच्चा नयी समस्या का सामना करता है तो संज्ञानात्मक असमानता पैदा होती है और बालक उसे संज्ञानात्मक असमानता को दूर करने के लिए अपनी प्रयासों को शुरू करता है यह समायोजन की प्रक्रिया कहलाती है। जैसे बालक नहीं वस्तुओं और अनुभवों का सामना करता है तो वह नई जानकारी को अपने मौजूदा ढांचे में शामिल करने का प्रयत्न करता है यदि नहीं जानकारी उसकी पुरानी समझ के साथ तमिल नहीं बैठता है तो उसे अपने मौजूदा ज्ञान और नई जानकारी के भी समायोजन बनाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। जैसे एक बालक अपनी जानकारी के अनुसार एक चार पैर वाले जानवर को बिल्ली के रूप में जानता है पर जब वह अगली बार चार पैर वाले किसी और जानवर को भी बिल्ली कह सकता है। इस प्रक्रिया के दौरान बालक अपनी पुरानी जानकारी और नई जानकारी के बीच समायोजन बिठाने की कोशिश करता है।

3.स्कीम्स (schemes):

स्कीम्स व्यवहारों का एक ऐसा संगठन है जिसमें दोहराने की प्रक्रिया शामिल होती है। जैसे एक बालक सुबह में स्कूल जाने से पहले तैयार होने के लिए बहुत सारे कार्य करता है जैसे अपनी पुस्तक को रखना, यूनिफॉर्म पहनना , जूता पहनना, नाश्ता इत्यादि कार्य करता है। इन सारे व्यवहार के सभी संगठन पद्धति को स्कीम कहा जाता है, क्योंकि बालक यह सारा व्यवहार को रोजाना करता यानी वह व्यवहारों का संगठन होता है। स्कीम का संबंध मानसिक क्रियो का प्रस्तुतीकरण है।

5. स्कीमा(Schema):

स्कीम एक संज्ञानात्मक राजा या अवधारणा है जो जानकारी को व्यवस्थित और व्याख्यान करने में मदद करती है। स्कीम सोच और व्यवहार की पद्धति का वर्णन करती है जिसका उपयोग बालक अपने ज्ञान को बनाने में करता है। स्कीम एक मानसिक प्रक्रिया है जिसे सामान्य कारण किया जाता है। बुनियादी अवधारणा के रूप में स्कीम का प्रयोग सबसे पहले फ्रेडरिक बार्टलेट नामक एक ब्रिटिश मनोवैज्ञानिक ने अपने सीखने के सिद्धांत के रूप में किया था। उदाहरण एक छोटा बच्चा पहले एक गाय के लिए अपनी स्कीम विकसित करता है वह जानता है कि गए बड़ा है जानवर जिसका एक पर , एक पूछ होते हैं। जब बालक पहली बार घोड़ा देखा है , तो वह उसे गाय कह सकता है क्योंकि गाय की विशेषताएं उसके स्कीम के साथ फिट बैठती है। यह एक बड़ा जानवर है जिसके चार पैर , बाल , पूछ होती है। एक बार जब उसे बताया गया कि यह एक अलग जानवर है जिसे घोड़ा कहा जाता है , तो वह गाय के लिए अपनी मौजूद उसकी स्कीमा में संशोधित करेगा और गाय के लिए नई स्कीम बनाएगा।

विकेंद्रीकरण(decentering):

पियाजे के अनुसार विकेंद्रीकरण। यह पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत है में तीसरे चरण में आता है जिसे कंक्रीट ऑपरेशन भी कहा जाता है। इस अवस्था में बालक तर्क, वितर्क ,अंतर करना, जोड़ करना ,गुणा करना इत्यादि चीज सीख जाता है। जो तार्किक प्रक्रियाएं विकसित होती है उनमें यह विकेंद्रीकरण कहलाता है। जैसे जब एक बालक को दो चॉकलेट में से किसी एक का चयन करने के लिए कहा जाता है तो वह इस आधार पर चयन करता है कि किसका स्वाद बेहतर होगा भले ही दूसरे का आकार यह रंग समान हो।

पियाजे की संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत : मनोवैज्ञानिक जीनपियाजे ने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत को विकसित किया यह सिद्धांत बालकों के बड़े होने के साथ-साथ उनके बौद्धिक विकास पर ध्यान देने से संबंधित है बालक कैसे सोचते हैं? कैसे अनुभव करते हैं ? इन सारी बातों को जीन पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत देकर बताया है। शैशव अवस्था से पौढ अवस्था तक ज्ञान का विस्तार

कैसे होता है। जैसे-जैसे बालक बड़ा होता है वह संसार को कैसे बेहतर समझने लगता है, यह सारे प्रश्न को जानने के लिए हम जीन पियाजे द्वारा दिए गए सिद्धांत के आधार पर जान सकते हैं।

पियाजे का जन्म 1896 ईस्वी में स्विट्जरलैंड हुआ था ,और उनकी मृत्यु 1980 वर्ष में हुई थी। पियाजे को मनोवैज्ञानिक दर्शन में विशेष रुचि थी। वह बालकों के विचार सोच, तर्क वितर्क से सारी बातों को जानने के लिए उन्होंने संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया जाना और समझा और उसी के आधार पर उन्होंने संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत दिया पियाजे संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत को चार अवस्था में बात की है।

1. इंद्रिय क्रियात्मक अवस्था(sensorimotor stage) जन्म से 2 वर्ष तक: - यह अवस्था जन्म से 2 वर्ष तक होती है इसमें बच्चा अपनी ज्ञान इंद्रियों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करता है जैसे-जैसे बालक की आयु बढ़ती है, बालक से जटिल शारीरिक क्रियाएं जैसे रेंगना, शरीर हिलना और बड़बड़ाना (बोलना) क्रियाएं करने लगते हैं। इस अवस्था के अंत तक वह लक्ष्य केंद्रित क्रिया को करने में सक्षम हो जाते हैं। वे किसी का पीछा करना, बॉक्स में से अपने खिलौने को निकालना आदि कार्य करने लग जाते हैं। इस अवस्था तक निम्न विकास बच्चों में विकसित हो जाता है

- सक्षम क्रियाओं का समायोजन (coordinating Reflex)
- शारीरिक क्रियाओं पर नियंत्रण (greater control over body movement).
- सामान्य चालक क्रियाओं, का समायोजन (coordinating simple motor action).

क्रियात्मक अवस्था वस्तु में स्थापित होता है। इस अवस्था के प्रारंभिक वर्ष में बालक की सोच इतनी विकसित नहीं होती कि यदि कोई वस्तु दिखाई नहीं दे रही है या अनुभव में नहीं है तो भी उसका अस्तित्व रहता है इस अवस्था में बालक को भ्रमित करना आसान होता है। जब बालक 2 वर्ष की अवस्था का हो जाता है तब उसे भ्रमित करना मुश्किल हो जाता है। जैसे जब कोई बच्चा का खिलौना छुपा लिया जाता है फिर भी वह उसे ढूंढेगा इसे ही वस्तुगत स्थापित कहते हैं।

2.प्राक - परिचालन अवस्था(pre- operational stage)2 वर्ष से 7वर्ष :-

इस अवस्था में बालक की आयु 2 वर्ष से 7 वर्ष तक रहती है। यह प्रारंभिक अवस्था होती है। पियाजे ने इस अवस्था को दो भागों में बांटा है

1. पूर्व - प्रत्ययात्मकल (pre- conceptual):

यह अवस्था दो वर्ष से 4 वर्ष तक रहता है।

2. अतः प्रज्ञाकाल (intuitivestage):

यह अवस्था चार वर्ष से लेकर 7 वर्ष तक होता है। इस अवस्था को परिवर्तन या खोज की अवस्था कही जाती है। बालक विभिन्न घटनाओं या कार्यों संबंधित जानकारी में रुचि रखने लगता है। बालक क्यों और कैसे जाने में रुचि रखता है। बालकों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति शामिल हो जाती है , अपने आसपास के वातावरण तथा लोगों के व्यवहार का अनुकरण करने लगते हैं। बालक इस अवस्था में तार्किक तरीके से जानकारी में हेर -फेर और परिवर्तन नहीं कर सकते हैं। जबकि बालक छवि, चिन्ह के बारे में सोच सकते हैं। इस अवस्था में

बालक काल्पनिक मित्र विकसित करते हैं या दोस्तों के साथ अलग-अलग भूमिका निभाते हैं। जैसे घर-घर खेलना, चाय पार्टी करना, गुड्डे गुड्डियों से खेलना।

इस अवस्था में बालक में आत्म केंद्रित होता है, अर्थात् बालक सिर्फ अपने विचारों को सही मानता है, जैसे वह चलता है, तो सूर्य भी चलता है जब वह गुड्डिया को देखते हैं, तो गुड्डिया भी उसे देखते हैं, इस तरह की बातें बालक सोचते हैं, और उसी को सही मानते हैं। इस अवस्था में बालक चिंतन तथा तर्क करने लगता है जिसके परिणाम स्वरूप वह साधारण मानसिक क्रियाएं जैसे जोड़, घटाव, गुणा तथा भाग आदि सम्मिलित है परंतु वह मानसिक क्रियाओं को पीछे छिपे कारणों को नहीं समझ पाता है।

3. प्रत्यक्ष परिचालक अवस्था(operational stage) 7 वर्ष से 11 वर्ष तक: -पियाजे की इस अवस्था को प्रत्यक्ष परिचालक अवस्था या ठोस परिचालन चरण भी कहा जाता है। इस अवस्था में बालक भौतिक वस्तुओं के बारे में तार्किक और तर्कसंगत रूप से सोचना शुरू करते हैं। इस अवस्था के अंत तक बच्चे अपने अनुभवों से संबंधित समस्याओं को हल करने के लिए आगनात्मक तर्क का उपयोग करते हैं, लेकिन काल्पनिक या अमूर्त समस्याओं को हल करने की क्षमता को विकसित नहीं कर पाते हैं।

इस अवस्था में बालक का मानसिक विकास इतना विकसित हो जाता है की वस्तुओं के समूह को एक क्रम में व्यवस्थित कर सकते हैं जैसे वस्तुओं को सबसे ऊंची से नीचे या सबसे पतले से सबसे चौड़ी तक व्यवस्थित कर पाएंगे।

4. औपचारिक परिचालन अवस्था(Formal stage) 12 वर्ष से किशोरावस्था तक: यह अवस्था पियाजे की अंतिम अवस्था मानी जाती है। इस अवस्था में बालक की आयु 12 वर्ष से प्रारंभ होकर किशोरावस्था तक चलती है। औपचारिक अवस्था में बच्चे अमूर्त रूप से सोचना शुरू करते हैं और समस्याओं का समाधान रचनात्मक तरीके से निकलते हैं या निगनात्मक तर्क का उपयोग करते हैं।

- बालक व्यवस्थित रूप से समस्याओं का समाधान कर सकते हैं।
- बालक तर्क और सामान सिद्धांतों का उपयोग करके समस्याओं का समाधान कर सकते हैं।
- बालक काल्पनिक वस्तुओं के बारे में सोच सकते हैं और उन्हें हल करने के लिए विभिन्न समाधान तैयार कर सकते हैं। पियाजे का मत है की औपचारिक परिचालन कि यह अवस्था अन्य अवस्थाओं की तुलना में सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है तथा यह किशोरावस्था की शिक्षा के स्तर से सीधा प्रभावित होती है।

ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास: जैरोम ब्रूनर अमेरिकी मनोवैज्ञानिक थे। इन्होंने संज्ञानात्मक विकास के एक नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया। ब्रूनर का सिद्धांत संचनात्मक अधिगम सिद्धांत या अन्वेषण सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। इन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर यह पता लगाया कि बालक का मानसिक विकास एक क्रमिक विकास है। उन्होंने बालक की मानसिक विकास को तीन अवस्था में बाटा है।

1. सक्रिय अवस्था(Enactive stage) जन्म से 18 माह तक:- इस अवस्था में बालक अपनी अनुभूतियों को शब्दहीन क्रियाओं द्वारा व्यक्त अभिव्यक्त करता है जैसे अपनी मां को देखकर शिशु का हंसना , दूध की बोतल देखकर हाथ पैर चलना।

2. दृश्य प्रतिमा अवस्था (Iconic stage) 18 माह से 24 माह: इस अवस्था में बालक अपनी अनुभूतियों को मस्तिष्क में उनकी दृष्टि प्रतिमा बनाकर व्यक्त करते हैं जैसे -तेज रोशनी, चमकीले वस्तु, तेज आवाज से प्रभावित होना।
3. सांकेतिक अवस्था(symbolic stage) 7 वर्ष से किशोरावस्था तक: इस अवस्था में बालक अपनी अनुभूतियों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है और वह प्रतिको और उनके मूल्य विकल्पों से संबद्ध स्थापित करने लगते हैं जैसे संकेत को समझ कर कार्य करना।

ब्रूनर कि सिद्धांत की विशेषता(characteristic of Bruner's cognitive development theory):

1. ब्रूनर का सिद्धांत बालक के पूर्व ज्ञान तथा नए ज्ञान में समन्वयन के लिए अनुकूलन वातावरण करने पर बल देता है।
2. विषय वस्तु की बनावट ऐसी हो कि बच्चे आसानी पूर्वक सीख सके।
3. ब्रूनर के सिद्धांत के अनुसार विषय वस्तु जो सिखाई जानी है ऐसे अनुक्रम में प्रस्तुत की जाए जिससे बच्चे तार्किक ढंग से एवं अपनी कठिनाई स्तर के अनुसार सीख सके।
4. यह सिद्धांत सीखने के पुर्नबलन पुरस्कार व दंड आदि प्रबल देता है।
5. ब्रूनर के इस सिद्धांत के अनुसार शिक्षा बालक के व्यक्तित्व और सामाजिक दोनों गुणो का विकास करती है।

1. ब्रूनर के सिद्धांत के शिक्षा में उपयोगिता:

1. ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार पाठ्यक्रम बनाना चाहिए।
2. मानसिक अवस्थाओं के अनुसार शिक्षण विधियां और प्रविधियां का प्रयोग करना चाहिए।
3. ब्रूनर की अन्वेषण विधि द्वारा छात्रों में समस्या समाधान की क्षमता का विकास किया जाना चाहिए।
4. ब्रूनर ने वर्तमान अनुभवों को पूर्व ज्ञान से जोड़ने पर बल दिया है। इससे छात्रों के ज्ञान का समृद्धि तथा स्थाई बताया जा सकता है ।
5. ब्रूनर की संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं के अनुसार शिक्षक अपने नियोजन क्रियावन एवं मूल्यांकन प्रक्रिया से संशोधन कर बालकों के बौद्धिक विकास में सहायक हो सकते हैं।

● **ब्रूनर और पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत में समानताएं और असमानताएं:**

ब्रूनर और पियाजे दोनों ने संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है इन दोनों के संज्ञानात्मक की प्रक्रिया में समानताएं और असमानताएं हैं जो निम्न है:

समानताएं:

1. छात्र पूर्ववर्ती अनुकूलन के आधार पर अधिगम करता है।
2. बालक में स्वाभाविक रूप से भाषा विषय का जिज्ञासा होता है।
3. बालक की संज्ञानात्मक संरचनाओं समय के साथ विकसित करती है।
4. बालक अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेता है।
5. संज्ञानात्मक विकास का अंतिम चरण प्रतीक, संकेत चिह्न के अभिग्रहण तक चलता है जिसे इन्होंने महत्वपूर्ण प्रमुखता दी है।

असमानताएं:

क्रम संख्या	ब्रूनर	पियाजे
1.	ब्रूनर विकास को एक सतत प्रक्रिया मानते हैं	पियाजे विकास के विभिन्न चरणों की एक शृंखला मानते हैं
2.	ब्रूनर भाषा विकास को संज्ञानात्मक विकास का एक महत्वपूर्ण कारक मानते हैं	पियाजे ने भाषा विकास को संज्ञानात्मक विकास के एक परिणाम के रूप में मानते हैं
3.	ब्रूनर के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की गति को बढ़ाया जा सकता है	पियाजे के अनुसार बच्चों में संज्ञानात्मक विकास स्तर और परिपक्वता के अनुकूल स्वगति से होता है।
4.	ब्रूनर ने विकास को एवं अधिक ज्ञान रखने वाले बालकों की अधिगम प्रक्रिया में सहभागिता को महत्व दिया है।	पियाजे ऐसे नहीं मानते हैं।
5.	ब्रूनर के अनुसार प्रतिबिंबात्मक चिंतन के पूर्व में अपनाई गई अवस्थाओं में प्रतिनिधित्व बदलते नहीं है	पियाजे के अनुसार यह बदल जाता है
6	ब्रूनर अपने सिद्धांत में शिक्षा को महत्व दिया है	पियाजे ने अपने सिद्धांत में वातावरण को ज्यादा अधिक महत्वपूर्ण माना है
7	ब्रूनर के सिद्धांत में बालकों के विकास की तीन अवस्थाएं होती हैं	पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के चार सिद्धांत होते हैं।

वाइगोत्सकी की संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत:

वाइगोत्सकी की एक रूसी वैज्ञानिक थे उनका जन्म 19 नवंबर 1896 ई और मृत्यु 11 जून 1934 को 37 वर्ष की अवस्था में हुई थी। वाइगोत्सकी संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत का प्रस्ताव यह है कि सीखने और समस्या समाधान जैसी संज्ञानात्मक क्षमताएं बचपन के दौरान सामाजिक संपर्क के माध्यम से विकसित होती हैं। उनके अनुसार बालक के संज्ञानात्मक विकास में संस्कृति और पर्यावरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उनका मानना था की संज्ञानात्मक विकास के लिए एक दूसरे के साथ सामाजिक संपर्क में आना आवश्यक है। जैसे बालक अपने शिक्षक तथा अपने से ज्यादा जाने वाले लोगों से सीखने के बाद अपने अधिगम कौशल में वृद्धि ला पाएगा। वाइगोत्सकी के सिद्धांत में कई महत्वपूर्ण घटक शामिल हैं, जो संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या करते हैं।

- समीपस्थ विकास का क्षेत्र
- आंतरिक भाषा
- मचान(scaffolding)

1. समीपस्थ विकास का क्षेत्र: वाइगोत्सकी ने अपने विचारों में समीपस्थ विकास क्षेत्र की अवधारणा प्रस्तुत की है। उनके अनुसार जब एक बालक कोई कार्य कर रहा होता है तो उसे समय बहुत सारे समस्या उस बालक के सामने आते हैं उस समस्या को हल करने के लिए उसे एक विशेषज्ञ की जरूरत होती है अगर विशेषज्ञ की सहायता मिल जाती है तो बच्चा अच्छे से अपने कार्य को कर सकता है। जैसे एक बालक अच्छा क्रिकेट खेलता है पर उसे एक विशेषज्ञ की सहायता मिल जाए तो वह क्रिकेट के खेल में बेहतर प्रदर्शन कर सकता है। यह समीपस्थ विकास क्षेत्र के अंतर्गत आता है।

2. भाषा: वायगोत्सकी ने भाषा को संचार के लिए आवश्यक उपकरण माना है। संस्कृति और व्यवहार को भाषा के माध्यम से समझा जाता है। उन्होंने संज्ञानात्मक विकास में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डाला है। इनका सिद्धांत कहता है कि सामाजिक संपर्क से बच्चों में भाषा का उपयोग करने की क्षमता विकसित होती है वायगोत्सकी की के अनुसार विकास की प्रक्रिया में भाषा के तीन चरण होते हैं।

- सामाजिक भाषा: एक बालक के भाषा का विकास समाज में ही होता है जैसे- परिवार, स्कूल, पड़ोसी।
- निजी भाषा- निजी भाषा वह भाषा है जिसमें वह स्वयं को निर्देशित करता है लेकिन बच्चा इस उम्र में आत्मसात नहीं कर पता है।
- मौन आंतरिक भाषा: इसके अनुसार एक बालक अपने मन में बहुत सारे भाषाओं का विकास करता है। इसे अनुकरण भाषा भी कह सकते हैं यानी बच्चे अपने आसपास के वातावरण के अनुकरण से बच्चे अपने मन में कुछ भाषा विकसित कर लेते हैं।

संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत का शिक्षा पर प्रभाव:

संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांतों का शिक्षा पर बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इसके आधार पर शिक्षकों को अपने छात्रों के संज्ञानात्मक विकास के बारे में बेहतर समझ हो पाती है। पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास के चार चरण के अनुसार शिक्षा देने की बात की है। संज्ञानात्मक विकास एक शिक्षक दृष्टिकोण है जो छात्रों के सक्रिय होने और सीखने की प्रक्रिया में संकलन होने के लिए प्रोत्साहित करता है। शिक्षक अपनी शिक्षण को बालकों के संज्ञानात्मक स्तर के साथ रेखांकित करें अर्थात् बालकों के आयु वर्ग के अनुसार शिक्षण विधि का प्रयोग करें। इससे बालकों के अधिगम करने की प्रक्रिया में आसानी होती है। संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत के अंतर्गत शिक्षक के कुछ नियम है जो निम्न है :-

- बच्चों को अपने कार्य खुद करने का अवसर दें।
- बच्चों की रुचि का ध्यान रखें।
- आसपास का वातावरण बच्चों की अनुकूल होना चाहिए।
- बालक की बुद्धि का मापन उसकी व्यावहारिक क्रियाओं के आधार पर करें।
- औपचारिक आयु वाले बच्चों को समस्या समाधान विधि से पढ़ाएं।
- संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत के आधार पर शिक्षक और अभिभावक बालकों की रचनात्मक और कौशल विचार शक्ति को पहचान सकते हैं।

समकालीन काल में बच्चों के भविष्य को सही आकार देने में संज्ञानात्मक विकास और उसके व्यापक कौशल को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा प्रणाली को बहुत व्यवस्थित तरीके से किया जाता था। उदाहरण की तौर पर हम बौद्ध शिक्षा प्रणाली को ले सकते हैं। बौद्ध शिक्षा प्रणाली का विकास बुनियादी जीवन के आधार पर हुआ था। यहां शिक्षा बालकों के नैतिक, मानसिक और शारीरिक विकास पर आधारित होता था। बौद्ध शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य बालकों के सर्वांगीण और समग्र विकास को आसान बनाना था। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल में भी संज्ञानात्मक विकास के आधार पर ही बालकों को शिक्षा दी जाती थी।

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत का शिक्षण पर प्रभाव: पियाजे की संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत का शिक्षा में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें बालक खोज करके सीखता है। पियाजे का यह माना था कि एक बालक का सीखना तब अर्थ पूर्ण माना जाता है जब वह शिक्षा विद्यार्थी के रुचि के अनुसार होता है, इसीलिए उन्होंने कहा कि पाठ्यक्रम हमें इस प्रकार तैयार करना चाहिए कि उसमें बालक की रुचि हो और आगे जाकर शिक्षा का अपने जीवन में प्रयोग कर सके। बालक के सीखने की प्रवृत्ति प्राकृतिक रूप से होनी चाहिए। पियाजे ने अनौपचारिक शिक्षा को भी महत्वपूर्ण शिक्षा माना है।

औपचारिक शिक्षक व शिक्षण है जो विद्यालयों में दिया जाता है, यहां से बालक में तर्क वितर्क, संस्कृत, नैतिक, मानसिक विकास का ज्ञान होता है। वर्तमान शिक्षा पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत पर ही आधारित है। प्रारंभ में बालकों को खेल और खोजबीन के माध्यम से शिक्षा दी जाती है , जिसे हम प्राकृतिक शिक्षा भी कह सकते हैं, जैसे-जैसे बालक की आयु में वृद्धि होती है उसके संज्ञानात्मक स्तर को ध्यान में रखकर उसके शिक्षा के स्तर को बढ़ाया जाता है।

निष्कर्ष:- संज्ञानात्मक विकास वह विकास है जिसमें बच्चे का मानसिक तथा आंतरिक विकास शामिल होता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार संज्ञानात्मक विकास एक सतत प्रक्रिया है। कोई बालक अनुवांशिकी और सीखने के कारकों के संबंधों के माध्यम से अपनी दुनिया को समझता है , सोचता है और उसी के आधार पर अपने ज्ञान प्राप्त करता है ।

संदर्भ : -

1. माथुर .एस.एस. (2013) शिक्षा मनोविज्ञान , अग्रवाल पब्लिकेशन , आगरा
2. चौहान.आर और पाठक .पी.डी . (2015) बाल्यावस्था एवं उसका विकास , अग्रवाल पब्लिकेशन , आगरा
3. माथुर .एस.एस और पाठक पी.डी (2016) शिक्षक एवं अधिगम, अग्रवाल पब्लिकेशन|



COGNITIVE DEVELOPMENT:**ACONCEPTUAL FUNCTIONING OF INTELLECT****Dr. Priya****Associate Professor**

Mahalakshmi College for Girls

Duhai, Ghaziabad, UP

INTRODUCTION:

Cognitive development is a branch of neuroscience and psychology that examines how children process information, develop conceptual resources, hone perceptual skills, acquire language, and mature other facets of the adult brain and cognitive psychology. It recognizes qualitative distinctions in how children and adults process waking experiences, including object permanence, comprehension of logical relationships, and cause-and-effect reasoning in school-aged children. Cognitive development refers to the gradual ability to consciously perceive, comprehend, and articulate thoughts in adult terms. It involves how individuals perceive, think, and comprehend their surroundings through a combination of genetic and learning influences. The cognitive information development process is divided into four stages: reasoning, intelligence, language, and memory. These stages typically commence around 18 months of age, as children engage with toys, listen to parental speech, and observe stimuli such as television to bolster their cognitive growth.

Stages of Cognitive Development (Problem-Solving and Intelligence): The term intelligence comes from the Latin word "intelligere," which means to comprehend or discern. The advancement of problem-solving skills and cognitive growth begins by forming concepts like object permanence, causality, and symbolic reasoning through hands-on learning, leading to more advanced abstract thinking and the integration of unconscious into conscious memory formation.

Birth to two months: The optical focal length is around 10 inches during the newborn stage. Babies actively look for things that catch their attention, get used to familiar things, and react more energetically to new things. Their first reactions are instinctive, such as sucking and grabbing. They can focus and track objects moving slowly from side to side, and will eventually track past the center line. During this phase, they prefer high-pitched voices.

Two to six months: Kids in this age group engage in purposeful sensory exploration of their bodies by looking at their hands, reaching, and touching different body parts. This helps them develop an understanding of cause and effect and self-awareness. They are less likely to notice sensations and changes happening around them.

Six to twelve months: Object permanence develops in this age range as toddlers actively search for objects. At six months old, they begin to seek partially concealed items, while by nine months, they search for completely hidden objects and reveal them, often through activities like peek-a-boo. Separation and stranger anxiety surface as toddlers grasp the concept that things continue to exist even when unseen. With improving motor skills, children explore their surroundings by reaching, inspecting, grasping, mouthing, and dropping objects.

Twelve to eighteen months: During this stage, the child's motor skills improve, enabling them to walk and manipulate objects more effectively. Egocentric pretend play becomes

noticeable. As object permanence and memory develop, objects become easier to locate after being moved around, and the child can follow the movement of objects.

Eighteen months to two years: Memory and cognitive abilities improve as frontal lobes develop, resulting in the ability to envision outcomes without relying heavily on physical manipulation. This leads to the emergence of novel problem-solving approaches without the need for repeated practice. Thinking becomes more sophisticated, enabling the formulation of action plans. Object permanence is fully established, allowing individuals to anticipate the location of objects without observing their movement.

Two to five years: In the preschool years, children begin to engage in magical and wishful thinking. For instance, they may believe the sun sets because it is tired. At this stage, they may also experience fears of monsters that cannot be easily rationalized away. Children prioritize perceptions over logic, so providing them with a pretend tool like monster spray can be a beneficial way to alleviate their anxiety.

Preschool-aged children often lack a solid understanding of cause and effect, leading them to associate sickness with misbehavior. Their egocentric nature means they may only consider their own perspective, such as offering a favorite stuffed toy to comfort a distressed loved one. By the age of five, children typically improve their pre-literacy and numeracy skills, being able to accurately count to ten, recite the alphabet from memory, and identify some letters. Additionally, children develop a hand preference around this age.

Six to twelve years: In the early school years, children begin to develop their scientific reasoning and comprehension of physical laws related to conservation, such as weight and volume. They acquire the ability to grasp various viewpoints and consider different perspectives in various situations. Children also learn that rules can be altered through mutual agreement. Initially, they master basic literacy skills like reading and understanding numbers. By the time they reach third or fourth grade, the focus transitions from learning to read to reading to learn, and from spelling to writing compositions.

Twelve years and older: In this stage, teenagers are able to use logic in a systematic and scientific manner. They can utilize abstract thinking to solve algebraic problems and employ multiple logics to find scientific solutions. These concepts are beneficial for academic tasks. As adolescents transition into early adulthood, these skills can also be used to address emotional and personal challenges. During the late teenage years and early adulthood, contemplating the future, including aspects like love, commitment, and career aspirations, becomes significant.

Studies in Cognitive Development:

Jean Piaget played a significant role in establishing the field of cognitive development with his theory on the subject. While many of Piaget's theoretical ideas have lost popularity, his explanation of the key cognitive changes that occur with age is still widely accepted today. This includes the transition from early perception relying on concrete, external actions to later achieving an abstract understanding of observable aspects of reality and uncovering underlying abstract rules and principles, typically beginning in adolescence. In recent times, various alternative models have emerged, such as information-processing theory, neo-Piagetian theories, and Bronfen brenner's Ecological Systems Theory, which seek to blend Piaget's concepts with more contemporary developmental and cognitive science theories. A major debate in cognitive development has been the "nature versus nurture" argument, questioning whether cognitive development is primarily influenced by innate qualities (nature) or personal experiences (nurture). However, most experts now agree that this is a false dichotomy, as evidence from biological and behavioral sciences suggests that genetic activity interacts with environmental events and experiences from early on. While proponents of naturalistic

views emphasize genetic mechanisms, insights from Comparative psychology, Molecular biology, and Neuroscience suggest a significant ecological component in shaping cognition.

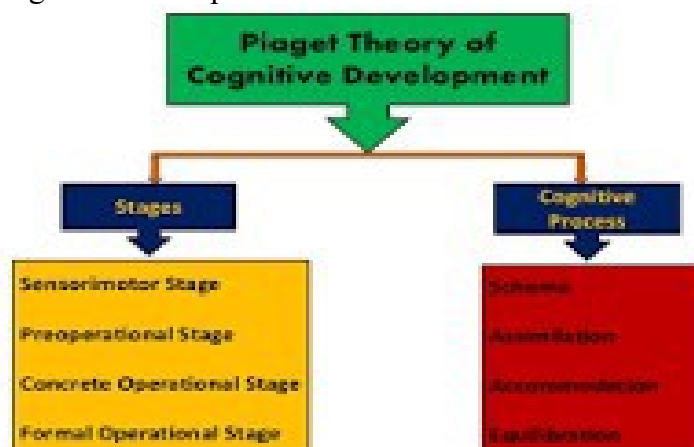
Jean Piaget Cognitive development is closely tied to Piaget, who was the first to methodically study developmental processes. Despite not being the initial proponent of cognitive development theories, Jean-Jacques Rousseau explored childhood development in three stages in his work *Emile or On Education*, published in 1762. The first stage, up to age 12, sees children guided by emotions and impulses. From ages 12 to 16, reason begins to develop, leading to the final stage where children transition into adulthood. Sigmund Freud's psychosexual development theory suggests children navigate various stages to enhance their cognitive abilities. Maria Montessori, starting in 1897 with mentally disabled children, later researched elementary schools and introduced the Montessori Method through her 1950 book, *The Discovery of the Child*.

Erik Erikson, a neo-Freudian, emphasized personality and identity development in children, stressing social experiences throughout life as key contributors to personality and identity formation. His model outlines eight stages that all children progress through.

Lawrence Kohlberg developed the stages of moral development theory, building on Piaget's research on cognitive development to demonstrate that these stages persist throughout one's life. Kohlberg's six stages align with Piaget's constructivist principles by emphasizing that progression through the stages is sequential and regression is uncommon.

Lev Vygotsky's theory emphasizes social learning as crucial for cognitive development. According to Vygotsky, adults play a vital role in children's development by facilitating learning through mediation, which involves modeling and explaining concepts. Collaboratively, adults and children acquire the concepts of their culture and activities. Vygotsky posited that complex mental activities are acquired through social learning. A key component of his theory is the zone of proximal development, where he suggests the most effective learning occurs. This zone represents tasks a child cannot complete alone but can with the assistance of a more knowledgeable other (MKO). Vygotsky also underscored the significance of culture in cognitive development, including language, writing, and counting systems specific to a culture. Private speech, or self-talk to aid problem-solving, is another aspect of Vygotsky's theory. Scaffolding, providing support to a child and gradually reducing it to promote independent learning over time, is also central to Vygotsky's theory.

Piaget's theory of cognitive development



Jean Piaget is known as the first psychologist and philosopher to coin the term "cognitive development." While previous researchers had explored child development, Piaget is credited with conducting the inaugural systematic study of cognitive

development and assigning it its name. His primary contribution lies in the stage theory of child cognitive development. Furthermore, he conducted observational studies on children's cognition and devised uncomplicated tests to uncover various cognitive abilities in children. Piaget's belief is that individuals progress through developmental stages enabling them to think in novel, more intricate manners. Several of Piaget's assertions have waned in popularity. For instance, he contended that young children are incapable of conserving numbers. However, subsequent experiments revealed that children struggled due to a lack of comprehension regarding the task. When the experiment involved candies and children were asked to choose a set rather than explaining to an adult which group contained more items, they displayed no confusion over which set had more items. Piaget argued that a child cannot conserve numbers if they do not grasp one-to-one correspondence. Piaget's cognitive development theory concludes at the formal operational stage, typically attained in early adulthood. It does not consider later stages of adult cognitive development as outlined by, for instance, Harvard University professor Robert Kegan. Cognitive learning focuses on maximizing brain efficiency. Cognition refers to the mental process of acquiring knowledge through senses, experience, and thought. Cognitive learning theory combines cognition and learning to describe learning processes. The goal is to enhance thinking, understanding, and retention. Mastering cognitive learning fundamentals fosters a habit of lifelong learning and can boost professional success. Cognitive learning involves active engagement of the senses to enhance memory and retention. Unlike traditional methods that stress memorization, cognitive learning prioritizes connecting new information with existing knowledge. This approach encourages reflection and integration, leading to more effective learning outcomes and long-term retention. Cognitive learning fosters a life-long love of learning and improvement in employees. Organizations can utilize cognitive learning strategies to provide the following benefits to their staff: - Enhance comprehension: Through hands-on learning, cognitive learning promotes immersive education and aids in better understanding material and its application to work and life. - Improve problem-solving skills: The cognitive learning approach enhances problem-solving abilities, which are crucial for leadership roles and applying them effectively across all job aspects. - Boost confidence: By enhancing problem-solving skills, cognitive learning can bolster confidence in handling work challenges and quick learning of new concepts.

Piaget overlooks the influence of social and cultural factors on development stages by focusing solely on children from western cultures. This is significant because diverse societies and cultures offer unique early childhood experiences. For instance, individuals in nomadic tribes may encounter challenges with number and object counting. Various cultures have distinct practices and events that are prevalent at a young age, potentially impacting aspects like object permanence. Consequently, children from different societies may reach the formal operational stage at varying rates, with some remaining in the concrete operational stage at the same chronological age.

Stages of Cognitive Development

Sensorimotor stage: Piaget proposed that infants go through a sensorimotor stage that spans from birth to age 2, during which they rely on their senses to explore and engage with their surroundings. This helps them establish a connection between sensory input and motor reactions. According to Piaget, this stage concludes when children grasp the concept of object permanence and begin to demonstrate symbolic thinking. However, this perspective was challenged in the 1980s when studies revealed that infants as young as five months old can mentally represent objects that are not within their sight, including characteristics like number and rigidity.

Preoperational stage: Piaget proposed that children transition into a preoperational stage from about age 2 to age 7. During this stage, children develop symbolic thought, seen in their enhanced capacity for imaginative play. While language skills progress during this stage, children may struggle with grasping intricate logic and processing information. Later research indicating that preschoolers can consider others' viewpoints and reason about abstract concepts, such as cause and effect relationships, led to the decline of this particular aspect of stage theory.

Concrete operational stage: Piaget thought that the concrete operational stage typically occurred between the ages of 6 and 12. During this stage, children develop skills like conservation, classification, serialism, and spatial reasoning. Recent findings indicate that even younger children are capable of reasoning about abstract concepts such as types, logical operators, and cause-and-effect relationships, making this part of stage theory outdated.

Formal operational stage: Piaget thought that the formal operational stage typically lasts from around age 12 into adulthood and is characterized by the capacity to use mental operations with abstract concepts.

Erik Erikson collaborated with Freud, but unlike Freud, Erikson emphasized Biological, Psychological, and social factors in human development. Each stage is based on a form of competence, or perceived ability to accomplish tasks. The stages are characterized by two opposing psychological tendencies and the traits that emerge in each stage depend on the extent of each tendency experienced. Healthy circumstances lead to the development of virtues, while unhealthy circumstances result in maladaptations. There are a total of 8 stages. Although the conflicting tendencies may seem like good versus bad, they can be viewed as a blend where most healthy individuals encounter aspects of both.

Stage 1-Infancy- Trust versus Mistrust: Babies have limited capabilities to take care of themselves. Therefore, infants grow based on whether they learn to trust or distrust their surroundings. The virtue that emerges at this point is hope, while the maladaptation is withdrawal.

Stage 2-Early Childhood- Autonomy versus Shame: When children begin to discover the world, they face the conflict between autonomy, the ability to do things independently, and shame or doubt, and the fear of not being capable and making mistakes. The virtue that develops during this stage is will, indicating self-control. The maladaptation for this phase is compulsion, representing a lack of self-control.

Stage 3-Play Age- Initiative versus Guilt: When children progress from the autonomy versus shame stage, they encounter the initiative versus guilt conflict. Initiative involves being able to take action in a situation, while guilt involves feeling remorse for their actions or feeling unable to act. The virtue that emerges from this stage is purpose, while the maladaptation is inhibition.

Stage 4-School Age- Industry versus Inferiority: As children become more aware of their impact on the world, they face the challenge of industry versus inferiority. Industry refers to their capacity and willingness to engage actively with their environment, while inferiority signifies an inability or perceived inability to do so. The key virtue learned during this stage is competence, while the negative outcome is inertia or passivity.

Stage 5-Adolescence- Identity versus Identity Confusion: As children transition into adolescence, their capacity to engage with the world begins to influence their self-perceptions, leading to a struggle between self-awareness and confusion. Self-awareness involves understanding one's identity and forming a personal moral compass. Identity confusion, on the other hand, entails uncertainty about self-identity and moral values. The positive outcome of this process is fidelity, while the negative outcome is repudiation.

Stage 6-Young Adulthood- Intimacy versus Isolation: In young adulthood, individuals seek belonging in a few close relationships. Intimacy involves forming deep bonds with others, while isolation refers to the absence of such connections. The potential virtue that may emerge from this is love, while the negative outcome is loneliness.

Stage 7-Adulthood- Generativity versus Stagnation: During this life stage, individuals discover that while achieving personal goals, they may focus on nurturing the next generation as mentors or parents, or they may prioritize self-care and distance themselves from others. The predominant virtue in this phase is empathy, while the maladaptive behavior is rejection.

Stage 8-Old Age- Integrity versus Despair: As people reach the later stages of their lives, they reflect on their past accomplishments and either find contentment in their life's achievements or experience profound regret. This sense of fulfillment or remorse plays a significant role in shaping their identity in their final years. The positive outcome is the growth of wisdom, while the negative outcome is the cultivation of disdain.

CONCLUSION: Children experience rapid growth and development in their initial five years across four main areas: motor (physical), language and communication, cognitive, and social/emotional. Cognitive development pertains to how children think, explore, and understand things, encompassing the acquisition of knowledge, skills, problem-solving abilities, and attitudes that enable children to comprehend the world around them. Brain development is a component of cognitive growth. Nurturing a child's cognitive development from birth is crucial for laying the groundwork for academic success and future achievements. Studies indicate that children who can differentiate sounds at six months of age demonstrate enhanced learning skills. Children experience rapid growth and development in the first five years of their lives in four main areas: physical (motor skills), language and communication, cognitive, and social/emotional development. Cognitive development encompasses a child's ability to think, explore, and solve problems, leading to the acquisition of knowledge, skills, and attitudes that aid in understanding the world. Nurturing a child's cognitive development from birth is vital for establishing a strong foundation that supports academic success and overall well-being in the future.

References:

1. Sellers, P. Douglas; Machluf, Karin; Bjorklund, David F. (2018), "The Development of Evolutionarily Adaptive Individual Differences: Children as Active Participants in Their Current and Future Survival", *The SAGE Handbook of Personality and Individual Differences: Volume II: Origins of Personality and Individual Differences*, London: SAGE Publications Ltd, pp. 203–217, doi:10.4135/9781526451200.n12, ISBN 978-1-5264-4518-6, retrieved 2020-10-14
2. Schacter, Daniel L (2009). *Psychology*. Catherine Woods. pp. 430. ISBN 978-1-4292-3719-2.
3. Bronfenbrenner, Urie (2000), "Ecological systems theory.", *Encyclopedia of Psychology*, Vol. 3., Washington: American Psychological Association, pp. 129–133, doi:10.1037/10518-046, ISBN 1-55798-652-5, retrieved 2020-10-07

4. Carlson, N.R. et al.. (2005) *Psychology: the science of behaviour* (3rd Canadian ed) Pearson Ed. ISBN 0-205-45769-X
5. Tomasello M. (2019). *Becoming human: A theory of ontogeny*. Cambridge, Massachusetts, USA: Harvard University Press.
6. Piaget, Jean (1936). *Origins of intelligence in the child*. Routledge & Kegan Paul.
7. WESLEY, F (March 1989). "Developmental cognition before piaget: Alfred Binet's pioneering experiments". *Developmental Review*. **9** (1): 58–63. doi:10.1016/0273-2297(89)90023-3. ISSN 0273-2297.
8. "Sully, James", *The SAGE Encyclopedia of Children and Childhood Studies*, Thousand Oaks, CA:SAGE Publications, Inc., 2020, doi:10.4135/9781529714388.n567, ISBN 978-1-4739-4292-9, S2CID 241133576, retrieved 2020-11-15
9. Freud, Sigmund (1971) [1905]. "Chapter II: Infantile sexuality. (2). The manifestations of infantile sexuality". *Three essays on the theory of sexuality*. doi:10.1037/e417472005-178.
10. Montessori, Maria, *Play Is The Work of the Child*, doi:10.1037/e555792011-001, retrieved 2020-11-15
11. Sacco, Rob G. (2013-03-28). "Re-Envisaging the Eight Developmental Stages of Erik Erikson: The Fibonacci Life-Chart Method (FLCM)". *Journal of Educational and Developmental Psychology*. **3** (1). doi:10.5539/jedp.v3n1p140. ISSN 1927-0534.
12. Slavin, Robert E. (2018). *Educational Psychology: Theory and Practice*. New York, NY: Pearson Education Inc. pp. 33–35. ISBN 978-0134524283.



संवेगात्मक विकास (Emotional development)

डॉ० कुमारी सुनीता सिंह
प्रिंसिपल

मुण्डेश्वरी कॉलेज फॉर टीचर एजुकेशन, पटना

परिचय (Introduction)

“संवेग” शब्द को 19वीं शताब्दी से ही एक मनोवैज्ञानिक श्रेणी और व्यवस्थित जांच के लिए एक विषय का नाम दिया गया है। इससे पहले, प्रासंगिक मानसिक अवस्थाओं को "भूख," "जुनून," "स्नेह," या "भावनाओं" के रूप में वर्गीकृत किया गया था। अंग्रेज़ी शब्द "Emotion" 17वीं शताब्दी से अंग्रेज़ी में मौजूद है, इसकी उत्पत्ति फ्रांसीसी इमोशन के अनुवाद के रूप में हुई है, जिसका अर्थ शारीरिक गड़बड़ी है। यह 18वीं शताब्दी से अंग्रेज़ी में बहुत व्यापक उपयोग में आया, अक्सर मानसिक अनुभवों को संदर्भित करने के लिए, निम्नलिखित शताब्दी में एक पूर्ण सैद्धांतिक शब्द बन गया, विशेष रूप से दो स्कॉटिश दार्शनिक-चिकित्सकों, थॉमस ब्राउन और चार्ल्स बेल के प्रभाव के माध्यम से। यह लेख इस बौद्धिक और अर्थ संबंधी इतिहास को एक वैज्ञानिक शब्द के रूप में "भावना" की उपयोगिता और अर्थ के बारे में समकालीन बहस से जोड़ता है। मनुष्य अपनी रोजाना की जिन्दगी में सुख, दुख, भय, क्रोध, प्रेम, घृणा आदि का अनुभव करता है। वह ऐसा व्यवहार किसी उत्तेजनावश करता है। यही अवस्था संवेग कहलाती है। संवेग व्यक्ति की उत्तेजित दशा है। उत्तेजना, उथल, पुथल आदि संवेग के प्रकार हैं। संवेग एक व्यक्तिपरक अनुभव है। यह एक सचेत मानसिक प्रतिक्रिया है।

संवेग का अर्थ (Meaning of emotion) - संवेग शब्द का वास्तविक अर्थ है वेग से युक्त अर्थात् जब व्यक्ति वेगवान होकर कार्य करता है तो उसे संवेग कहते हैं। अंग्रेज़ी भाषा में संवेग को (**emotion**) कहते हैं। “ए” का अर्थ अंदर से है तथा (**Motion**) का अर्थ गति है। **Emotion** शब्द ‘**Emovere**’ से बना है, जिसका अर्थ है-उत्तेजित होना। इस प्रकार संवेग की स्थिति में व्यक्ति उत्तेजित हो जाता है और उसका व्यवहार असामान्य हो जाता है। संवेग व्यक्ति के वैयक्तिक तथा आन्तरिक अनुभव हैं। प्रत्येक व्यक्ति सुख, दुःख, पीड़ा तथा क्रोध का अनुभव करता है। जब तक ये अनुभव अपने साधारण रूप में रहते हैं, तब इन्हें राग या भाव (**feeling**) कहा जाता है, परन्तु जब किसी विशेष कारण या घटना से राग या भाव उग्र रूप धारण कर लेते हैं, तो उन्हें संवेग (**Emotion**) कहा जाता है। अतः अंग्रेज़ी के इमोशन शब्द का अर्थ आंतरिक भावों को बाहर की ओर गति देने से है। हिन्दी शब्द में संवेग का तात्पर्य भी वेग के साथ कार्य करने से है।

संवेग की परिभाषाएँ (Definitions of Emotion) - विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने संवेगों को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है -

1. **किम्बाल यंग के अनुसार**, “संवेग प्राणी की उत्तेजित, मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक दशा है, जिसमें शारीरिक क्रियाएँ तथा भावनाएँ एक निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए स्पष्ट रूप से बढ़ जाती हैं।”
2. **टी० पी० नन के अनुसार**, संवेग सम्पूर्ण प्राणी का वह मूलतः मनोवैज्ञानिक तीव्र विघ्न डालने वाला व्यवहार है, जिसमें चेतना, अनुभूति, व्यवहार तथा अन्तरावयव की क्रियाएँ शामिल रहती हैं।”
3. **वुडवर्थ के अनुसार**, “संवेग, प्राणी की उत्तेजित अथवा उद्वेग अवस्था है। यह अनुभूति की उस रूप में उत्तेजित अवस्था है, जिसमें व्यक्ति स्वयं अनुभव करता है। यह पेशीय तथा ग्रन्थीय क्रिया की गड़बड़ी है, जैसा कि बाहर से प्रतीत होता है।”

4. जेम्स ईवर के अनुसार, “संवेग शरीर की जटिल अवस्था है, जिसमें श्वास लेना नाड़ी, ग्रन्थियाँ, उत्तेजना, मानसिक दशा तथा अवरोध आदि का अनुभूति पर प्रभाव पड़ता है एवं मांसपेशियाँ एक विशेष व्यवहार करने लगती हैं।”

5. जर्सिल्ड के अनुसार, “संवेग शब्द किसी भी प्रकार से आवेग में आने, भड़क उठने अथवा उत्तेजित होने की दशा को सूचित करता है।”

संवेगों के प्रकार (Types of Emotions)

1. सकारात्मक संवेग (Positive Emotion) – ये सुखकर होते हैं जैसे-प्रेम, हर्ष, आनन्द, स्नेह, उल्लास आदि ।

2. नकारात्मक संवेग (Negative Emotion) – ये कष्टकर या दुखदायी होते हैं। जैसे-भय, क्रोध, चिन्ता, कष्ट, ईर्ष्या आदि ।

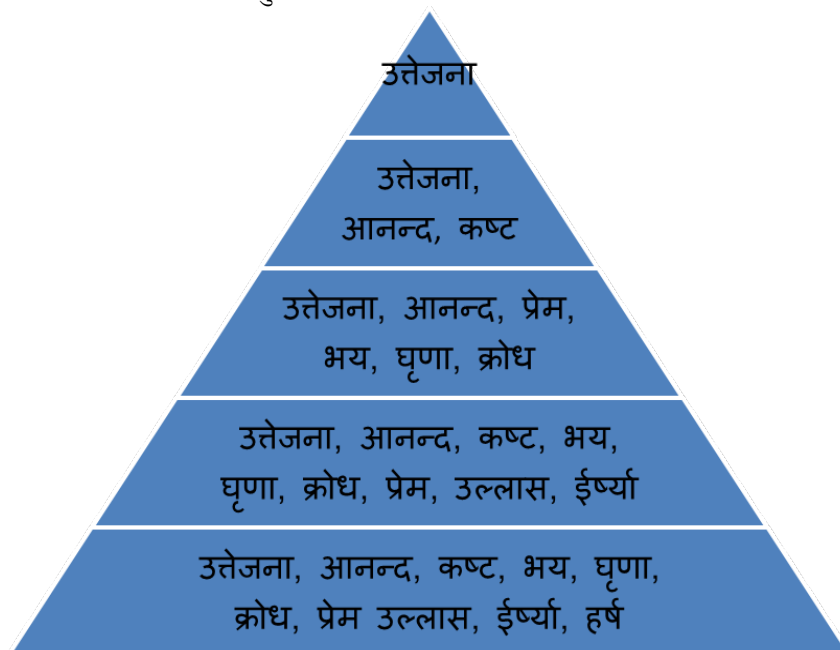
मूल प्रवृत्ति का संवेग से सम्बन्ध -

संवेग के तुरन्त बाद में होने वाली क्रिया ही मूल प्रवृत्ति (Instinct) कहलाती है अर्थात् पहले संवेग तथा बाद में मूल प्रवृत्ति होती है। मूल प्रवृत्ति के जन्मदाता मैकडूगल हैं।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विलियम मैकडूगल एवं गिलफोर्ड (William McDougall and Guildford) ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण संवेग भय को बताया है, एक बालक में कुल 14 संवेग बताए हैं, जो निम्न हैं-

संवेग (Emotion)	मूल प्रवृत्ति (Instinct)	संवेग (Emotion)	मूल प्रवृत्ति (Instinct)
भय (Fear)	पलायन (Escape)	क्रोध (Anger)	युयुत्सा (Combat)
वात्सल्य (Tenderness)	सन्तान कामना (Parental)	अधिकार (Ownership)	संग्रहण (Acquisition)
आत्महीनता (Negative self-Feeling)	दैन्य (Submission)	आमोद (Amusement)	हास्य (Laughter)
भूख (Hunger)	भोजनान्वेषण (Food seeking)	कृति भाव (Creativeness)	रचनात्मकता (Construction)
घृणा (Dignest)	निवृत्ति (Repulsion)	कामुकता (Laust)	कामवृत्ति (Sex)
आत्माभिमान (Positive self-Feeling)	आत्मगौरव (Self Assertion)	एकांकीपन (Lonliness)	सामूहिकता (Gregariousren)
आश्चर्य (Wonder)	जिज्ञासा (Curiosity)	कष्ट/करुणा (Distress)	संवेदना/शरणागति (Appeal)

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ब्रिजेज के अनुसार बालक का संवेगात्मक विकास.



संवेग की विशेषताएँ (Characteristics of Emotion) -

संवेग की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर संवेग की निम्नांकित विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है-

1. **भावनाओं से सम्बन्धित (Related to emotion)**- डॉ० जायसवाल के अनुसार, “संवेगों का सम्बन्ध भावनाओं और वृत्तियों से होता है। बिना भावना के संवेग सम्भव नहीं है। भावनाएँ एक प्रकार से संवेगों की पृष्ठभूमि है अथवा संवेगों के गर्भ में भावनाओं का ही बल है। वास्तव में भावात्मक प्रवृत्ति का बड़ा हुआ रूप ही संवेग है।
2. **वैयक्तिकता (Individuality)**- संवेग की अन्य विशेषता उसका वैयक्तिक होना है। एक ही परिवेश में दो व्यक्ति भिन्न-भिन्न संवेगों का अनुभव करते हैं और उनकी प्रतिक्रियाएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। उदाहरण के लिए-एक रोती हुई महिला को देखकर एक व्यक्ति दया से द्रवित हो जाता है, तो दूसरा व्यक्ति उसे ढोंगी समझकर उससे घृणा करने लगता है।
3. **तीव्रता (Intensity)** - संवेग की अनुभूति अत्यन्त तीव्र होती है। संवेग को यदि एक प्रकार का उद्वेग कहा जाए तो अनुचित नहीं है। वे व्यक्ति की मनःस्थिति को तीव्रता के कारण अस्त-व्यस्त कर देते हैं, परन्तु इनकी तीव्रता में अन्तर भी होता है। एक शिक्षित व्यक्ति में अशिक्षित व्यक्ति की अपेक्षा संवेग की तीव्रता कम होती है, क्योंकि शिक्षित व्यक्ति अपने संवेगों पर नियन्त्रण करना सीख जाता है।
4. **व्यापकता (Prevalence)** - संवेग वैयक्तिक होते हुए भी सर्वानुभूति और सर्वव्यापक होते हैं। संवेगों का अनुभव समस्त प्राणी करते हैं। स्टाउट के अनुसार, “निम्न श्रेणी के प्राणियों से लेकर उच्चतर प्राणियों तक एक ही प्रकार के संवेग पाये जाते हैं।” अन्तर केवल मात्रा का होता है। किसी को क्रोध अधिक आता है और किसी को कम।
5. **स्थानान्तरण (Transfer)** - प्रायः संवेग स्थानान्तरित हो जाते हैं। यदि कोई अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारी पर क्रोधित हो जाता है और उसी दशा में यदि कर्मचारी का कोई साथी उसे छेड़ दे तो वह अपने साथी पर क्रोधित होने लगता है।
6. **संवेगात्मक सम्बन्ध (Emotional Connection)** - संवेग का सम्बन्ध किसी व्यक्ति, वस्तु या विचार से सम्बद्ध होता है। हम किसी व्यक्ति या विचार के प्रति ही क्रोध या घृणा करते हैं। दूसरे शब्दों में, संवेग का कोई-न-कोई आधार अवश्य होता है।
7. **सुख और दुःख की भावना (Feeling of Happiness and sadness)** - संवेग में किसी-न-किसी रूप में सुख या दुःख का भाव निहित रहता है। जब हम किसी वस्तु को देखकर भयभीत होते हैं तो उसमें दुःख का भाव निहित होता है। जब हम आशा करते हैं तो उसमें सुख की अनुभूति रहती है। स्टाउट के अनुसार, “अपनी विशेष भावना के अतिरिक्त संवेग में निःसन्देह रूप से सुख या दुःख की भाँघना होती है।”
8. **बाह्यशारीरिक परिवर्तन (External Physical Changes)** - संवेगात्मक अवस्था में हमारे शरीर में जो बाह्य परिवर्तन होते हैं, वे इस प्रकार हैं-भय या क्रोध में शरीर का काँपना, पसीना आना, रोंगटे खड़े होना, आँखों में लाली छाना या आँसू निकलना, प्रसन्नता में मुस्कराना या हँसना आश्चर्य के समय आँखों का खुला रह जाना।
9. **आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन (Internal Physical Changes)** - संवेगात्मक अनुभूति के समय शरीर में आन्तरिक परिवर्तन भी होते हैं; जैसे-हृदय की धड़कन तीव्र होना, क्रोध की दशा में, पेट में पाचक रस निकलना बन्द होना तथा भोजन की पाचन की सम्पूर्ण प्रक्रिया का अस्त-व्यस्त हो जाना।
10. **व्यवहार में परिवर्तन (Change in Behaviour)** - संवेगात्मक दशा में व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। क्रोध से ओत-प्रोत व्यक्ति का व्यवहार उसके सामान्य व्यवहार से पूर्णतया भिन्न हो जाता है।
11. **मानसिक तनाव (Mental Tension)** - संवेग की अवस्था में हम एक प्रकार की उत्तेजना, आवेग और मानसिक तनाव का अनुभव करते हैं।
12. **शक्ति का लोप (Loss of Power)** - संवेग के कारण हमारी चिन्तन-शक्ति का लोप हो जाता है और संवेगात्मक अवस्था में अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं रहता। उदाहरण के लिए-क्रोध के वशीभूत होकर व्यक्ति हत्या तक कर देता है।
13. **स्थिरता की प्रवृत्ति (The Trend of Stability)** - संवेग की प्रवृत्ति में स्थिरता होती है। अपने प्रिय की मृत्यु का दुःख पर्याप्त काल तक हमारे मन में रहता है। इसी प्रकार जब हम किसी पर क्रोधित होते हैं तो पर्याप्त काल तक उसका प्रभाव हमारे मन पर छाया रहता है। उसके सामने आने पर हमारा क्रोध फिर भड़क उठता है।
14. **क्रियात्मक प्रवृत्ति का होना (Active Nature)**- जिस समय हम संवेग का अनुभव करते हैं, तो उस समय कुछ-न-कुछ क्रिया अवश्य होती है। उदाहरण के लिए-जब हम कोई घृणास्पद वस्तु को देखते हैं तो तुरंत ही हम अपना मुख उसकी ओर से फेर लेते हैं। इसी प्रकार क्रोधित होने पर हम अपने हाथ मलते या दांत किटकिटाने लगते हैं।
 - **संवेगात्मक विकास (Emotional development)** -संवेगात्मक विकास मानव जीवन के विकास व उन्नति के लिए आवश्यक है। यह विकास मानव जीवन को बहुत प्रभावित करता है व उसी से उसके

व्यक्तित्व निर्माण में सहायता मिलती है। जब व्यक्ति अपने संवेगों जैसे भय, क्रोध, प्रेम आदि का सही प्रकाशन करना सीख लेता है, तो उसे संवेगात्मक विकास कहते हैं।

जीवन में संवेगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है तथा व्यक्ति के वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास में संवेगों का योगदान होता है। लगातार संवेगात्मक असन्तुलन/अस्थिरता व्यक्ति के वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करती है तथा अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करती है।

दूसरी ओर संवेगात्मक रूप से स्थिर व्यक्ति खुशहाल, स्वस्थ एवं शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। अतः संवेग व्यक्ति के व्यक्तित्व के सभी पक्षों को प्रभावित करते हैं।

संवेगात्मक विकास का सिद्धांत (Principle of emotional development) - बालकों में संवेगात्मक विकास की प्रक्रिया महत्वपूर्ण होती है। संवेगों के द्वारा बालक अपने जीवन में समायोजित ढंग से व्यवहार करता है। किन्तु संवेगात्मक अस्थिरता के कारण बालक का समायोजन दोषपूर्ण हो जाता है। किन्तु इस तथ्य पर मनोवैज्ञानिकों में मतभेद है कि बालक में संवेगों की उत्पत्ति किस आयु में होती है, और इनके विकास की प्रक्रिया किस प्रकार की है अर्थात् बालक में संवेग की उत्पत्ति कब होती है? तथा किस प्रकार बालक को किसी संवेग की अनुभूति होती है?

उक्त तथ्यों की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने विचारों का वर्णन सैद्धांतिक रूप से किया है। संवेगात्मक उद्भव एवं विकास के सिद्धांतों का वर्णन निम्नलिखित हैं--

1. संवेग का दैहिक सिद्धांत (Somatic Principle of Emotion) -

संवेग के दैहिक सिद्धांत का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक जेम्स लैंग द्वारा किया गया है। इस सिद्धांत को मुख्य रूप से दैहिक परिवर्तन का सिद्धांत भी कहा जाता है। दैहिक सिद्धांत वास्तव में अमेरिकी मनोविज्ञानिक जेम्स एवं डेनमार्क के मनोवैज्ञानिक लैंग के विचारों का समन्वित स्वरूप है। इस सिद्धांत के अनुसार संवेगात्मक अवस्था में बालक के शरीर में परिवर्तन होता है। भौतिक वातावरण में उपस्थित उद्दीपक बालक में एक प्रकार की भावात्मक मानसिक दशा उत्पन्न करते हैं जिसके परिणामस्वरूप बालक की दैहिक संरचना में परिवर्तन उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार उत्पन्न दैहिक परिवर्तन से संवेगात्मक अवस्था की उत्पत्ति होती है।

संवेग के दैहिक सिद्धांत के अनुसार- संवेगावस्था उत्पन्न होने के पहले बालक में दैहिक (शारीरिक) परिवर्तन का घटित होना स्वाभाविक है। उदाहरणार्थ जब बालक किसी भयावह उद्दीपक (जैसे-साँप, शेर, आग) को देखता है, तो इस उद्दीपक को देखने से बालक में एक विशिष्ट भावात्मक दशा का जन्म होता है जो उस भयावह उद्दीपक से बालक को दूर भागने की क्रिया करवाती है। बालक द्वारा भागने की क्रिया एक प्रकार का शारीरिक परिवर्तन है जिसके कारण बालक में भयपूर्ण या डरावनी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो 'भय' नामक संवेग की उत्पत्ति में आधार प्रदान करती है।

2. संवेग का केन्द्रीय सिद्धांत (Central Principle of Emotion) -

संवेग के केन्द्रीय सिद्धांत का प्रतिपादन दो मनोवैज्ञानिकों कैनेन एवं बार्ड द्वारा किया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार संवेग उत्पत्ति का कारण प्रमस्तिष्क का हाइपोथैलेमस भाग होता है जो कि केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में अवस्थित होता है। इस सिद्धांत को हाइपोथैलेमिक या थैलेमिक सिद्धांत के नाम से भी जाना जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार सांवेगिक परिवर्तन तथा सांवेगिक अनुभूति दोनों बालकों में या प्राणी में एक साथ घटित होते हैं न कि सांवेगिक परिवर्तन (व्यवहार) पर सांवेगिक अनुभूति निर्भर करती है।

संवेग के केन्द्रीय सिद्धांत के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक **मार्गन, किंग एवं स्कोपलर का कथन है कि,** "संवेग के केन्द्रीय सिद्धांत के अनुसार संवेग में होने वाली शारीरिक प्रतिक्रियाएं एवं अनुभव किया गया संवेग दोनों एक-दूसरे से स्वतंत्र होते हैं और दोनों की उत्पत्ति एक साथ होती है। इस सिद्धांत के अनुसार प्राणी में संवेगों की उत्पत्ति निम्न प्रक्रियाओं का परिणाम होता है--

1. संवेग की उत्पत्ति के लिए किसी उद्दीपक एवं ज्ञानेन्द्रिय उत्तेजन आवश्यक है।
2. ज्ञानेन्द्रियों से स्नायु आवेग हाइपोथैलेमस से होता हुआ प्रमस्तिष्क बल्क में पहुँचता है।
3. प्रमस्तिष्क बल्क हाइपोथैलेमस पर से अपना नियंत्रण कम कर देता है और कुछ विशेष परिस्थिति में ऐसे स्नायु आवेग को भी हाइपोथैलेमस में भेजता है जिसकी उत्पत्ति विकल्प रूप में हुई होती है। इस प्रकार हाइपोथैलेमस पूर्णरूप से सक्रिय हो जाता है।
4. हाइपोथैलेमस के सक्रिय होने पर स्नायु आवेग दोनों दिशाओं अर्थात् ऊपर प्रमस्तिष्क बल्क एवं नीचे आंतरिक अंगों व बाहरी शारीरिक अंगों की ओर एक साथ जाते हैं। स्नायु आवेग के प्रमस्तिष्क बल्क में पहुँचने से संवेग की उत्पत्ति होती है और जब स्नायु आवेग आंतरिक अंगों एवं माँसपेशियों में पहुँचता है तो संवेगात्मक व्यवहार या शारीरिक परिवर्तन होता है।

अतः संवेगात्मक व्यवहार एवं संवेगों की उत्पत्ति विषयक यह सिद्धांत अधुनिक समय में संवेग का प्रमुख सिद्धांत माना जाता है। इस सिद्धांत का सारभूत तथ्य यह है कि मस्तिष्क का हाइपोथैलमस या थैलमस भाग ही संवेगों की उत्पत्ति का केंद्र बिन्दु है।

3. संवेग का जैविकीय सिद्धांत (Biological Principle of Emotion) -

संवेग के जैविकीय सिद्धांत का प्रतिपादन प्रसिद्ध व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक जे. बी. वाटसन के द्वारा किया गया है। इस सिद्धांत के अंतर्गत प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वाटसन ने अपने प्रायोगिक अध्ययनों से स्पष्ट किया है कि जन्म के समय शिशुओं में भय, क्रोध एवं प्रेम नामक तीन मौलिक संवेग पाये जाते हैं। इन्हीं तीन मौलिक संवेगों से अन्य संवेगों की उत्पत्ति व विकास होता है। वाटसन ने अपना प्रयोग कुछ नवजात शिशुओं एवं कुछ माह के बच्चों पर प्रयोग करके अपने उक्त तथ्य की पुष्टि की। भय, संवेग के प्रगटीकरण के लिए भयावह उद्दीपकों यथा तीव्र आवाज, डरावनी वस्तुओं का प्रयोग वाटसन ने किया। परिणामतः निरीक्षण किया गया कि तीव्र आवाज होने से शिशु का सांस लेना, रोना, चिल्लाना, हाथ-पैर पटकना आदि सभी शिशुओं में नहीं पायी जाती, जिसकी पुष्टि इन्होंने अपने अध्ययन परिणामों से की है। इराविन्द ने अपने अध्ययनों से स्पष्ट की कि सभी शिशुओं में भयावह उद्दीपक के प्रति भयपूर्ण प्रतिक्रिया नहीं पायी जाती है। मैलजैक ने अपने अध्ययन से स्पष्ट किया कि शिशुओं में मौलिक संवेग जन्म से नहीं पाये जाते बल्कि शिशुओं में जन्म के समय एक प्रकार की सामान्य उत्तेजना विद्यमान रहती है।

4. संवेग का विकासवादी सिद्धांत (Principle of Emotion)-

संवेग के विकासवादी सिद्धांत के अंतर्गत मुख्य रूप से मनोवैज्ञानिक ब्रिजेज एवं बनहम द्वारा शिशुओं पर किये गये प्रयोग उल्लेखनीय हैं। इन सिद्धांतवादियों के अनुसार जन्म के समय बालक (शिशु) में किसी प्रकार का संवेग उपस्थित नहीं होता बल्कि शिशु में केवल सामान्य उत्तेजना ही विद्यमान रहती है। शिशु में संवेगात्मक प्रतिक्रियाएं तीन माह की अवधि से विकसित होती हैं। इस समय शिशु को कष्ट एवं आनन्द की अनुभूति होती है जिसके कारण बालक द्वारा की गयी प्रतिक्रियाओं रोने, चिल्लाने आदि से माँसपेशीय तनाव की उत्पत्ति होती है। शिशु अपनी पेशीय लोचकता के कारण मुस्कुराने की प्रतिक्रिया करता है। 6 माह की अवधि में कष्ट नामक संवेग से भय, घृणा एवं क्रोध संवेगों की उत्पत्ति होती है। एक वर्ष की अवस्था के शिशुओं में उल्लास एवं वयस्कों के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है। डेढ़ वर्ष की आयु में ब्रिजेज के अनुसार बालक में अन्य बालकों के प्रति प्रेम एवं घृणा की उत्पत्ति होती है और दो वर्ष की अवधि में बालक में खुशी (आनन्द) संवेग की उत्पत्ति हो जाती है।

इस प्रकार सभी महत्वपूर्ण संवेगों की उत्पत्ति बालक में 2 वर्ष की आयु तक हो जाती है। सभी संवेगों की उत्पत्ति एवं विकास परिपक्वता एवं अभिगम का परिणाम होता है। इन्हीं के आधार पर संवेगों एवं संवेगात्मक व्यवहारों में परिवर्तन परिवर्द्धन एवं परिमार्जन होता रहता है।

- **संवेगात्मक विकास की अवस्थाएँ (Stages of Emotional development)-** संवेगात्मक विकास मानव जीवन के विकास व उन्नति के लिए आवश्यक है। यह विकास मानव जीवन को बहुत प्रभावित करता है व उसी से उसके व्यक्तित्व निर्माण में सहायता मिलती है। जब व्यक्ति अपने संवेगों जैसे भय, क्रोध, प्रेम आदि का सही प्रकाशन करना सीख लेता है, तो उसे संवेगात्मक विकास कहते हैं।

शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास (Emotional Development in Infancy)-

- शिशुओं का संवेगात्मक विकास धीरे-धीरे अस्पष्टता की ओर होता है।
 - विशिष्ट संवेग मन्द गति के स्वाभाव के साथ जुड़ता है।
- शारीरिक आयु के साथ-साथ संवेगात्मक विकास में तीव्रता होती है
- शैशवावस्था में मुख्यतया भय, क्रोध व प्रेम आदि तीन ही संवेगों का विकास होता है।
 - शिशु थोड़ी-थोड़ी देर में अपने संवेगों को बदलते रहते हैं। वो कभी रोता है, कभी हंसता है और कभी-कभी दोनों का प्रकटीकरण साथ-साथ ही करने लगता है।
 - शैशवावस्था के अन्तिम चरण में वातावरण संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने लगता है।

बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास (Emotional Development in Childhood)-

- इस अवस्था में संवेगों में स्थायित्व आना प्रारम्भ हो जाता है।
- बालक संवेग व समाज के नियमों में समायोजन करने लगता है।
- वह प्रत्येक क्रिया के प्रति प्रेम, ईर्ष्या, घृणा व प्रतिस्पर्धा की भावना प्रकट करने लगता है।
- माता-पिता द्वारा बताये कार्य के प्रति वह हां या न कहकर चुप रहता और बाद में अपने को उपेक्षा से बचाता है।
- इस अवस्था के अन्तिम चरणों में वह संवेगों पर नियन्त्रण करना सीख जाता है।

किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास (Emotional Development in Adolescence)

किशोरावस्था में प्रवेश करने पर किशोर / किशोरी से अनुशासित जीवन व्यतीत करने की आशा की जाती है, पर परिणाम ठीक इसके विपरीत होता है। हम उन्हें न तो बालकों की कोटि में रखते हैं न बड़ों की कोटि में। इस अवस्था में सबसे अधिक संवेगात्मक अस्थिरता पाई जाती है।

- किशोर / किशोरी में प्रेम, दया, क्रोध, सहानुभूति आदि संवेग स्थायी रूप धारण कर लेते हैं। वह इन पर नियन्त्रण नहीं रख पाता। अतः सामान्यतः अन्यायी व्यक्ति के प्रति क्रोध व दुखी व्यक्ति के प्रति दया की अभिव्यक्ति करता है।

- किशोर / किशोरी की शारीरिक शक्ति की उनके संवेगों पर छाप होती है। जैसे सबल व स्वस्थ किशोर में संवेगात्मक स्थिरता व निर्बल व अस्वस्थ किशोर में संवेगात्मक अस्थिरता पाई जाती है

- किशोर / किशोरी अनेको बातों के बारे में चिन्तित रहते हैं। उदाहरणार्थ- अपनी आकृति, स्वास्थ्य, सम्मान, धन प्राप्ति, शैक्षिक प्रगति, सामाजिक सफलता आदि।

- किशोर न तो बालक समझा जाता है न प्रौढ़। अतः उसे अपने संवेगात्मक जीवन में वातावरण से अनुकूलन में बहुत कठिनाई होती है। यदि वह अपने प्रयास में असफल रहता है, तो उसे घोर निराशा होती है। ऐसी स्थिति में वो कभी-कभी घर से भाग जाता है या आत्महत्या तक का शिकार हो जाता है।

- किशोरावस्था में असाधारण रूप से शारीरिक व मानसिक परिवर्तन होते हैं। किशोर और किशोरी दोनों में काम प्रवृत्ति इतनी तीव्र होती है जो कि उसके संवेगात्मक व्यवहार पर बहुत अधिक प्रभाव डालती है।

- किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास इतना विचित्र होता है कि किशोर / किशोरी एक ही परिस्थिति में विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार का व्यवहार करते हैं। जो परिस्थिति एक अवसर पर उन्हें उल्लास से भर देती है, वही परिस्थिति दूसरे अवसर पर उसे खिन्न कर देती है।

संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक (Factors influencing emotional development) - बालक के संवेगात्मक विकास को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं।

1. शारीरिक स्वास्थ्य (Physical Health) - शारीरिक स्वास्थ्य का संवेगों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जो बालक सबल और स्वस्थ होते हैं, उनमें संवेगात्मक स्थिरता निर्बल और अस्वस्थ बालकों की अपेक्षा अधिक होती है। क्रो एवं क्रो के अनुसार, “बालक के स्वास्थ्य का उसकी संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।”

2. मानसिक विकास (Mental Health) - जिन बालकों का मानसिक विकास पर्याप्त हो जाता है, उनमें संवेगात्मक स्थिरता पायी जाती है। निम्न मानसिक विकास विकास के बालक की अपेक्षा प्रतिभाशाली बालक अपने संवेगों पर सफलता से नियन्त्रण स्थापित कर लेता है।

3. थकान (Fatigue) - थकान का संवेगात्मक विकास पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जब बालक थका हुआ होता है तो वह शीघ्र क्रोध और चिड़चिड़ेपन का शिकार हो जाता है।

4. परिवार का वातावरण (Environment of Family) - जिस परिवार के सदस्य अत्यधिक, आर्थिक संवेदनशील होते हैं, उस परिवार के बालक भी उसी प्रकार से, संवेदनशील हो जाते हैं। इसी प्रकार यदि परिवार का वातावरण उल्लासमय, सुखद तथा शान्तिपूर्ण रहता है, तो बालक पूर्ण सुरक्षा का अनुभव करता है और उसका संवेगात्मक विकास सन्तुलित रूप से होता है।

5. माता-पिता के आचरण और व्यवहार (Behaviour and conduct of Parents) - माता-पिता के आचरण तथा व्यवहार का बालक के संवेगात्मक विकास पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। जो माता-पिता अपने बालकों की उपेक्षा करते हैं या आवश्यकता से अधिक उनको लाड़-प्यार करते हैं तथा उन्हें इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता नहीं देते, उनका यह आचरण बालकों के अवांछनीय संवेगात्मक विकास में योग प्रदान करता है।

6. सामाजिक मान्यता (Social Beliefs) - क्रो एवं क्रो के अनुसार, “यदि बालक को अपने कार्यों की सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं होती तो उनके संवेगात्मक व्यवहार में उत्तेजना या शिथिलता आ जाती है। उदाहरण के लिए— यदि एक बालक स्वयं करि बनाता है, परन्तु उस कविता को जन-समुदाय पसन्द नहीं करता तो बालक निराशा और कुण्ठा से ग्रसित हो जाता है।

7. आर्थिक स्थिति (Economic Status) - आर्थिक स्थिति बालकों के संवेगों को प्रभावित करती है। एक निर्धन बालक में अनेक अवांछनीय संवेग स्थायी हो जाते हैं। धनी परिवारों के बालक की वेशभूषा तथा रहन-सहन देखकर निर्धन परिवार के बालक में द्वेष और ईर्ष्या के संवेग प्रबल रूप धारण कर लेते हैं।

8. अभिलाषा (Ambition) - प्रत्येक बालक कोई-न-कोई अभिलाषा रखता है। कोई महान् कवि बनना चाहता है तो कोई डॉक्टर या इंजीनियर परन्तु, जब परिस्थितियाँ प्रतिकूल होती हैं और बालक की अभिलाषाएँ पूरी नहीं हो पाती हैं, तो वह निराशा में डूब जाता है। यह निराशा संवेगात्मक तनाव की जनक होती है।

9. विद्यालय का वातावरण (Environment of School) - परिवार के पश्चात् विद्यालय ही वह स्थान है, जो बालकों की भावनाओं को सबसे अधिक प्रभावित करता है। बालक विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से संवेगों की अभिव्यंजना करता है। यदि विद्यालय में विभिन्न क्रियाओं का आयोजन इस ढंग से किया जाता है कि बालक अपनी अभिव्यक्ति, इच्छा और रुचियों के अनुकूल कर सके, तो उन्हें आनन्द और उल्लास का अनुभव होता है। परिणामस्वरूप उनके संवेगों का स्वस्थ विकास होता है। इसके विपरीत यदि विद्यालय में आतंक, भय तथा पक्षपात का वातावरण होता है, तो बालक उत्तेजना, क्रोध तथा घृणा से ग्रसित हो जाते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)-

संवेग व्यक्ति के आवेश को प्रदर्शित करता है। भय, क्रोध, घृणा, वात्सल्य, करुणा, आश्चर्य कुछ प्रमुख संवेग हैं। संवेगों का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। घनात्मक संवेग व्यक्ति के व्यवहार को परिपूर्ण बनाते हैं। संवेग की स्थिति में विचार प्रक्रिया में शिथिलता आ जाती है। संवेग मूलप्रवृत्तियों से सम्बन्धित होते हैं। शैशवावस्था में संवेगात्मक व्यवहार प्रायः अस्थिर होता है, जो बाल्यावस्था में स्थिरता की ओर अग्रसर होने लगता है। किशोरावस्था में संवेग प्रायः अधिक उग्र होते हैं। वंशानुक्रम, स्वास्थ्य, मानसिक योग्यता, पारिवारिक वातावरण आदि कारक संवेगात्मक विकास को प्रभावित करते हैं। शिक्षा के द्वारा संवेगों का परिमार्जन किया जा सकता है। अध्यापकगण तथा अभिभावकगण उचित सावधानी पूर्वक बालक - बालिकाओं के संवेगात्मक विकास को सही दिशा दे सकते हैं। संवेगात्मक विकास मानव विकास का एक मूलभूत पहलू है जिसमें भावनाओं को पहचानने, समझने, व्यक्त करने और नियंत्रित करने की क्षमता शामिल है। बचपन से लेकर वयस्कता तक, व्यक्ति संवेगात्मक विकास के विभिन्न चरणों से गुजरता है, जो आनुवंशिक, जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों से प्रभावित होता है। सुरक्षित लगाव, प्रभावी संचार और सहायक वातावरण स्वस्थ संवेगात्मक विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भावनात्मक विकास को समझकर और उसका पोषण करके, माता-पिता, शिक्षक, स्वास्थ्य सेवा पेशेवर और समुदाय व्यक्तियों को जीवन की चुनौतियों का सामना करने, सार्थक संबंध बनाने और भावनात्मक और सामाजिक रूप से पनपने के लिए सशक्त बना सकते हैं। अंततः, भावनात्मक कल्याण को प्राथमिकता देना जीवन भर लचीलापन, सहानुभूति और समग्र मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है।

संदर्भ (Reference)

- <https://www.sarthaks.com/3108668/>
- Eisenberg, N., & Damon, W. (Eds.). (2006). Handbook of child psychology: Vol. 3. Social, emotional, and personality development (6th ed.). Wiley.
- Thompson, R. A. (2015). Social-emotional development in early childhood: What every policymaker should know. National Center for Children in Poverty.
- Denham, S. A. (2006). Social-emotional competence as support for school readiness: What is it and how do we assess it? Early Education and Development, 17(1), 57-89.
- Gottman, J. M., Katz, L. F., & Hooven, C. (1996). Meta-emotion: How families communicate emotionally. Lawrence Erlbaum Associates, Inc.
- Shonkoff, J. P., & Phillips, D. A. (Eds.). (2000). From neurons to neighborhoods: The science of early childhood development. National Academies Press.



Understanding Emotional Development: From Infancy to Adulthood

Shumila fatma Naqvi

Research Scholar

Institute of Education Research

Shri Ram Swaroop Memorial University

Lucknow

Introduction:

Emotional development is the growth of a person's ability to understand, express, and manage emotions. It involves recognizing and labeling emotions, regulating their intensity, and forming healthy relationships. This process is influenced by biological, psychological, and environmental factors and is crucial for overall well-being and successful social interactions.

Emotional development encompasses the progression and maturation of an individual's capacity to perceive, convey, comprehend, and manage emotions, spanning from infancy to adulthood. This multifaceted process is shaped by both biological predispositions and environmental experiences, it stands as a pivotal facet of human growth, evolving alongside neurological, cognitive, and behavioral transformations.

According to Dr. Lisa Feldman Barrett, pioneering researcher on the nature of emotion - "Emotional development is a two-way street - not only do our experiences shape our emotions, but our emotions also shape how we experience the world. This dynamic interplay is what makes us uniquely human."

❖ **Nature of Emotional Development:**

Emotional development involves understanding, expressing, and managing emotions. It's a dynamic process influenced by social interactions, environment, and cognition.

❖ **Characteristics of Emotional Development:**

1. **Recognition of Emotions:** Identifying and labeling one's own and others' emotions.
2. **Expression of Emotions:** Learning to express emotions healthily.
3. **Emotional Regulation:** Managing and controlling emotional responses effectively.
4. **Empathy and Social Skills:** Developing empathy and building strong relationships.
5. **Emotional Intelligence:** Understanding and navigating complex emotional situations.

❖ **Importance of Emotional Development:**

1. **Social Relationships:** Crucial for forming and maintaining healthy connections.
2. **Emotional Intelligence:** Essential for effective communication and empathy.
3. **Mental Well-being:** Contributes to resilience and coping mechanisms.
4. **Academic Success:** Linked to social interactions and cognitive abilities.
5. **Behavioral Patterns:** Shapes constructive and adaptive responses to situations.

❖ **Theoretical framework of Emotional Development:**

These theories contribute to our understanding of emotional development.

1. **Piaget's Stages of Cognitive Development:**

Piaget's theory emphasizes the interplay between cognitive development and emotional development. According to Piaget, children's cognitive abilities progress through four stages: sensorimotor, preoperational, concrete operational, and formal operational.

Piaget proposed that children's understanding of emotions evolves as they acquire cognitive skills. For instance, in the sensorimotor stage, infants' emotions are primarily reactive and instinctual, while in the preoperational stage, children begin to understand basic emotions and develop rudimentary emotional regulation skills.

Piaget's theory suggests that cognitive development lays the foundation for emotional development by enabling children to understand, label, and regulate their emotions more effectively as they grow older.

2. Erikson's Psychosocial Stages:

Erikson's theory focuses on the psychosocial challenges individuals face at different stages of life. Each stage is associated with a specific developmental task that, when successfully resolved, contributes to healthy psychosocial development.

Emotional development is intertwined with Erikson's stages, as individuals confront emotional crises related to identity, trust, autonomy, industry, intimacy, and generativity across the lifespan. For example, in Erikson's stage of trust vs. mistrust (infancy), the quality of caregiving influences infants' emotional development and their ability to trust others. Similarly, in the stage of identity vs. role confusion (adolescence), teenagers grapple with emotional conflicts related to identity formation and self-esteem.

3. Attachment Theory:

Attachment theory, proposed by John Bowlby and expanded by Mary Ainsworth, focuses on the emotional bonds formed between infants and caregivers and their impact on emotional development.

According to attachment theory, a secure attachment relationship provides a safe haven for infants to explore the world and regulate their emotions. Infants develop internal working models of relationships based on their early attachment experiences, which influence their emotional responses and relationship patterns later in life. Insecure attachment styles, such as avoidant or ambivalent attachment, are associated with difficulties in emotion regulation, social interactions, and mental health outcomes.

❖ Stages of emotional development:

Figure 1: The key stages of emotional development

Stages of emotional development presented in a table format:

Table No:1

Age	Age Range	Key Aspects of Emotional Development
Infancy	0-2 years	- Expression of basic emotions: Infants begin displaying emotions like joy, sadness, anger, and fear.
		- Formation of attachments: Building secure bonds with caregivers lays the foundation for emotional understanding and social development.
Early Childhood	3-5 years	- Recognition and regulation of emotions: Children learn to identify and manage their emotions, often with the support of caregivers.
		- Development of empathy: Understanding others' emotions and showing compassion begin to emerge, facilitated by interactions with caregivers and peers.
		- Early social interactions and learning social cues: Children start to engage with others, learning how to interact and understand social norms and cues.
Middle Childhood	6-11 years	- Navigation of complex feelings: Children encounter more nuanced emotions and learn to cope with them through social interactions and problem-solving skills.
		- Refinement of coping mechanisms: Developing strategies to deal with stress and challenges becomes increasingly important, often influenced by familial and peer relationships.
		- Self-identity: Developing a sense of self and self-esteem.
		- Acquisition of social skills: Learning to navigate peer relationships.

Adolescence	12-18 years	- Heightened emotional experiences: Adolescents undergo intense emotional fluctuations as they grapple with identity formation, peer pressure, and the quest for autonomy.
		- Emphasis on emotional regulation: Learning to manage intense emotions becomes crucial for healthy decision-making and relationships, as teenagers seek independence and identity.
		- Identity formation: Exploring personal values, beliefs, and identity.
		- Peer influence: Impact of friendships, social dynamics, and fitting in.
		- Engagement in risk-taking behaviors as part of identity exploration.
Adulthood	19+ years	- Continuous emotional development: Adults refine coping strategies in response to life's challenges, including milestones such as marriage, parenthood, career changes, and loss.
		- Integration of experiences: Reflecting on past experiences and applying emotional intelligence to navigate various life stages and relationships.
		- Intimacy vs. isolation: Seeking and maintaining intimate relationships.
		- Utilizing coping mechanisms to deal with stress and challenges.
		- Developing emotional intelligence: Understanding and managing emotions.

❖ **Factors Influencing Emotional Development:**

The factors influencing emotional development presented in a table format:

Table No:2

Factor	Description
Biological Factors	- Genetics: Inherited traits and predispositions that influence emotional reactivity and regulation. - Brain Development: Maturation of brain regions involved in emotion processing and regulation, such as the limbic system and prefrontal cortex.
Environmental Influences	- Family Dynamics: Quality of caregiving, attachment relationships, and family communication patterns shape emotional experiences and regulation. - Parenting Styles: Authoritative, authoritarian, permissive, or uninvolved parenting styles impact emotional development and attachment security. - Cultural Norms: Cultural values, beliefs, and practices influence emotional expression, socialization, and emotional regulation strategies.
Social Factors	- Peer Relationships: Interactions with peers, friendships, and social acceptance influence emotional well-being and development. - Societal Expectations: Cultural and societal norms regarding gender roles, emotions, and social behaviors shape individuals' emotional experiences and expression.
Psychological Factors	- Trauma: Adverse childhood experiences, such as abuse, neglect, or exposure to violence, can disrupt emotional development and lead to psychological distress. - Mental Health Conditions: Conditions like anxiety, depression, and trauma-related disorders impact emotional regulation, social functioning, and overall well-being.

Impact of Emotional Development:

1. Effects on Mental Health and Well-being:

Emotional development significantly influences an individual's psychological well-being and mental health outcomes. Healthy emotional development is associated with lower levels of anxiety, depression, and stress, as individuals possess effective coping mechanisms and emotional regulation skills. Conversely, poor emotional regulation or unresolved emotional issues can contribute to the development of mental health disorders and emotional distress.

2. Influence on Academic and Social Success:

Emotional development plays a pivotal role in academic achievement and social success. Children and adolescents with strong emotional regulation skills are better able to focus, manage stress, and engage in learning activities, leading to improved academic performance. Additionally, effective social skills and emotional intelligence facilitate positive peer interactions, teamwork, and leadership abilities, fostering social competence and success in interpersonal relationships.

3. Relationship between Emotional Development and Resilience:

Emotional development is closely intertwined with resilience, the ability to adapt and bounce back from adversity. Individuals with well-developed emotional regulation skills are better equipped to cope with stress, setbacks, and challenges they encounter throughout life. Healthy emotional development fosters traits such as self-awareness, optimism, and effective problem-solving abilities, which are essential components of resilience. Resilience, in turn, enhances emotional well-being and enables individuals to navigate life's ups and downs with greater ease and adaptability.

❖ Interventions and Support:

Understanding the profound impact of emotional development on mental health, academic success, and resilience underscores the importance of nurturing healthy emotional growth and providing support to individuals in developing and strengthening their emotional regulation skills and coping mechanisms.

1. Strategies for Promoting Healthy Emotional Development:

Early Childhood (0-5 years):

Encourage secure attachment bonds by providing responsive and nurturing caregiving. Foster emotional expression and regulation through positive parent-child interactions and modeling of appropriate emotional responses. Create a supportive environment that acknowledges and validates children's emotions, teaching them to label and express their feelings.

Middle Childhood (6-12 years):

Teach emotional literacy skills, including recognizing, understanding, and managing emotions. Promote social-emotional learning (SEL) programs in schools to develop empathy, communication, and conflict resolution skills. Encourage participation in extracurricular activities that foster social connections and self-esteem, such as sports or arts programs.

Adolescence (13-18 years):

Provide opportunities for identity exploration and self-discovery through mentorship programs, career exploration, and community involvement. Offer peer support groups or counseling services to address issues related to peer pressure, self-esteem, and identity formation. Educate adolescents about healthy coping strategies, stress management techniques, and the importance of seeking help when needed.

Adulthood (19+ years):

Offer workshops or therapy focused on relationship skills, communication, and conflict resolution for couples and individuals. Provide workplace wellness programs that address stress management, work-life balance, and emotional well-being. Promote ongoing self-care practices, such as mindfulness, exercise, and hobbies, to support emotional resilience and mental health.

2. Importance of Early Intervention and Support:

Early intervention is crucial for addressing emotional challenges and preventing long-term negative consequences. Recognizing and addressing emotional issues during childhood can mitigate the risk of developing mental health disorders later in life. Early support can help individuals develop healthy coping mechanisms, emotional regulation skills, and resilience, setting the stage for lifelong emotional well-being.

3. Role of Educators, Parents, and Mental Health Professionals:

Educators can integrate social-emotional learning (SEL) into the curriculum and create a supportive classroom environment that promotes emotional awareness and empathy.

Parents play a critical role in modeling healthy emotional behaviors, providing emotional support, and seeking professional help when needed for their children.

Mental health professionals, including counselors, therapists, and psychologists, offer assessment, intervention, and support services tailored to individuals' emotional needs, providing strategies for coping, managing stress, and improving emotional well-being.

❖ **Challenges and Future Directions**

In the realm of emotional development research, several challenges and debates persist, shaping the field's trajectory and future directions.

1. **Complexity of Emotions:** One ongoing challenge is the complexity of emotions themselves. Emotions are multifaceted constructs influenced by various factors such as culture, genetics, and individual differences. Understanding the nuances of different emotional experiences across diverse populations remains a challenge.
2. **Measurement and Assessment:** Accurately measuring and assessing emotions, particularly in young children or individuals with limited verbal abilities, presents a significant challenge. Traditional self-report measures may not be applicable, necessitating the development of innovative assessment tools and methodologies.
3. **Nature vs. Nurture:** The age-old debate regarding the relative contributions of nature (genetics) and nurture (environment) to emotional development persists. While research increasingly recognizes the interplay between genetic predispositions and environmental influences, determining the extent of each factor's impact remains a topic of debate.
4. **Developmental Trajectories:** Understanding the developmental trajectories of emotions from infancy through adulthood is essential for informing intervention efforts. However, longitudinal studies tracking emotional development over extended periods face logistical and methodological challenges, limiting our understanding of how emotions evolve over time.
5. **Cultural Variability:** Emotions are culturally constructed and expressed differently across various cultural contexts. Recognizing and accounting for cultural variability in emotional development research is crucial for ensuring the generalizability and applicability of findings across diverse populations.

❖ **Conclusion:**

Emotional development is crucial for overall well-being, spanning from childhood to adulthood and influenced by biological, environmental, and social factors. Secure attachments in early childhood, emotional regulation in middle childhood, and identity formation in adolescence shape emotional growth. Understanding this process is vital for personal and societal well-being, fostering resilience and healthy relationships. Future research should focus on interventions and practical applications across diverse contexts, collaborating between researchers, practitioners, policymakers, and communities to enhance emotional development and support systems.

❖ **References:**

1. Izard, C. E. and Trentacosta, Christopher J. (2020, November 2). emotional development. Encyclopedia Britannica. <https://www.britannica.com/science/emotional-development>
2. Mercer, J. (2005). Understanding attachment: Parenting, child care, and emotional development. Bloomsbury Publishing USA.
3. Pagano, M., & Parnes, M. (2022). Infant and child development: From conception through late childhood. An Open Educational Resources Publication (Version 1.0).

4. Saarni C, Camras LA. Emotional Development in Childhood. In: Tremblay RE, Boivin M, Peters R Dev, eds. Lewis M, topic ed. Encyclopedia on Early Childhood Development [online]. <https://www.child-encyclopedia.com/emotions/according-experts/emotional-development-childhood>. Updated: September 2022. Accessed May 7, 2024.
5. <https://beyou.edu.au/fact-sheets/social-and-emotional-learning/emotional-development>
6. <https://ccfs.ucdavis.edu/sites/g/files/dgvnsk841/files/inline-files/Natural%20Connections.pdf>
7. <https://pressbooks.cuny.edu/infantandchilddevelopmentcitytech/chapter/emotional-development-and-attachment/>
8. https://www.researchgate.net/publication/372783598_Perception_and_Emotions_The_Plutchik_Model_of_Emotions.
9. <https://study.com/academy/lesson/emotional-growth-definition-lesson-quiz.html>.
10. <https://www.simplypsychology.org>.



विकास की अवस्थाएं, शैशवावस्था (Stage of development: Infancy)

प्रो० किरन सिंह

(शिक्षा शास्त्र)

लाल बहादुर शास्त्री स्मारक पी०जी० कालेज
आनन्दनगर, महाराजगंज

चूंकि मानव एक विकासशील प्राणी के रूप में जन्म लेता है और जन्म से लेकर जीवन के अन्त तक उसका विकास होता रहता है। बालक जब इस संसार के प्रवेश करता है तब तक उसका शारीरिक और मानसिक विकास नहीं हो पाता है। शिक्षा मनोविज्ञान में विकसित होते हुए बालक का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान की दृष्टि से बाल विकास को विभिन्न अवस्थाओं में विभाजित करके प्रत्येक अवस्था का अलग अलग अध्ययन करना आवश्यक समझा गया है। मनोविज्ञान ने शैक्षिक दृष्टि से बाल विकास को निम्नलिखित तीन अवस्थाओं में बाँटा है।—

1. शैशवावस्था (Infancy)
2. बाल्यावस्था (Childhood)
3. किशोरावस्था (Adolescence)

अब विकास की अवस्थाओं में से शैशवावस्था (Infancy) का उल्लेख किया जा रहा है। जिसमें शैशवावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और भाषा के विकास का उल्लेख किया गया है

शैशवावस्था का अर्थ (Meaning of Infancy)

साधारण शिशु के जन्म के बाद २ वर्ष की आयु उसकी शैशवावस्था (Infancy) कहलाती है। मनोवैज्ञानिक **हरलॉक के अनुसार**— “यह जन्म से लेकर दो सप्ताह तक चलती है”

दो सप्ताह बाद बालपन (Babyhood) आरम्भ होता है और दो वर्ष तक रहता है।

शैशवावस्था जीवक की प्रारम्भिक अवस्था है जो जन्म से लेकर लगभग दो वर्ष की आयु तक होती है। इस समय के दौरान, शिशु तेजी सोचने, महशूस करने और चलने की क्षमता विकसित करते हैं। वे सिखते हैं कि अपने आस पास के लोगों और चीजों के साथ कैसे बातचीत करनी है। और अपने भविष्य की वृद्धि और विकास के लिए नीव तैयार करना शुरू करते हैं।

मनुष्यों में शैशवावस्था प्रसवोत्तर जीवन के पहले क्षणों से लेकर 12 महीने तक चलती है। शिशुओं की कुछ शारीरिक विशेषताएं फ्रान्टानेल, जन्मचिन्ह, लैनुगो, और गर्भनाल हैं। शिशुओं में शारीरिक विकास में प्रतिरक्षा प्रणाली और तंत्रिका नेटवर्क का विकास और वजन बढ़ना शामिल है।

शैशवावस्था में शारीरिक विकास (Physical Development During Infancy)

शिशु का शारीरिक विकास जन्म से पूर्व गर्भावस्था से ही आरम्भ हो जाता है। इस समय माता के स्वास्थ्य एवं खान पान का प्रभाव शिशु पर पड़ता है। शिशु का शारीरिक विकास निम्नलिखित प्रकार से है—

1. आकार (Size) — जन्म के समय शिशु की लम्बाई लगभग 20 इंच होती है। प्रायः बालक बालिका से 1/2 इंच अधिक लम्बे होते हैं। प्रथम वर्ष में शिशु की लम्बाई लगभग 27 या 28 इंच, दूसरे वर्ष में 31 या 33 इंच होती है।
2. भार (Weight) — जन्म के समय बालक का भार बालिका से अधिक होता है। नवजात शिशु का भार 6 से 8 पौंड तक होता है। प्रथम 6 मास में शिशु का भार दुगुना और एक वर्ष में तिगुना हो जाता है
3. मांसपेशिया (muscles) — शिशु की मांसपेशियों का भार उसके शरीर के कुल भार का 23 प्रतिशत होता है। धीरे-धीरे यह भार बढ़ता है। उसकी भुजाओं का विकास तीव्र गति से होता है। प्रथम दो वर्ष में भुजाएं दोगुनी और टांगें लगभग डेढ़ी (डेढ़ गुना) हो जाती है।

4. हड्डियाँ (Bones). –नवजात शिशु की हड्डियों छोटी, कोमल एवं लचीली होती है। हड्डियों की संख्या 207 होती हैं। हड्डियां कैल्शियम (Calcium) फासफोरस (Phosphorus) तथा अन्य खनिज पदार्थों (Mineral Salts) की सहायता से मजबूत होती है। इसे अस्थिकरण की प्रक्रिया (ossification) कहते हैं। बालक की उपेक्षा बालिका का आस्थिकरण जल्दी होता है।
5. दाँत (Teeth) – जन्म काल से शिशु के दाँत नहीं होते है लगभग सातवें माह से दाँत निकलने आरम्भ होते हैं। ये आस्थायी दात होते है इनको दूध के दाँत कहा जाता है। एक वर्ष की आयु तक उनकी संख्या आठ हो जाती है।
6. सिर व मस्तिष्क (Head & Brain) – नवजात शिशु का सिर शरीर की अपेक्षा बड़ा होता है। जन्म के समय सिर की लम्बाई उसके शरीर की कुल लम्बाई की 1/4 होती है। प्रथम दो वर्षों में सिर बहुत तेजी से बढ़ता है उसके बाद विकास की गति धीमी हो जाती है। उन्म के समय मस्तिष्क का भार लगभग 350 ग्राम होता है।
7. शिशु के आन्तरिक अंगों का विकास (Development of baby's Internal organs) जन्म के बाद शरीर के आन्तरिक अंगों का विकास होता है। इनमें पाचन अंग, फेफड़ा मांस –पेशियां, स्लायुमंडल, रक्त संचार अंग, उत्पादक अंग एवं ग्रंथियों का क्रमशः विकास होता है।

शैशवावस्था में मानसिक विकास

उत्पत्ति के समय से लेकर प्रथम वर्ष तक—

1. **प्रथम सप्ताह अर्थात् उत्पत्ति के समय—** जन्म काल में कुछ मौलिक प्रवृत्तिया निहित रहती है उसका मानसिक विकास भी इन्हीं से प्रारम्भ होता है। बालक भूख का अनुभव करता है, सर्दी अधिक होने पर कांपने लगता है, अधिक गर्मी में व्याकुल होने लगता है, जोर के शब्दों एवं चमक को पसन्द नहीं करता।
2. **द्वितीय महीना—** इस अवस्था में जब बालक के सामने कोई वस्तु एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाई जाये तो वह उसे ध्यान से ले जाते हुए देखने लगता है अगर पास में गाना गाया जाय तो सुनने लगता है और माँ को देखकर कभी मुस्कराता है तो कभी प्रसन्न होने लगता है।
3. **चतुर्थ महीना** –बालक के हाथ में अगर खिलौना दे दिया जाय तो वह ध्यान से देखने का प्रयास करने लगता है वह कभी क्रोध प्रकट करता है तो कभी मुस्कराता है।
4. **छठा महीना—** अगर बालक को सहारा दिया तो वह बैठने लगता है। प्रायः वस्तुओं को पकड़कर मुख की ओर के जाना प्रारम्भ कर देता है। कुछ मात्रा में इशारों को समझने लगता है।
5. **अठवां महीना—** इस अवस्था में अगर में अगर बालक का खिलौना छीन लिया जाय तो वह पुनः पाने के लिए रोना प्रारम्भ कर देता है। बहुत से खिलौने के बीच से अपनी रुचि का खिलौना चुनने की प्रतिक्रिया प्रयार्दशित करने लगता है।
6. **दसवाँ महीना** – बालक घंटी बजाने का अनुकरण करने लगता है। और ढकी हुई वस्तु का ढक्कन भी खोलने योग्य हो जाते हैं।
7. **प्रथम वर्ष** – दर्पण पर अपना चेहरा ध्यान से देखने लगता है छोटे छोटे शब्द बोलने लगता है चलने का भी प्रयास करने लगता है माता-पिता के कार्यों का अनुकरण करने लगता है
8. **द्वितीय वर्ष—** इस अवस्था में बालक, अपने लिए लल्ला शब्द का प्रयोग न करके, मैं शब्द का प्रयोग प्रारम्भ कर देता है. छोटे- छोटे शब्दों के वाक्यों को बोलने में समर्थ होने लगता है। चाकलेट या अन्य किसी खाने योग्य पदार्थ से लिपटा हुआ कागज निकाल लेता है।

शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास (Emotional Development During Infancy)

बालक के जीवन में संवेगों का महत्वपूर्ण स्थान है। मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि समस्त संवेग जन्मजात नहीं होते हैं। उनका विकास क्रमशः धीरे-धीरे होता है गेट्स आदि मनोवैज्ञानिकों का कथन है "प्रारम्भ में संवेगात्मक प्रक्रियाएं एक सामान्य उत्तेजना मात्र होती हैं उनसे क्रोध, भय, हर्ष आदि का भी स्पष्ट बोध नहीं होता है।

"At the beginning emotional reactions appear more - in the form of general excitement than in the form of clear cut expression of anger, joy or other stages"

Gates & Others

मनोवैज्ञानिक **वॉटसन के अनुसार**— "नवजात शिशु में तीन मूल संवेग पाये जाते हैं भय, क्रोध, स्नेह" ।

ब्रिजिस के अनुसार— 2 वर्ष की आयु तक उनमें लगभग सभी संवेगों का विकास इस प्रकार होता है।

1. **जन्म के समय**— उत्तेजना
2. **३ माह की आयु में** — उत्तेजना, कष्ट (Distress), प्रसन्नता (Delight)
3. **६ माह की आयु में**— उत्तेजना, कष्ट, प्रसन्नता, भय (Fear) घृणा (Disgust), क्रोध
4. **12 माह की आयु में** — उत्तेजना, कष्ट प्रसन्नता, भय, क्रोध, घृणा, आनन्द (Elation), बड़ों के प्रति स्नेह ।
5. **18 माह की आयु में**— उत्तेजना, कष्ट, प्रसन्नता, भय, घृणा, क्रोध, स्नेह तथा (बड़ों और बच्चों के प्रति) ईर्ष्या
6. **24 माह की आयु में**— उपर्युक्त सभी संवेग तथा उल्लास।

शिशु के संवेगात्मक विकास तथा व्यवहार के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं।

1. शिशु जन्म के समय से संवेगात्मक व्यवहार प्रकट करता है जैसे रोना, चिल्लाना, हाथ पैर पटकना आदि।
2. उसका संवेगात्मक व्यवहार अत्यधिक अस्थिर होता है। इच्छापूर्ति में बाधा पड़ने से संवेगात्मक उत्तेजना होती है और इच्छापूर्ति होते ही वह उत्तेजना समाप्त होती है जैसे भूख, से रोता हुआ शिशु दूध मिल जाने पर चुप हो जाता है।
3. संवेगात्मक अभिव्यक्ति में धीरे-धीरे परिवर्तन हो जाता है, प्रारम्भ में कि वह प्रसन्न होने पर केवल मुस्कुराता है, धीरे-धीरे जोर से हसकर प्रसन्नता प्रकट करता है।
4. प्रारम्भ में शिशु के संवेग अस्पष्ट होते हैं किन्तु धीरे-धीरे उनमें स्पष्टता आती है। तीन सप्ताह के शिशु के रोने चिल्लाने से उसका संवेग स्पष्ट नहीं होता।

गेसेल (Gessel) ने अपने अध्ययन में, भूख क्रोध और कष्ट में रोने चिल्लाने की ध्वनि को अलग अलग नोट करके यह बताया है कि माँ अपने शिशु की चिल्लाहट को सुनकर उसका अर्थ समझ लेती है।

5. डॉ० जोन्स के अनुसार शैशव में सभी शिशु भय का अनुभव करते हैं किन्तु भय की अनुभूति में वैयक्तिक भिन्नता पायी जाती है 2 वर्ष का शिशु साँप या अन्य कोई हानिकारक वस्तु देखकर नहीं डरता। धीरे-धीरे भय का विकास होता है।
6. मूल प्रवृत्तियों के विकास के साथ-साथ संवेगों का भी विकास हो जाता है।
8. शैशवावस्था के अन्त में वह अपने वातावरण के लोगों में विशेष रूप से माँ के प्रति स्नेह भाव प्रकट करने लगता है।

शैशवावस्था में भाषा का विकास (Development of Language)

1. मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से शैशवावस्था भाषा सिखने की सर्वोत्तम अवस्था है।
2. एक वर्ष की आयु पूरी करते करते शिशु ध्वनियों का अनुकरण करने लगते हैं।
3. वे अनुकरण द्वारा शब्दों को दोहराने लगते हैं।
4. दो वर्ष की आयु पूरी करने के बाद छोटे छोटे वाक्य दोहराने लगते हैं।
5. एक वर्ष की आयु पूरी करते करते शिशुओं में जिज्ञासा की प्रवृत्ति का उदय होने लगता है। यह बात दूसरी है कि भाषा के अभाव में वे उसे प्रकट नहीं कर पाते।

6. बालक जन्म से ही किलकारी भरने और जोर से चिल्लाने में समर्थ हुआ करता है।
7. कुछ महीने बाद अनुकरण की प्रवृत्ति की प्रेरणा से वह बड़ों के शब्दों को सुनकर निरर्थक शब्द अर्थात् अ,म,प,ब,शब्द बोलने लगता है।
8. उसके उपरान्त जैसे जैसे वह सामाजिक वातावरण में बड़ा होता है वैसे ही उसका आषा विकास शीघ्रता से होता है।
9. स्मिथ (Smith) महोदय के अनुसार "बालक 8 महीने 1 वर्ष, दो वर्ष में क्रमशः, शब्द बोलने लगता है।

शैशवावस्था की प्रभुत्व विशेषताएं (chief characteristic of Infancy)

शैशवावस्था के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा भाषा के विकास से सम्बंधित कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

1. **शारीरिक विकास में तीव्रता (Rapidity in Physical Growth)**— बालक के जीवन में प्रथम दो वर्षों में शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। प्रथम वर्ष में लम्बा है तथा भार दोनों में तीव्र वृद्धि होती है। उसकी कर्मेन्द्रियों, आन्तरिक अंगों, मांसपेशियों आदि का भी उत्तरोत्तर (Gradual) विकास होता है।
2. **अपरिपक्वता (Immaturity)** —इस समय शिशु शारीरिक तथा बौद्धिक रूप से अपरिपक्व होता है। धीरे धीरे स्वभाविक रूप से वह पालन पोषण द्वारा परिपक्व होता है।
3. **पर निर्भरता (dependency)**. जन्म के बाद कुछ समय तक वह बड़ी असहाय स्थिति में रहता है। उसे भोजन के लिए तथा तथा अन्य शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा स्नेह और सहानुभूति प्राप्त करने के लिए दूसरों का अश्रित रहना पड़ता है।
4. **मूल-प्रवृत्त्यात्मक व्यवहार (Instinctive Behaviour)**— इस समय शिशु का अधिकांश व्यवहार मूल प्रवृत्तियों पर आधारित होता है, मूख लगने पर रोता, क्रोधित होता है और जो भी वस्तु उसके पास होती है उसी का मुँह में डाल लेता है।
5. **मानसिक क्रियाओं में तीव्रता (Rapidity in Mental Process)**—

शैशवावस्था की शारीरिक मानसिक, संवेगात्मक और भाषा विकास से सम्बंधित कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं—

निम्न प्रकार से हैं—

1. **शारीरिक विकास में तीव्रता**— शिशु के जीवन के प्रथम दो वर्षों में शारीरिक विकास बहुत तीव्र गति से होता है। पहला वर्ष में शिशु की लम्बाई तथा भार दोनों के तीव्र गति से वृद्धि होती है। शिशु के कर्मेन्द्रियों, आन्तरिक अंगों और मांसपेशियों का भी विकास होता है (कर्मेन्द्रियों— वाक, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ)
2. **मानसिक क्रियाओं में तीव्रता** — शिशु का मानसिक क्रियाओं का विकास तीव्र गति से होता है जैसे ध्यान, स्मृति कल्पना, प्रत्यक्षीकरण, संवेदना आदि।
3. **सीखने की तीव्रता**— शिशु के सिखने की प्रक्रिया में बहुत तीव्रता होती है। शिशु बताई गई बातों को वहतु जल्दी सिख लेता है।
4. **दोहराने की प्रवृत्ति**— शैशवावस्था में शिशु में शब्दों, वाक्यों अथवा क्रियाओं को बार बार दोहराने की प्रवृत्ति विशेष रूप से पायी जाती है। दोहराने में शिशु एक प्रकार के आनन्द का अनुभव करता है।
5. **दूसरों पर निर्भरता** — शिशु जन्म से कुछ समय बाद तक असहाय स्थिति में होता है। वह अपने माता— पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों पर निर्भर रहता है। वह अपनी माँ पर ज्यादा निर्भर रहता है शिशु प्रेम, सुरक्षा स्नेह, आदि के लिए माता—पिता या अन्य बड़े लोगों पर निर्भर रहता है।

इस प्रकार मानव जीवन में विकास की सभी अवस्थाओं में शैशव का महत्व सबसे अधिक है। इस समय जो कुछ सीखाया जाता है उसका प्रभाव तुरन्त (तत्काल) पड़ता है। मनो विश्लेषण — वादियों (Psycho-analysts) ने भी शैशव पर विशेष ध्यान देने पर जोर दिया है।

एडलर ने कहा है— 'शैशवावस्था द्वारा जीवन का पूरा क्रम निश्चित होता है।'

मनोवैज्ञानिकों के विचारों के अनुसार, इस अवस्था को जीवन का आधार कहा जा सकता है, जिस पर बालक के भावी जीवन का निर्माण होता है।

शिशु की मानसिक क्रियाओं के अन्तर्गत ध्यान, स्मृति, कल्पना, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण आदि का विकास तेजी से होता है। इस सम्बन्ध में **गुड एनफ** का विचार है “व्यक्ति का जितना भी मानसिक विकास होता है उसका आधा 3 वर्ष की आयु तक हो जाता है।

“One half of an Individuals ultimate mental stature has been attained by the age of three years”

6.सिखने की प्रक्रिया में तीव्रता— इस समय सीखने की गति बहुत तेज होती है।

कल्पनाशीलता, दोहराने की प्रवृत्ति, अनुकरण द्वारा सिखने की प्रवृत्ति प्रत्याक्षात्मक अनुभव द्वारा सिखना संवेगों का प्रदर्शन (जिसमें रोना चिल्लाना हाथ पर पटकना आदि क्रियाएँ होती हैं।) आत्मप्रेम की भावना, काम प्रवृत्ति (**Sex Instinct**) (जिसमें शिशु अपने अंगों से प्रेम करना, माता का स्तनपान करना, हाथ पैर का अंगूठा चूसना आदि काम प्रवृत्ति के सूचक हैं) नैतिक भावना का अभाव, अकेले व साथ की प्रवृत्ति ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सारस्वत,डॉ० मालती— शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा— आलोक प्रकाशन इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1975.
- लाल, रमन बिहारी और मानव रामनिवास; शिक्षा मनोविज्ञान, रेस्तोगी प्रकाशन मेरठ, प्रथम, संस्करण, 2004—2005.
- श्रीवास्तव प्रो० गिरधारीलाल; शिक्षा मनोविज्ञान,प्रकाश केन्द्र लखनऊ, आठवाँ संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण
- सारस्वत,डॉ० मालती; शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, आलोक प्रकाशन लखनऊ



किशोरावस्था का मनोविज्ञान

प्रो (डा)संध्या उपाध्याय
बी आर डी पी जी कॉलेज
देवरिया

किशोरावस्था को अंग्रेजी में एडोलेसेंस (Adolescence) कहते हैं। एडोलेसेंस लैटिन भाषा के एडोलिसियर से बना है, जिसका अर्थ है परिपक्वता की ओर बढ़ना। अतः किशोरावस्था वह अवस्था है जिसमें बालक परिपक्वता की ओर अग्रसर होता है तथा जिसकी समाप्ति पर वह पूर्ण परिपक्व बन जाता है। जन्म के बाद यह मानव विकास की तीसरी अवस्था है, जो बाल्यावस्था की समाप्ति के बाद प्रारंभ होती है और प्रौढ़ावस्था के प्रारंभ होने तक चलती है। प्रायः १२ से १८ वर्ष की आयु के बीच की अवधि को किशोरावस्था कहा जाता है। बाल्यावस्था एवं प्रौढ़ावस्था के बीच का संधि काल (Transitional period) होने के कारण इसे जीवन का सर्वाधिक कठिन काल माना जाता है। किशोरावस्था को हॉल (Hall) ने संघर्ष (Struggle), तनाव (Strain), तूफान (Storm), तथा विरोध (Strife) की अवस्था कहा है। संवेगात्मक उथल पुथल होने के कारण कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसे समस्यात्मक अवस्था (Problem Age) भी कहा है। शैक्षिक दृष्टि से भी इसे अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

इस अवस्था में किशोर में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, नैतिक विकास के साथ साथ स्थिरता एवम समायोजन का अभाव, काम शक्ति की परिपक्वता, स्वतंत्रता व विद्रोह की भावना, समाज सेवा की भावना, वीरपूजा की भावना, स्वाभिमान की भावना, अपराध प्रवृत्ति का विकास, ईश्वर व धर्म में विश्वास, व्यवहार में बदलाव, व्यवसाय की चिंता आदि विशेषताएं परिलक्षित होती हैं।

किशोरावस्था के अध्ययन का महत्व बर्कर (Barker, १९८८) ने किशोरावस्था पर किए गए अध्ययनों की समीक्षा (review) करके यह स्पष्ट किया है कि इस अवस्था का अध्ययन शिक्षकों एवं माता पिता दोनों के लिए अति आवश्यक है। उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण कारकों पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि

- 1) चूंकि किशोरावस्था एक परवर्ती अवस्था (Transitional period) होती है, इसके कुछ विकासात्मक गुण होते हैं, जिसकी जानकारी माता पिता, एवं शिक्षकों के लिए आवश्यक होती है, जिससे वातावरण में समायोजन स्थापित करने तथा कुंठा (Frustration), एवं सामान्य कुसमायोजन (General Maladjustment) से बचाने में मदद मिलती है।
- 2) किशोरों से शिक्षक वर्ग को काफी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। यदि शिक्षक, किशोरों की समस्याओं तथा उनकी सूझ बूझ से अवगत होते हैं, हु तो उन्हें उचित दिशा निर्देश देने में काफी मदद मिलती है, साथ ही उन्हें पाठ्येतर क्रिया कलापों (Extracurricular activities) में लगाकर उनकी अतिरिक्त ऊर्जा का सामाजिक उपयोग कर सकते हैं।
- 3) किशोरावस्था वयस्कावस्था का प्रवेश द्वार है। शिक्षक यदि किशोरावस्था में अपने विशेष अनुभव द्वारा उन सम्भावी समस्या वयस्क (potential problem adult) की पहचान कर उसे सही दिशा दे दें तो वयस्कावस्था की समस्याओं को हल करने में वे सक्षम हो सकते हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था के स्वरूप एवं विकासात्मक पैटर्न (Developmental Pattern) को स्पष्ट करने के लिए कुछ प्रमुख सिद्धांतों का भी प्रतिपादन किया है।

- १, जी, एस हॉल का सिद्धांत
- २, मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत
- ३, वैदूरा का सिद्धांत
- ४, एरिक्सन का सिद्धांत
- ५, मानवशास्त्रीय सिद्धांत

अमेरिकन मनोवैज्ञानिक जी एस हॉल ने अमेरिकन किशोरों पर अध्ययन कर एक सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जिसे अपनी पुस्तक एडोलेसेंस (Adolescence, १९०४, १९०५) में प्रकाशित किया। वे डार्विन के विकासवादी सिद्धांत (Evolutionary theory) से ज्यादा प्रभावित हुए। हॉल के अनुसार, किशोरावस्था आंधी तूफान की अवस्था है साथ ही तनाव की भी। उन्होंने किशोरावस्था के स्वरूप की व्याख्या दो संप्रत्ययों, (Concept), पुनरावर्तन (Recapitulation) तथा अर्जित गुणों की वंशागति (Inheritance of acquired characteristics) के आधार पर की है।

पुनरावर्तन से तात्पर्य कि प्रत्येक व्यक्ति में होने वाला विकास अपने वर्ग (Species) में होने वाले विकास के क्रम को दुहराता है। इस अवस्था में साहस शक्ति, जोखिम की आवश्यकता होती है तथा वही पुरातन मानवीय कार्यों का पुनरावर्तन है।

अर्जित गुणों की वंशागति से तात्पर्य है कि जब वातावरण से समायोजन करने के लिए व्यक्ति अपने आप में परिवर्तन लाता है तो वह बदलाव उसकी संतान में अपने आप परिवर्तित हो जाती है। डीमोस तथा डीमोस १९७२, के अनुसार हॉल का यह व्यक्तिगत विचार था कि मानव जाति में यदि सभ्य परिवर्तन लाना है तो उन परिवर्तनों को किशोरावस्था में उत्पन्न करना चाहिए ताकि वे आसानी से उनकी संतान में हस्तांतरित हो जाए।

हॉल के अनुसार किशोरावस्था में अधिक तनाव (Stress and Storm) होने का मूल कारण यह है कि किशोरों की प्रमुख अंतः प्रेरणाओं (Impulses) जैसे परिवर्तनवाद बनाम रूढ़िवाद (Radicalism versus Conservation)

संवेदनशील बनाम कठोरता (Sensitivity versus cruelty) आदि में घोर मानसिक संघर्ष होता है। हालांकि आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा हॉल के सिद्धांत को एक क्लासिकी सिद्धांत मानकर बहुत महत्व नहीं दिया है, के बावजूद भी हॉल द्वारा किशोरावस्था को तनाव एवं तूफान की अवस्था मानना मनोवैज्ञानिकों के बीच लोकप्रिय है।

मनोविक्षेपणात्मक सिद्धांत का प्रतिपादन सिगमंड फ्रायड द्वारा किया गया है, जिसे मनोलैंगिक विकास का सिद्धांत भी कहा जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार बालकों में sex जन्म से ही पाया जाता है। मनोलैंगिक विकास पांच अवस्थाओं मौखिक, गुदावस्था, लिंगप्रधान अवस्था, अव्यक्त अवस्था तथा जननेन्द्रिय अवस्था। किशोरावस्था का संबंध जननेन्द्रिय अवस्था से है। फ्रायड के अनुसार इस अवस्था में शैशवावस्था की लैंगिक अभिरुचि पुनः जागृत हो जाती है। किशोरों में आत्म स्नेह प्रवृत्ति कम हो जाती है और उनकी रुचि विपरीत लिंग की तरफ आकर्षित हो जाती है। किशोरावस्था में व्यक्ति वास्तविक एवं समाजीकृत कार्य में भी ज्यादा रुचि दिखाने लगता है। इस अवस्था में आंतरिक अशांति (Inner Unrest) अधिक होती है, जिसका प्रमुख कारण भीतरी जैविक समायोजन की आवश्यकता तथा सामाजिक वातावरण में नियमित संतुलन बनाने की आवश्यकता है।

वैनडुरा सामाजिक सीखना सिद्धांत के प्रवर्तक हैं। इनका सिद्धांत Observational theory पर आधारित है। उनके अनुसार जी एस हॉल तथा अन्ना फ्रायड दोनों ने ही किशोरावस्था में पाई जाने वाली परेशानियों को तनाव एवं तूफान की अवस्था के रूप में वर्णन किया है, जिसके कई कारण हैं जैसे यौन संबंधों पर ज्यादा बल देना, अनुरूपता व्यवहार में कमी आदि। वैनडुरा के अनुसार किशोरावस्था में व्यक्ति केवल अशोभनीय व्यवहार ही नहीं करता बल्कि अन्य तरह के सामाजिक कार्य, साहसिक कार्य, परोपकार के कार्य भी करता है। ऐसे सामाजिक व्यवहारों को सीखने में Observation की भूमिका महत्वपूर्ण है। किशोरावस्था में यदि किसी व्यक्ति के आक्रामक व्यवहार को अधिकांशतः पुनर्वलित होने का, प्रेक्षण होने का मौका मिलता है तो उसमें आक्रामक व्यवहार अधिक प्रबल रूप से दिखता है, इसके विपरीत यदि अधिकांशतः परोपकारी कार्यों का पुनर्वलन होता है तो उसमें परोपकार की भावना प्रबलतम होती है।

एरिकसन १९६३ को Ego Psychology के संस्थापक के रूप में माना जाता है। इनके अनुसार किशोरावस्था एक ऐसी अवस्था है जिसमें किशोरों को विभिन्न प्रकार की सामाजिक मांगों तथा सामाजिक भूमिकाओं का सामना करना पड़ता है। इन भूमिकाओं को निभाने में किशोरों में दो प्रकार के

भाव उत्पन्न होते हैं, पहला, positive end पर अहम पहचान का भाव तथा दूसरा negative end पर भूमिका संभ्रांति का भाव। किशोरावस्था में व्यक्ति अपनी वैयक्तिकता को पहचानने लगता है। वह अपने को अपने भाग्य का विधाता स्वयं समझने लगता है। अपने लक्ष्य को ठीक से निश्चित कर समाज में अपना स्थान बना सकता है, क्योंकि उसके पास क्षमता है। एरिकसन ने इसे अहम भाव की संज्ञा दी है। अहम पहचान के भाव की उत्पत्ति के लिए उसने उपयुक्त यौन भूमिकाओं को भी महत्वपूर्ण माना है, परन्तु जब किशोर प्रतिकूल सामाजिक वातावरण के कारण अहम पहचान का भाव उत्पन्न नहीं कर पाते तब उनमें पहचान संकट या भूमिका संभ्रांति की स्थिति उत्पन्न होती है, जिसके कारण आगे की शिक्षा बाधित होती है और हीनता, बेकारी, उद्देश्यहीनता और व्यक्तिगत विघटन (personal disorganisation) जैसी स्थितियां उत्पन्न होती हैं। किशोर अपराधों का मूल कारण यही भूमिका संभ्रांति की स्थिति ही है, परन्तु कुछ किशोर नई सामाजिक अनुभूतियां प्राप्त करने के बाद स्वयं को संभाल लेते हैं, सामाजिक नियमों, आदर्शों के अनुकूल व्यवहार करना सीख लेते हैं जिसे एरिकसन के शब्दों में कर्तव्यपरायणता (Fidelity) कहा गया है।

कुछ मानवशास्त्रियों जैसे रूस बेनेडिक्ट (१९३८) मागरेटमीड १९२८, के अनुसार शैश्ववस्था से किशोरावस्था में मानव मूलतः अपनी संस्कृति से दो तरह से परिचित होता है जिसमें सांस्कृतिक आदर्शों एवम मानक स्वयं ही किशोरों के लिए एक smooth पथ तैयार करता है, जिससे उसे मानसिक शक्ति प्राप्त होती है किन्तु दूसरी तरफ कुछ संस्कृति ऐसी होती है जिसके मानक एवम आदर्शों किशोर में मानसिक अशांति बढ़ा देती हैं और कुंठित होकर वे आक्रामक व्यवहार करने लगते हैं। इस प्रकार किशोरों में आक्रामकता, तूफान या तनाव की स्थिति पैदा होती है।

किशोरावस्था की कुछ विशिष्ट एवं प्रबल आवश्यकताएं इस प्रकार हैं, प्रतिष्ठा की आवश्यकता, स्वतन्त्रता की आवश्यकता, यौन आवश्यकता, जिंदगी के दर्शन को संतुष्ट करने की आवश्यकता आदि।

ब्लेयर, जोन्स, सिंपसन, १९८५ के अनुसार जिन किशोरों को अपने समूह में विशेष पहचान मिलती है साथ ही शिक्षक वर्ग में भी जिसकी एक विशिष्ट पहचान होती है ऐसे किशोरों में किसी तरह की अनुशासनात्मक समस्या होने की संभावना नहीं रहती।

Kinsey १९४८ ने एक अध्ययन में पाया कि १५ साल की उम्र पार करते करते ९५ प्रतिशत किशोर नियमित रूप से लैंगिक क्रिया में सक्रिय हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में स्कूल में उन्हें उचित यौन शिक्षा देकर इन समस्याओं से निपटने में मदद की जा सकती है।

प्रेसी, राविंसन, कूलर १९९० के अध्ययन से पता चलता है कि किशोरावस्था में धार्मिक भावनाओं की तीव्रता के साथ साथ किशोरों में अपना जीवन दर्शन, जीवन मूल्य और जीवन के प्रति तार्किक दृष्टिकोण विकसित करने का दृढ़ संकल्प रहता है।

Havinghurst १(१५३)ने किशोरावस्था के आठ विकासात्मक कार्यों का वर्णन किया है,

१, दोनों सेक्स की समान उम्र के साथियों के साथ नया एवं परिपक्व संबंध स्थापित करना।

२, उचित पुरुषोचित, स्त्रियोचित सामाजिक भूमिकाएं सीखना।

३, माता पिता तथा वयस्कों से हटकर एक सांवेगिक स्वतन्त्रता कायम करना।

४, किसी व्यवसाय का चयन कर अपने आप को उसके लिए तैयार करना।

५, जीवन की प्रतियोगिता के लिए आवश्यक संप्रत्यय तथा बौद्धिक कौशल सीखना।

६, पारिवारिक जीवन के लिए अपने को तैयार करना।

७, सामाजिक रूप से उत्तरदाई व्यवहार का निर्धारण करना तथा उसे पाने की पूरी कोशिश करना।

८, आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना।

किशोरावस्था एवं यौन शिक्षा

१३ वर्ष से १९, २० वर्ष की अवस्था यौन की दृष्टि से काफी critical होती है और ८० प्रतिशत अभिभावक यह मानते हैं कि किशोरों को उचित शिक्षा विद्यालय में दी जानी चाहिए, जिसके अभाव में गलत लत के कारण इनका सामाजिक व सामवेगिक जीवन तनाव युक्त हो जाता है।

बेकर (१९६५), Gruenberg (१९७७), crow and crow (१९७८) का मत है कि,

१, अभिभावक या वयस्कों को किशोर, किशोरियों के सामने बिना किसी झिझक के यौन विषयों पर चर्चा करनी चाहिए साथ ही यौन विकृति के गलत प्रभाव से अवगत कराया जाना चाहिए। यौन के प्रति एक स्वस्थ मनोवृत्ति का विकास करने में बच्चों की मदद करनी चाहिए।

२, विद्यालयों में यौन शिक्षा को स्कूल के पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए। उन्हें शरीर विज्ञान, जीव विज्ञान, समाज शास्त्र जैसे विषयों के अंतर्गत किशोरों को इस तरह से प्रशिक्षण देना चाहिए ताकि वे यौन के प्रति जागरूक हो सकें।

३, यौन शिक्षा का नाम बदलकर व्यक्तिगत संबंध, या जिंदगी समायोजन,, पारिवारिक जीवन आदि होना चाहिए।

४, किशोरों को यौन शिक्षा पर कुछ विशेष बनाए गए फिल्मों के माध्यम से जानकारी दी जानी चाहिए। स्ट्रेन (१९७९) के अनुसार, ऐसी फिल्मों से किशोरों में यौन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित की जा सकती है, साथ ही तत्संबंधी समस्याओं से छुटकारा पाकर एक स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है।

किशोरावस्था की अपनी कुछ विशेष समस्याएं हैं, जिनका सीधा संबंध बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है।

१, स्कूल में समायोजन संबंधी समस्या।

२, पारिवारिक संबंधों एवं समायोजन संबंधी समस्या।

३, यौन व्यवहार से सम्बन्धित समस्या।

४, नैतिक व्यवहार से सम्बन्धित समस्या।

५, वित्तीय समस्या।

६, व्यावसायिक समायोजन से सम्बन्धित समस्या।

७, मादक पदार्थों के सेवन की समस्या।

८, आत्म हत्या की समस्या।

१, कुछ शिक्षकों के रूढ़िवादी प्रकृति के होने के नाते तथा स्कूल के पाठ्यक्रम मूलतः सैद्धांतिक होने के नाते लड़के, लड़कियों की बड़ी मुश्किल से सहभागिता हो पाती है। कक्षा में चुप चाप भाषण सुनने से वे ऊब जाते हैं और उनके सामने समायोजन संबंधी समस्या उत्पन्न होती है।

२, सिंपसन (१९८९) के अनुसार जो व्यक्ति किशोरावस्था में अपना घर छोड़ कर चले जाते हैं उनके सामने मुख्य रूप से पारिवारिक संघर्ष ही प्रधान कारण माना गया है, जिसके कारण उन्हें अपने माता पिता से उचित निर्देशन नहीं मिल पाता है।

३, किशोरावास्था में यौन व्यवहार से सम्बन्धित समस्या भी तीव्र होती है। शारीरिक परिपक्वता के कारण उनके यौन अंगों का विकास तो पूरा हो जाता है लेकिन उनमें मनोवैज्ञानिक परिपक्वता के अभाव में यौन व्यवहार से सम्बन्धित कई कठिनाइयां उत्पन्न जाती हैं। किशोरियों में शादी के पहले ही गर्भ धारण करने के कारण और किशोर द्वारा उनके उत्तरदायित्व न उठा पाने के कारण वे आत्म हत्या के लिए विवश हो जाती हैं। किसी तरह समस्या समाधान हो भी जाए तो उनका मानसिक व सामाजिक विकास अवरुद्ध हो जाता है इस समस्या से निजात पाने के लिए यौन शिक्षा देना नितांत आवश्यक है।

४, प्रायः देखा जाता है कि किशोर अपने लिए एक unrealistic high standard निर्धारित कर लेते हैं जिन्हें पूरा न करने की दशा में उनके अंदर दोष भाव उत्पन्न होता है और कई तरह की समस्याओं से ग्रसित हो जाते हैं।

५, उपयुक्त व्यवसाय न चुन पाने के कारण किशोरों में घोर कुंठा होती है और वे विद्रोही हो जाते हैं तथा समाज व परिवार के लिए समस्या बन जाते हैं।

६, इस अवस्था में तीव्र वित्तीय समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

७, मनोवैज्ञानिक शोधों से साबित हो चुका है कि किशोरों में मादक पदार्थों, गांजा, अफीम, कोकीन, आदि का अधिक सेवन करने से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ने से उनकी सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, शैक्षिक व पारिवारिक समस्याएं सदा के लिए उन्हें दबोच लेती हैं।

८, आत्म हत्या की समस्या इस अवस्था की विकराल समस्या है। स्मिथ (१९७५) के अध्ययन के अनुसार किशोरों की मृत्यु का दूसरा प्रधान कारण यही आत्म हत्या है। रॉन तथा साल्स (,१९७७) वेंज (१९९०) के अध्ययनों के अनुसार अधिकतर किशोर, किशोरियों में जो आत्महत्या की प्रवृत्ति होती है उसका कारण वंचन, प्रिय वस्तु का खो देना, सामाजिक अकेलापन, पारिवारिक संघर्ष, स्कूल में लगातार असफलता आदि है। ऐसे बच्चों के लिए उचित मार्गदर्शन की विशेष आवश्यकता होती है क्योंकि इन कठिनाइयों से जूझते हुए उनकी अच्छी शैक्षिक उपलब्धि का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है।

किशोरों की अभिरुचियों की विशेषताएं:

एभांस (१९७८)के अनुसार किसी समस्या पर ध्यान केंद्रित करने की क्रिया को अभिरुचि कहते हैं। किशोरों की अभिरुचिया यौन, बुद्धि, घरेलू वातावरण, साथियों की अभिरुचि, सामाजिक स्टेटस पर निर्भर करती हैं। मनोवैज्ञानिक शोधों से पता चलता है कि किशोरों की अभिरुचियों की विशेषताएं इस तरह की हैं,

१, १३ से १५ वर्ष की आयु में किशोरों में जो अभिरुचि विकसित होती हैं, वे स्थाई नहीं होती हैं। नया ड्रेस डिजाइन, नई साइकिल डिजाइन में उनकी रुचि हो जाती है। १८, १९ वर्ष की आयु में ये अभिरुचिया अधिक स्थाई हो जाती हैं।

२, किशोरावस्था में अभिरुचियां तेजी से विस्तारित होती हैं। वे राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय समस्याओं में अभिरुचि दिखाना शुरू कर देते हैं, जिससे उनका बौद्धिक, सामाजिक, संज्ञानात्मक विकास अधिक हो जाता है।

३, किशोरावस्था में अभिरुचि के मूल्य परिवर्तनशील होते हैं। कभी तो वे उन अभिरुचि को मूल्यवान समझते हैं जिसमें नवीनता होती है तो कभी उन अभिरुचियों को अधिक महत्व देते हैं जो हास्य प्रधान होती हैं।

किशोरों की अभिरुचियों के मुख्यतया सात प्रकार हैं।

१, मनोरंजन से जुड़ी अभिरुचि।

२, सामाजिक अभिरुचि।

३, व्यक्तिगत अभिरुचि।

४, शैक्षिक अभिरुचि।

५, व्यवसाय से जुड़ी अभिरुचि।

६, धार्मिक अभिरुचि।

७, प्रतिष्ठा से जुड़ी अभिरुचि।

१, प्रारंभिक किशोरावस्था में १३ से १५ वर्ष की आयु में तो बहुत सारी क्रियाओं में बालक की अभिरुचि अधिकांश वही होती है जो उत्तर बाल्यावस्था की होती है किन्तु १७, १८ वर्ष की उम्र होने पर उनकी मनोरंजन से जुड़ी अभिरुचि काफी बदल जाती है। खेल, संगीत, नाचना, पढ़ना, सिनेमा, घूमना, दिवा स्वप्न आदि में अधिक रुचि हो जाती है। सिंपसन (१९८९) के अनुसार किशोरों में recreational interest की संख्या इस बात पर निर्भर करती है कि वे अपनी मित्र मंडली में कितने लोकप्रिय हैं।

२, सामाजिक अभिरुचि पर किशोरों के परिवार के सामाजिक आर्थिक स्तर का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर के परिवार के किशोरों में ताश खेलने, कबड्डी खेलने, परिवार के लिए कुछ जीविकोपार्जन के साधन जुटाने में रुचि दिखती है। इसके अलावा कुछ किशोर चाहे उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति कैसी भी हो वे अपने साथियों से घुल मिल कर बात करना, अन्य लोगों की मदद करना, सरकारी काम काज, राजनीति आदि में विशेष रुचि रखते हैं।

३, किशोरों में व्यक्तिगत रुचि जैसे, दिखावा में रुचि, कपड़े पहनने, खेलकूद एवं अन्य सामाजिक क्रियाओं में रुचि, स्वतंत्रता में अभिरुचि धन कमाने व प्रतिष्ठा प्रतीक मानकर खर्च करने में अभिरुचि होती

है। मनोवैज्ञानिक शोधों से पता चला है कि किशोरों में इन अभिरुचियों का विकास विशेष रूप से दो बातों से प्रभावित होता है, पहला तो यह कि वह समझता है कि इन अभिरुचियों से उसके सामाजिक स्वीकृति में वृद्धि होगी और दूसरा यह कि ये सारी अभिरुचि उसकी स्टेटस सिंबल है।

४, किशोरों की शैक्षिक अभिरुचि के संदर्भ में Kerckhuff and Huff (१९७४) के अध्ययन के अनुसार जिन किशोरों के मातापिता उनके लिए अवास्तविक उच्च आकांक्षाएं बनाते हैं और उसकी प्राप्ति के लिए लगातार दबाव डालते रहते हैं, उनकी शैक्षिक अभिरुचि में कमी पाई जाती है। विलिक (१९७३) के अध्ययन के अनुसार जिन किशोरों को उनके साथियों के बीच लोकप्रियता कम होती है उनकी शिक्षा में अभिरुचि भी कम होती है। डेभीज (१९७३), के अनुसार जिन किशोरों में शारीरिक परिपक्वता अधिक होती है तथा उनके साथियों, व शिक्षकों से उनके प्रति अधिक उम्मीदें बढ़ जाती हैं जिसे पूरा करने में सक्षम न होने के कारण उदासीनता की भावना आने लगती है तथा शैक्षिक अभिरुचि कम होने लगती है।

५, किशोरों में व्यावसायिक अभिरुचि भी क्रियाशील हो जाती है। उच्च वेतन तथा प्रतिष्ठा देने वाले व्यवसाय में उनकी रुचि बढ़ती जाती है।

६, किशोरों में धार्मिक अभिरुचि भी पाई जाती है। धर्म के बारे में वे तरह तरह की जिज्ञासा रखते हैं। कभी कभी उन्हें संतोषजनक उत्तर नहीं मिलने पर शक भी होता है। इसी आलोक में कुछ मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था को धार्मिक शक की अवस्था भी कहा है। शोधों से पता चला है कि उन किशोरों में धार्मिक अभिरुचि अधिक होती है जिनके मातापिता धार्मिक विचार के होते हैं।

७, प्रतिष्ठा संकेत में अभिरुचि से तात्पर्य कुछ ऐसे कार्यों से होता है जिसे करने से लोग यह सोचते हैं कि सम्बन्धित व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से ज्यादा श्रेष्ठ है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि किशोरों में प्रतिष्ठा संकेत सम्बन्धित कार्यों में अधिक रुचि रहती है। इसके अंतर्गत चार तरह के कार्य संपन्न होते हैं।

१, इससे यह समझा जाता है कि किशोर का सामाजिक आर्थिक स्तर ऊंचा है।

२, उपलब्धियों में जिसे समूह श्रेष्ठ समझा जाता है, किशोर अधिक ऊपर हैं।

३, किशोर ऐसे समूह से सम्बन्धित हैं, जिसकी प्रतिष्ठा है।

४, किशोर की अपनी पोजीशन समाज में एक वयस्क के समान है।

किशोर में कार चलाना, धूम्र पान करना, शराब पीना, मादक पदार्थ का सेवन करना आदि प्रतिष्ठा संकेत से संबद्ध कार्य के कुछ उदाहरण हैं। अमरीकी किशोरों में इसके अलावा शादी से पहले यौन संबंध बनाना भी आधुनिक समाज में एक प्रतिष्ठा संकेत माना जा रहा है।

इस तरह स्पष्ट है कि किशोरों में कई तरह की अभिरुचियों का समावेश उनकी सामाजिक, आर्थिक, संज्ञानात्मक शैक्षिक उपलब्धि को सकारात्मक दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरूप कैसा हो, इस पर हैडो रिपोर्ट में लिखा गया है कि इस अवस्था में बालक की नसों में ज्वार उठना शुरू हो जाता है, अगर इस समय का सदुपयोग कर लिया गया तो जीवन में संतुलन व सफलता निश्चित है।

१, शारीरिक विकास के लिए शरीर विज्ञान, स्वास्थ्य शिक्षा, खेलकूद, व्यायाम आदि पर बल दिया जाए।

२, मानसिक विकास के लिए कला, विज्ञान, साहित्य, तर्क शास्त्र, प्राकृतिक विषयों का ज्ञान, पार्यटन, भ्रमण, वाद विवाद, साहित्यिक, वैज्ञानिक गोष्ठियां, पाठ्य सहगामी क्रियाएं सुनिश्चित की जाए।

३, संवेगात्मक विकास के लिए निकृष्ट संवेग का दमन और उत्तम संवेगों का विकास, कला, साहित्य, संगीत, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से कराया जाए।

४, सामाजिक संबंधों के लिए सामाजिक व्यवहार एवं स्वस्थ संबंधों के पाठ पढ़ाए जाए।

५, व्यक्तिगत भिन्नता के अनुसार शिक्षा दी जाए। माध्यमिक शिक्षा आयोग (पेज ३०) ने लिखा है कि “हमारे माध्यमिक विद्यालयों को छात्रों की विभिन्न रुचियों, आवश्यकताओं को पूर्ण कराने के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों की व्यवस्था करनी चाहिए।

६, जीवन दर्शन की शिक्षा दी जाए।

७, कोठारी कमीशन के अनुसार माध्यमिक विद्यालयों में नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा दी जाए।

- ८, विद्यालयों में यौन शिक्षा की व्यवस्था अति आवश्यक है।
९, उपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग तथा किशोर में स्वयं परीक्षण, निरीक्षण, विचार, तर्क करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जाए।
१०, अपराध प्रवृत्ति पर अंकुश रखने के लिए नैसर्गिक रूप से अपने विचार व्यक्त करने, अनुभव करने का अवसर दिया जाए ताकि उनके भीतर नैराश्य भाव उत्पन्न न हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Crow, L, D and A, Crow; Educational Psychology, New York; American Book Company 1948.
- Hurloc F, B (1981). Developmental Psychology: A life -span Approach (5th ed). New Delhi Tata McGraw Hill.
- सिंह, ए. के. (2014) "शिक्षा मनोविज्ञान," भारती भवन, पटना.
- पाठक, पी. डी. "शिक्षा मनोविज्ञान" अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा.
- गुप्ता, एस. पी. "उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान" तृतीय संस्करण, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद.



शारीरिक विकास (Physical Development)

कुमारी शशि

असिस्टेंट प्रोफेसर

मुण्डेश्वरी कॉलेज फॉर टीचर एजुकेशन

पटना

परिचय

शारीरिक विकास का अर्थ होता है शारीरिक स्वास्थ्य, शक्ति, संभावनाओं का विस्तार, और शारीरिक क्षमताओं का विकास करना। इसमें सामाजिक, आत्मिक और मानसिक पहलुओं का भी ध्यान रखा जाता है।

शारीरिक विकास शिशु अवस्था और प्रारंभिक बचपन में मस्तिष्क और शरीर दोनों की वृद्धि और विकास है।

शारीरिक विकास मस्तिष्क और शरीर दोनों की वृद्धि और विकास है और इसमें मांसपेशियों और शारीरिक समन्वय पर नियंत्रण विकसित करना शामिल है। इस नियंत्रण का उपयोग दैनिक कामकाज के कौशल की एक पूरी श्रृंखला में किया जाता है और इसमें बच्चों की विभिन्न प्रकार के कार्य करने की क्षमता शामिल होती है, जैसे कि बोलना, दोस्त बनाना और अपने आस-पास की दुनिया को समझना। इस नियंत्रण की ओर प्रगति बच्चे की कालानुक्रमिक आयु से परिभाषित नहीं होती है, बल्कि कौशल हासिल करने के अवसर से परिभाषित होती है। विलंबित शारीरिक विकास वाला बच्चा, विशेष रूप से उचित हस्तक्षेप के साथ, आगे बढ़ सकता है, लेकिन छोटे बच्चों को सक्रिय होने के माध्यम से अपने शारीरिक कौशल का अभ्यास करने और उन्हें निखारने के लिए नियमित अवसर और प्रोत्साहन दिए जाने की आवश्यकता होती है।

विभिन्न विषयों से संबंधित शारीरिक विकास की कुछ परिभाषाएँ दी गई हैं:

बाल विकास मनोविज्ञान (Child Development Psychology): शारीरिक विकास शरीर की वृद्धि और परिपक्वता को संदर्भित करता है, जिसमें मोटर कौशल, समन्वय, शक्ति और समग्र शारीरिक स्वास्थ्य में परिवर्तन शामिल हैं, जो आमतौर पर बचपन से किशोरावस्था तक देखा जाता है।

शिक्षा (Education): शारीरिक विकास में सकल और सूक्ष्म मोटर कौशल का अधिग्रहण और परिशोधन, शारीरिक फिटनेस का विकास और शैक्षिक सेटिंग्स के संदर्भ में व्यायाम और पोषण जैसी स्वस्थ आदतों को बढ़ावा देना शामिल है।

बाल चिकित्सा (Child Development): शारीरिक विकास में हड्डियों, मांसपेशियों और अंगों सहित शारीरिक प्रणालियों और संरचनाओं के आकार, शक्ति और समन्वय में प्रगतिशील वृद्धि शामिल है, साथ ही जन्म से बचपन और किशोरावस्था तक आंदोलन और संवेदी धारणा से संबंधित विकासात्मक मील के पत्थर की प्राप्ति भी शामिल है।

खेल विज्ञान (Sports Science): शारीरिक विकास शारीरिक विशेषताओं और क्षमताओं जैसे कि ताकत, गति, चपलता, धीरज, लचीलापन और समन्वय को लक्षित प्रशिक्षण, कंडीशनिंग और व्यायाम कार्यक्रमों के माध्यम से बढ़ाता है, जिसका उद्देश्य एथलेटिक प्रदर्शन को अनुकूलित करना और चोट के जोखिम को कम करना है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य (Public Health): शारीरिक विकास में स्वस्थ व्यवहार और वातावरण को बढ़ावा देना शामिल है जो इष्टतम वृद्धि और विकास का समर्थन करता है, जिसमें पौष्टिक भोजन, सुरक्षित आवास, स्वच्छ जल और मनोरंजक सुविधाओं तक पहुंच, साथ ही टीकाकरण, स्वच्छता और चोट की रोकथाम के उपायों के माध्यम से बीमारी और चोट की रोकथाम शामिल है।

Definitions (परिभाषाएँ)

जीन पियाजे (Jean Piaget): शारीरिक विकास शरीर में होने वाले परिवर्तनों और व्यक्ति द्वारा अपने शरीर का उपयोग करने के तरीकों को संदर्भित करता है, जिसमें सूक्ष्म मोटर कौशल, सकल मोटर कौशल और शारीरिक विकास शामिल हैं।

एरिक एरिकसन (Erik Erikson): शारीरिक विकास में बचपन से लेकर बुढ़ापे तक व्यक्ति में होने वाले जैविक परिवर्तन शामिल हैं, जिसमें विकास, मोटर कौशल और शरीर की संरचना में परिवर्तन शामिल हैं।

लेव वायगोत्स्की (Lev Vygotsky): शारीरिक विकास में शरीर की परिपक्वता और मोटर कौशल का विकास शामिल है, जो संज्ञानात्मक और सामाजिक विकास के लिए आधार प्रदान करता है।

यूरी ब्रॉफेनब्रेनर (Urie Bronfenbrenner): शारीरिक विकास जैविक कारकों, जैसे आनुवंशिकी और स्वास्थ्य, और पर्यावरणीय कारकों, जैसे परिवार, समुदाय और संस्कृति दोनों से प्रभावित होता है।

मारिया मोंटेसरी (Maria Montessori): शारीरिक विकास संज्ञानात्मक और सामाजिक विकास के साथ जुड़ा हुआ है और इसमें पर्यावरण के साथ बातचीत के माध्यम से आंदोलन, समन्वय और संवेदी धारणा का परिशोधन शामिल है।

शारीरिक विकास की विशेषताएँ: (Characteristics of Physical Development):

- विकास (Growth): ऊँचाई, वजन और शरीर के समग्र आकार में वृद्धि।
- टीकाकरण(Immunization): उचित समय पर टीकाकरण बच्चे को बीमारियों से बचाता है। इससे बच्चे का सही तरीके से विकास होता है।
- मोटर कौशल (Motor Skills): सकल मोटर कौशल (बड़ी मांसपेशियों की हरकतें) और बढ़िया मोटर कौशल (छोटी मांसपेशियों की हरकतें) दोनों का विकास।
- समन्वय(Coordination): हाथ-आँख समन्वय और समग्र शरीर समन्वय में सुधार।
- ताकत (Strength): मांसपेशियों की ताकत और सहनशक्ति में वृद्धि।
- लचीलापन(Flexibility): जोड़ों के लचीलेपन और गति की सीमा में वृद्धि।
- धीरज (Endurance): सहनशक्ति में सुधार और समय के साथ शारीरिक गतिविधि को बनाए रखने की क्षमता।
- उचित वेंटिलेशन (Proper ventilation): सूर्य की रोशनी और शुद्ध हवा शरीर के अच्छे विकास में मदद करती है।
- अंतःस्रावी ग्रंथि(Endocrine gland) : हार्मोन बच्चे के विकास में मदद करते हैं।
- प्रसवपूर्व अवधि (Prenatal period): माँ का स्वास्थ्य, उसका पोषण, टीकाकरण, उसकी मानसिक स्थिति गर्भ में पल रहे बच्चे को प्रभावित करती है।
- संतुलन (Balance): संतुलन और स्थिरता का विकास।
- शारीरिक तंदुरुस्ती (Physical Fitness): हृदय स्वास्थ्य, मांसपेशियों की सहनशक्ति और समग्र शारीरिक तंदुरुस्ती को बढ़ावा।
- यौवन संबंधी परिवर्तन (Pubertal Changes): किशोरावस्था के दौरान, द्वितीयक यौन विशेषताओं और हार्मोनल परिवर्तनों का विकास।

- स्वस्थ आदतें (Healthy Habits): नियमित व्यायाम, उचित पोषण और पर्याप्त आराम जैसी स्वस्थ आदतों का निर्माण।



अच्छे शारीरिक विकास के लिए महत्वपूर्ण आधार:

Important foundations for good physical development:

- पोषण (Nutrition): पोषक तत्वों से भरपूर संतुलित आहार वृद्धि और विकास में सहायक होता है।
- शारीरिक गतिविधि (Physical Activity) : नियमित व्यायाम मांसपेशियों, हड्डियों और समग्र स्वास्थ्य को मजबूत बनाता है।
- पर्याप्त नींद (Adequate Sleep): ऊतकों की मरम्मत और विकास को बढ़ावा देने के लिए पर्याप्त आराम महत्वपूर्ण है।
- हाइड्रेशन (Hydration): समग्र शारीरिक कार्यों के लिए पर्याप्त पानी पीना आवश्यक है।
- स्वस्थ वातावरण (Healthy Environment): स्वच्छ परिवेश और उचित स्वच्छता स्वास्थ्य जोखिमों को कम करती है।
- सुरक्षा उपाय (Safety Measures): दुर्घटनाओं और चोटों से बचना निर्बाध विकास सुनिश्चित करता है।
- नियमित स्वास्थ्य जांच (Regular Health Check-up): विकास की निगरानी करना और किसी भी चिंता का तुरंत समाधान करना।
- भावनात्मक कल्याण (Emotional Well-being): मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है; सकारात्मक मानसिकता को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण है।
- सामाजिक संपर्क (Social Interaction): साथियों के साथ गतिविधियों में शामिल होना शारीरिक समन्वय और सामाजिक कौशल को बढ़ावा देता है।
- स्क्रीन टाइम को सीमित करना (Limiting Screen Time): शारीरिक खेल के समय के साथ गतिहीन गतिविधियों को संतुलित करना विकास में सहायक होता है।

Stages of Physical Development

शारीरिक विकास की अवस्थाएं

शारीरिक विकास आमतौर पर सभी व्यक्ति के जीवन में चरणों में होता है:

शैशवावस्था (0-2 वर्ष) Infancy (0-2 years): ऊँचाई और वजन में तेज़ी से वृद्धि, रेंगने, खड़े होने और चलने जैसे बुनियादी मोटर कौशल का विकास।

प्रारंभिक बचपन (2-6 वर्ष) Early childhood (2-6 years): ऊँचाई और वजन में निरंतर वृद्धि, मोटर कौशल का परिष्कार, जैसे दौड़ना, कूदना और चढ़ना। ड्राइंग और लेखन जैसे बढिया मोटर कौशल विकसित होने लगते हैं।

मध्य बचपन (6-11 वर्ष) Middle childhood (6-11 years): ऊँचाई और वजन में धीमी लेकिन स्थिर वृद्धि, मोटर कौशल का और अधिक परिष्कार, समन्वय और संतुलन में वृद्धि। अधिक शक्ति और सहनशक्ति का विकास।

किशोरावस्था (11-18 वर्ष) Adolescence (11-18 years): तेज़ी से विकास, विशेष रूप से यौवन के दौरान, ऊँचाई, वजन और शरीर की संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन की ओर ले जाता है। द्वितीयक यौन विशेषताओं का विकास और मोटर कौशल का और अधिक परिष्कार।

वयस्कता (18+ वर्ष) Adulthood (18+ years): इस उम्र में शारीरिक विकास धीमा हो जाता है, अधिकांश व्यक्ति अपनी चरम शारीरिक शक्ति और मोटर कौशल पर पहुँच जाते हैं। नियमित व्यायाम और उचित पोषण के माध्यम से स्वास्थ्य को बनाए रखना उम्र से संबंधित गिरावट को रोकने के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है।



शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Physical Development)

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक निम्नलिखित हैं:—

1. वंशानुक्रम- स्वस्थ माता-पिता की सन्तान भी स्वस्थ होती है। जो माता-पिता विभिन्न रोगों से ग्रस्त होते हैं और शारीरिक दृष्टि से दुर्बल होते हैं, उनके बच्चे भी शारीरिक दृष्टि से दुर्बल ही होते हैं। अतः उनका शारीरिक विकास भी ठीक प्रकार से नहीं हो पाता।
2. वातावरण- बालक के शारीरिक विकास में वातावरण का विशेष योगदान रहता है। खुली हवा, पर्याप्त धूप और शान्त तथा स्वच्छ वातावरण शारीरिक विकास के लिए पूर्णतया अनुकूल होता है। इसके विपरीत जो बालक प्रकाशहीन, सीलन भरे तथा तंग मकानों में रहते हैं, उनका शारीरिक विकास ठीक प्रकार से नहीं हो पाता और वे प्रायः विभिन्न रोगों से ग्रस्त रहते हैं। क्रो एवं क्रो के अनुसार, बालक के प्राकृतिक विकास में वातावरण के तत्त्व सहायक या बाधक होते हैं।”
3. पौष्टिक भोजन- पौष्टिक भोजन का भी शारीरिक विकास पर विशेष प्रभाव पड़ता है। पौष्टिक भोजन से बालक के विभिन्न अंगों का उचित विकास होता है। प्रत्येक बालक का वजन, ऊँचाई तथा शारीरिक शक्ति बहुत कुछ पौष्टिक भोजन पर निर्भर करते हैं। जिन बालकों को पौष्टिक भोजन मिलता है, उनका विकास भी समुचित होता रहता है। पौष्टिक भोजन के अभाव में बालक के विभिन्न अंगों का समुचित विकास नहीं होता और अनेक रोग आक्रमण कर देते हैं।
4. नियमित दिनचर्या- यमित दिनचर्या शारीरिक विकास का प्रमुख तत्त्व है। जो बालक समय से सोते-उठते हैं, समय से भोजन करते एवं खेलते हैं, उनका शारीरिक विकास अन्य बालकों की अपेक्षा उत्तम ढंग से होता है। नियमित दिनचर्या स्वास्थ्य की आधारशिला है।

5. व्यायाम और खेलकूद- व्यायाम और खेलकूद शारीरिक विकास के लिए परम आवश्यक हैं। व्यायाम और खेलकूद से शरीर के रक्त का परिभ्रमण उचित ढंग से होता है तथा मांसपेशियों में दृढ़ता आती है।
6. निद्रा और विश्राम- शरीर के समुचित विकास के लिए निद्रा और विश्राम का सर्वाधिक महत्त्व है। शैशवकाल में शिशु का अधिकांश समय सोने में ही व्यतीत होता है। बालक और किशोरों को भी निद्रा के लिए पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए। आवश्यकता से अधिक देर तक पढ़ना, बालकों और किशोरों के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ है। विभिन्न शोध कार्यों से ज्ञात हुआ है कि यह उनके शारीरिक विकास में बाधा उत्पन्न करता है।
7. सुरक्षा की भावना- यदि बालक में सुरक्षा की भावना नहीं है तो उसका शारीरिक विकास उचित ढंग से नहीं होगा। सुरक्षा की भावना के अभाव में बालक भय और चिन्ता से ग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार उसमें आत्मविश्वास की भावना लुप्त हो जाती है। परिणामस्वरूप उसका विकास स्वाभाविक ढंग से नहीं हो पाता।
8. सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार- बालक की मनःस्थिति का उसके स्वास्थ्य पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जिन बालकों को ताड़ना और उपेक्षापूर्ण व्यवहार मिलता है, उनका शारीरिक विकास उचित ढंग से नहीं हो पाता। अनाथ बालक इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। शिक्षक को यह बात ध्यान में रखकर बालकों के साथ यथासम्भव प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए।
9. दोषपूर्ण सामाजिक परम्पराएँ- अल्प आयु में बालकों और बालिकाओं का विवाह हो जाना शारीरिक विकास के लिए घातक है। जिन बालक-बालिकाओं का विवाह 13 या 15 वर्ष की आयु में हो जाता है, उनका स्वास्थ्य तीव्रता से नष्ट होने लगता है।
10. अन्य कारक- शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ अन्य कारक इस प्रकार हैं।
 - कोई दुर्घटना या आकस्मिक बीमारी।
 - दूषित और अस्वस्थ जलवायु।



शारीरिक विकास के सिद्धांत

Principles of Physical Development

शारीरिक विकास से तात्पर्य किसी व्यक्ति के शरीर में होने वाली वृद्धि और परिवर्तनों से है तथा परिपक्व होने पर उसके द्वारा अर्जित की जाने वाली योग्यताओं से है। कुछ प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित हैं:—

- अनुक्रमिक (Sequential): विकास आमतौर पर एक पूर्वानुमेय अनुक्रम का अनुसरण करता है, जैसे चलने से पहले रेंगना, और दौड़ने से पहले चलना।
- सेफलोकोडल और प्रॉक्सिमोडिस्टल (Cephalocaudal and Proximodistal): यह सिद्धांत सिर से पैर तक (सेफलोकेडल) और शरीर के केंद्र से बाहर की ओर (प्रॉक्सिमोडिस्टल) विकास के पैटर्न का वर्णन करता है। उदाहरण के लिए, शिशु अपने हाथों और पैरों को नियंत्रित करने से पहले अपने सिर और गर्दन की मांसपेशियों पर नियंत्रण प्राप्त कर लेते हैं।
- निरंतर और असंतत (Continuous and Discontinuous): शारीरिक विकास को एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है, जिसमें समय के साथ क्रमिक परिवर्तन होते हैं, या स्पष्ट संक्रमणों के साथ अलग-अलग चरणों की एक श्रृंखला के रूप में देखा जा सकता है।

- व्यक्तिगत अंतर (Individual Differences): जबकि शारीरिक विकास के सामान्य पैटर्न होते हैं, प्रत्येक व्यक्ति अपनी गति से विकसित होता है और विकास और मोटर कौशल में भिन्नता प्रदर्शित कर सकता है।
- आनुवंशिकी और पर्यावरण से प्रभावित (Influenced by Genetics and Environment): शारीरिक विकास आनुवंशिक कारकों (प्रकृति) और पर्यावरणीय कारकों (पोषण) दोनों से प्रभावित होता है, जैसे पोषण, व्यायाम और विषाक्त पदार्थों के संपर्क में आना। इन सिद्धांतों को समझने से शिक्षकों, माता-पिता और देखभाल करने वालों को जीवन भर बच्चों और व्यक्तियों में स्वस्थ शारीरिक विकास का समर्थन और बढ़ावा देने में मदद मिलती है।
- महत्वपूर्ण अवधि और संवेदनशील अवधि (Critical Periods and Sensitive Periods): विकास में कुछ अवधि विशेष रूप से विशिष्ट शारीरिक कौशल या क्षमताओं के अधिग्रहण के लिए महत्वपूर्ण होती हैं। इन्हें महत्वपूर्ण अवधि के रूप में जाना जाता है। संवेदनशील अवधि वह समय होता है जब कोई व्यक्ति विशेष रूप से कुछ पर्यावरणीय उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रियाशील होता है, जो शारीरिक विकास को प्रभावित कर सकता है।
- विकास और परिपक्वता (Growth and Maturation): शारीरिक विकास शरीर के आकार या आयामों में वृद्धि को संदर्भित करता है, जैसे कि ऊंचाई और वजन, जबकि परिपक्वता संरचना और कार्य में गुणात्मक परिवर्तनों को संदर्भित करती है, जैसे कि ठीक मोटर कौशल या समन्वय का विकास।
- जैव मानोसामाजिक दृष्टिकोण (Biopsychosocial Approach): यह मानता है कि शारीरिक विकास जैविक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारकों से प्रभावित होता है। ये कारक किसी व्यक्ति की वृद्धि और विकास को आकार देने के लिए जटिल तरीकों से परस्पर क्रिया करते हैं।
- स्वास्थ्य और कल्याण (Health and Wellness): उचित पोषण, नियमित व्यायाम और पर्याप्त नींद सहित स्वस्थ जीवन शैली को बढ़ावा देना, इष्टतम शारीरिक विकास और समग्र कल्याण के लिए आवश्यक है।

शारीरिक विकास के सिद्धांत:

- परिपक्वता सिद्धांत (Maturation Theory): अर्नोल्ड गेसेल (Arnold Gesell) द्वारा प्रस्तावित यह सिद्धांत बताता है कि विकास आनुवंशिकी द्वारा शासित एक पूर्व निर्धारित, अनुक्रमिक पैटर्न में होता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, बच्चे पर्यावरण के बहुत अधिक प्रभाव के बिना, बैठने, रेंगने और चलने जैसे शारीरिक विकास के चरणों के माध्यम से स्वाभाविक रूप से प्रगति करते हैं।
- मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत (Psychoanalytic Theory): फ्रायड और एरिकसन (Freud and Erikson) के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत शारीरिक विकास को आकार देने में अचेतन ड्राइव और सामाजिक अनुभवों की भूमिका पर जोर देते हैं। फ्रायड के चरण (मौखिक, गुदा, लिंग, विलंबता, जननांग) जैविक ड्राइव और सामाजिक मांगों के बीच बातचीत पर ध्यान केंद्रित करते हैं। एरिकसन के मनोसामाजिक चरण जीवन के प्रत्येक चरण में संघर्षों को हल करने के महत्व पर जोर देते हैं, जो शारीरिक विकास को प्रभावित करता है।
- व्यवहारवादी सिद्धांत (Behavioural Theory): व्यवहार सिद्धांत, जैसे कि वाटसन और स्किनर (Watson and Skinner) द्वारा प्रस्तावित, शारीरिक विकास पर सीखने और पर्यावरणीय प्रभावों की भूमिका पर जोर देते हैं। व्यवहारवाद के अनुसार, व्यवहार सुदृढीकरण, दंड और अवलोकन के माध्यम से सीखा जाता है। उदाहरण के लिए, ऑपरेटिव कंडीशनिंग

सिद्धांत यह समझा सकते हैं कि बच्चे अभ्यास और प्रतिक्रिया के माध्यम से मोटर कौशल कैसे प्राप्त करते हैं।

- संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत (Cognitive Developmental Theory): पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत से पता चलता है कि शारीरिक विकास संज्ञानात्मक विकास के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। पियाजे ने प्रस्तावित किया कि बच्चे अनुभवों और अंतःक्रियाओं के माध्यम से दुनिया के बारे में अपनी समझ का सक्रिय रूप से निर्माण करते हैं। उनके सिद्धांत के अनुसार, आत्मसात और समायोजन जैसी संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ शारीरिक विकास को संचालित करती हैं क्योंकि बच्चे अपने पर्यावरण का पता लगाते हैं और उसमें हेरफेर करते हैं।
- पारिस्थितिक प्रणाली सिद्धांत (Ecological Systems Theory): ब्रॉफेनब्रेनर (Bronfenbrenner) का पारिस्थितिक तंत्र सिद्धांत शारीरिक विकास को प्रभावित करने में विभिन्न पर्यावरणीय प्रणालियों (माइक्रोसिस्टम, मेसोसिस्टम, एक्सोसिस्टम, मैक्रोसिस्टम) की परस्पर संबद्धता पर जोर देता है। यह सिद्धांत शारीरिक विकास कैसे होता है, यह समझने के लिए परिवार, स्कूल, समुदाय और संस्कृति सहित व्यापक संदर्भ पर विचार करने के महत्व पर प्रकाश डालता है।

ये सिद्धांत शारीरिक विकास को आकार देने वाले तंत्रों और प्रभावों पर अलग-अलग दृष्टिकोण प्रदान करते हैं, जैविक, मनोवैज्ञानिक और पर्यावरणीय कारकों के बीच जटिल परस्पर क्रिया को उजागर करते हैं।



अधिगम में शारीरिक विकास का महत्व

Importance of physical development in learning

1. नियमित शारीरिक गतिविधि मस्तिष्क में रक्त प्रवाह को बढ़ाती है, एकाग्रता और स्मृति में सुधार करती है।
2. शारीरिक व्यायाम डोपामाइन और एंडोर्फिन जैसे न्यूरोट्रांसमीटर के स्त्राव को उत्तेजित करता है, मूड को बढ़ाता है और तनाव के स्तर को कम करता है, जो सीखने पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।
3. ऐसी गतिविधियाँ जिनमें समन्वय और संतुलन शामिल होता है, तंत्रिका कनेक्शन और मस्तिष्क की प्लास्टिसिटी के विकास को बढ़ावा देती हैं, जिससे सीखने और कौशल अधिग्रहण में सुविधा होती है।
4. शारीरिक खेल बच्चों को सकल और सूक्ष्म मोटर कौशल विकसित करने में मदद करता है, जो सीखने के माहौल में लेखन, ड्राइंग और वस्तुओं में हेरफेर जैसे कार्यों के लिए आवश्यक हैं।
5. खेल और बाहरी गतिविधियों में भागीदारी टीमवर्क, सहयोग और नेतृत्व कौशल को बढ़ावा देती है, जो सामाजिक और भावनात्मक विकास के लिए मूल्यवान हैं और समूह सेटिंग में सीखने को बढ़ा सकते हैं।
6. स्कूलों में शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देते हैं बल्कि सीखने में गति और सक्रिय भागीदारी के अवसर प्रदान करके बेहतर शैक्षणिक प्रदर्शन में भी योगदान देते हैं।

7. पाठों में गति-आधारित शिक्षण गतिविधियों को शामिल करने से छात्रों की भागीदारी, ध्यान और जानकारी को बनाए रखने में वृद्धि हो सकती है।
8. नियमित शारीरिक व्यायाम को बेहतर संज्ञानात्मक कार्य से जोड़ा गया है, जिसमें बेहतर समस्या-समाधान क्षमताएं, रचनात्मकता और कार्यकारी कार्य कौशल शामिल हैं।
9. शारीरिक गतिविधियाँ जो शरीर और मन को एक साथ चुनौती देती हैं, जैसे नृत्य या मार्शल आर्ट, संज्ञानात्मक लचीलेपन और तनाव के प्रति लचीलापन बढ़ा सकती हैं, जिससे विविध संदर्भों में सीखने में सुविधा होती है। कुल मिलाकर, विभिन्न गतिविधियों और अनुभवों के माध्यम से शारीरिक विकास को प्राथमिकता देना इष्टतम सीखने और शैक्षणिक सफलता के लिए एक मजबूत आधार तैयार कर सकता है।
10. नियमित शारीरिक गतिविधि मस्तिष्क में रक्त प्रवाह को बढ़ाती है, एकाग्रता और स्मृति में सुधार करती है। शारीरिक विकास को समझने के व्यावहारिक अनुप्रयोग (Practical applications of understanding physical development) शारीरिक विकास को समझने के व्यावहारिक अनुप्रयोग व्यक्तियों को विभिन्न तरीकों से लाभ पहुँचा



सकते हैं, जिनमें शामिल हैं:

- प्रारंभिक बचपन की शिक्षा (Early Childhood Education): शिक्षक विकास के लिए उपयुक्त गतिविधियाँ डिज़ाइन कर सकते हैं जो बच्चों के मोटर कौशल, समन्वय और शारीरिक फिटनेस का समर्थन करती हैं। शारीरिक विकास को समझने से शिक्षकों को सुरक्षित और उत्तेजक वातावरण बनाने में मदद मिलती है जो सक्रिय खेल और आंदोलन को बढ़ावा देते हैं।
- पालन-पोषण (Parenting) : माता-पिता सक्रिय खेल, बाहरी अन्वेषण और विभिन्न प्रकार के आंदोलन अनुभवों के संपर्क में आने के अवसर प्रदान करके अपने बच्चों के शारीरिक विकास का समर्थन कर सकते हैं। विकासात्मक मील के पत्थर को समझने से माता-पिता को अपने बच्चे की प्रगति को ट्रैक करने और किसी भी संभावित चिंता की पहचान करने में मदद मिल सकती है।
- स्वास्थ्य सेवा (Healthcare) : स्वास्थ्य सेवा पेशेवर बच्चों के विकास और विकास का आकलन करने, किसी भी देरी या असामान्यताओं की पहचान करने और उचित हस्तक्षेप या रेफरल प्रदान करने के लिए शारीरिक विकास के ज्ञान का उपयोग कर सकते हैं। नियमित जाँच और जाँच यह सुनिश्चित करने में मदद करती है कि बच्चे महत्वपूर्ण विकासात्मक मील के पत्थर को पूरा कर रहे हैं।
- खेल और मनोरंजन (Sports and Recreation) : कोच और प्रशिक्षक बच्चों की विकासात्मक क्षमताओं और रुचियों से मेल खाने के लिए खेल और मनोरंजक गतिविधियों को तैयार कर सकते हैं। शारीरिक विकास को समझने से कोचों को उम्र के अनुसार उपयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करने, चोटों को रोकने और शारीरिक गतिविधि में आजीवन भागीदारी को बढ़ावा देने में मदद मिल सकती है।
- भौतिक चिकित्सा और पुनर्वास(Physical Therapy and Rehabilitation): भौतिक चिकित्सक चोटों, सर्जरी या विकासात्मक देरी से उबरने वाले ग्राहकों के लिए व्यक्तिगत उपचार योजनाएँ तैयार करने के लिए शारीरिक विकास के सिद्धांतों का उपयोग करते हैं। प्रत्येक ग्राहक की अनूठी

ज़रूरतों के आधार पर ताकत, लचीलापन, संतुलन और समन्वय को बेहतर बनाने के लिए चिकित्सीय व्यायाम और गतिविधियों का चयन किया जाता है।

- सामुदायिक योजना और डिजाइन(Community Planning and Design) : शहरी योजनाकार और वास्तुकार ऐसी सुविधाएँ शामिल कर सकते हैं जो सभी उम्र और क्षमताओं के लोगों के लिए शारीरिक गतिविधि और पहुँच को बढ़ावा देती हैं। शारीरिक विकास को ध्यान में रखते हुए पार्क, खेल के मैदान और मनोरंजक सुविधाओं को डिज़ाइन करना सक्रिय जीवनशैली को प्रोत्साहित कर सकता है और सामुदायिक कल्याण को बढ़ा सकता है। विभिन्न सेटिंग्स में शारीरिक विकास के ज्ञान को लागू करके, व्यक्ति और पेशेवर सहायक वातावरण बना सकते हैं, स्वस्थ व्यवहार को सुविधाजनक बना सकते हैं और जीवन भर इष्टतम विकास और कल्याण को बढ़ावा दे सकते हैं।

निष्कर्ष (conclusion)

उपर्युक्त विवरण द्वारा स्पष्ट है कि बालक के शारीरिक विकास को विभिन्न कारक प्रभावित करते हैं। इन कारकों में से किसी एक या अधिक कारकों की अवहेलना हो जाने अथवा उनमें असामान्यता हो जाने की स्थिति में बालक के शारीरिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। शारीरिक विकास एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति के शरीर में वृद्धि, और परिवर्तन मील के पत्थर साबित होते हैं। बचपन से लेकर वयस्कता तक और बाद के जीवन में, आनुवंशिकी, पोषण, पर्यावरण और शारीरिक गतिविधि जैसे विभिन्न कारक इस विकास को प्रभावित करते हैं। जीवन का प्रत्येक चरण अपनी अनूठी शारीरिक चुनौतियाँ और विकास के अवसर लेकर आता है, लेकिन एक स्वस्थ जीवन शैली बनाए रखने से पूरे जीवनकाल में इष्टतम शारीरिक स्वास्थ्य बनाए रखने में मदद मिल सकती है। शारीरिक विकास का घनिष्ठ सम्बन्ध बालक के विकास के अन्य सभी पक्षों से भी होता है; अतः शारीरिक विकास के अवरुद्ध हो जाने अथवा असामान्य हो जाने की दशा में बालक के सम्पूर्ण विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले सभी कारकों का ज्ञान बाल-मनोवैज्ञानिकों के लिए आवश्यक एवं लाभकारी है। बाल-मनोवैज्ञानिक इन कारकों को सामान्य रखकर बालक के सम्पूर्ण विकास को सुचारु बना सकता है। शारीरिक विकास केवल शरीर के आकार और आकृति में परिवर्तन के बारे में नहीं है, बल्कि इसमें मोटर कौशल, समन्वय, शक्ति और संवेदी धारणा का अधिग्रहण भी शामिल है। यह आनुवंशिकी और पर्यावरणीय कारकों के बीच जटिल अंतर्क्रिया को दर्शाता है। जीवन के प्रत्येक चरण में, व्यक्ति शिशु अवस्था के तेज़ विकास से लेकर वयस्कता की चरम शारीरिक क्षमताओं और बाद के जीवन के परिवर्तनों तक, अद्वितीय शारीरिक चुनौतियों और अवसरों का सामना करता है। शारीरिक विकास को समझना और उसका समर्थन करना समग्र स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है। नियमित शारीरिक गतिविधि को प्रोत्साहित करना, पौष्टिक भोजन तक पहुँच प्रदान करना, अन्वेषण और खेल के लिए सुरक्षित वातावरण बनाना और कौशल विकास के अवसर प्रदान करना, ये सभी जीवन भर स्वस्थ शारीरिक विकास को बढ़ावा देने में योगदान करते हैं। शारीरिक विकास के महत्व को पहचानकर और उसका समर्थन करने के लिए रणनीतियों को लागू करके, व्यक्ति अपने जीवन की गुणवत्ता को बढ़ा सकते हैं और शिशु अवस्था से लेकर वयस्कता तक की अपनी यात्रा के दौरान इष्टतम स्वास्थ्य बनाए रख सकते हैं।

संदर्भ सूची (References):

1. Berk, L. E. (2013). Child Development. Pearson Education.

2. Papalia, D. E., Feldman, R. D., & Martorell, G. (2011). Experience Human Development. McGraw-Hill Education.
3. Santrock, J. W. (2013). Life-Span Development. McGraw-Hill Education.
4. Shaffer, D. R., & Kipp, K. (2013). Developmental Psychology: Childhood and Adolescence. Cengage Learning.
5. Sigelman, C. K., & Rider, E. A. (2018). Life-Span Human Development. Cengage Learning.
6. https://www.sarthaks.com/3108378/#google_vignette
7. <https://www.earlymovers.org.uk/about-pd>



नैतिक विकास (Moral Development)

डॉ० मंजय कुमार

प्राचार्य

आई०एम०आर कॉलेज

दुहाई, गाजियाबाद, उ०प्र०

आज के मनुष्य के आचरण में तेजी से आती हुई नैतिक गिरावट को देकर प्रायः सभी प्रबुद्ध विचारक चिंतित हैं देश के प्रायः सभी राजनीतिक, सामाजिक साहित्यिक और शैक्षिक मंचों से जीवन-मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये जा रहे हैं।

व्यक्ति जिस समाज तथा समुदाय में रहता है वह समाज व समुदाय उसके ऊपर तरह-तरह के सामाजिक बंधन, निर्देश, अपेक्षाएँ अथवा दायित्व आरोपित करता है जिन्हें समाज के आदर्श या मानक या नैतिक मानदण्ड कहते हैं। समाज के द्वारा आरोपित इन बंधनों, दायित्वों व निर्देशों का व्यक्ति की व्यक्तिगत इच्छाओं से संघर्ष होना स्वाभाविक ही होता है। अधिकांश व्यक्ति इस प्रकार के बंधनों को कोई बाह्य बंधन नहीं मानते हैं, जिन्हें उन पर जबरदस्ती आरोपित किया गया हो। प्रायः समाज के विभिन्न बंधन व्यक्ति की जीवन-शैली के सामान्य अंग बनाकर उसके व्यवहार को निर्देशित करते हैं। वास्तव में सामाजिक बंधन प्रारम्भ में व्यक्ति को बाह्य प्रतीत होते हैं तथा प्रायः वे व्यक्ति की इच्छापूर्ति में बाधक नजर आते हैं। इसलिए प्रारम्भ में बालक इन सामाजिक नियमों, मानकों अथवा कानूनों को समझने अथवा स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं होते हैं, परन्तु बालकों को ऐसा करने के लिए समाजीकृत किया जाता है। मानव विकास की वह प्रक्रिया, जिसके द्वारा व्यक्ति समाज में प्रचलित आचरण के नैतिक मानदण्डों को अपने में समाहित करता है तथा सीखता है कि व्यक्तिगत इच्छाओं तथा सामाजिक दायित्व के संघर्ष को किस प्रकार से नियंत्रित किया जाये, नैतिक विकास कहलाती है। जीन प्याजे के अनुसार, "नैतिक विकास न्याय के परिपक्व तथा स्वःस्फूर्त संप्रत्ययों की प्राप्ति है।" सामाजिक तथा बौद्धिक विकास का नैतिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। सामाजिक तथा बौद्धिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बालक भिन्न-भिन्न ढंग से सोचते तथा समझते हैं इसीलिए विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में सामाजिक नियमों, कानूनों तथा प्रचलनों की समझ भी प्रायः भिन्न होती है। बालक अपने सतत क्रियाशील प्रयासों के द्वारा बाह्य जगत को समझने तथा अपने सामाजिक अनुभवों को नैतिक मूल्यों तथा नैतिक निर्णय के रूप में संगठित करने का प्रयास करता रहता है। यही कारण है कि सामाजिक तथा बौद्धिक विकास के विभिन्न स्तरों पर बालकों के नैतिक मूल्यों तथा निर्णयों का संगठन भिन्न-भिन्न होता है जैसे-जैसे बालकों का बौद्धिक विकास होता है वैसे-वैसे उनके नैतिक मूल्यों तथा नैतिक निर्णयों में परिवर्तन आता जाता है। बालकों में होने वाले नैतिक विकास के सम्बन्ध में पियाजे तथा कोहलबर्ग ने अपने-अपने सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। नैतिक विकास के विभिन्न पक्षों के साथ-साथ इन दोनों सिद्धान्तों की चर्चा प्रस्तुत अध्याय में की गयी है।

नैतिकता का सम्प्रत्यय- नैतिकता का अर्थ है सही को गलत से अलग करने की क्षमता इस अंतर पर कार्य करना और जब इस सही काम करते हैं तो गर्व का अनुभव करना और जब हम सही काम नहीं करते तो अपराध या शर्म का अनुभव करना।

नैतिक विकास, व्यक्ति के परिपक्व होने पर सही और गलत के बीच चयन करने के तरीका को संदर्भित करता है। यह बचपन से शुद्ध होता है और आम तौर पर व्यस्कता तक पहुंचने पर समाप्त होता है हालांकि यह सुझाव भी दिया गया है कि नैतिक विकास एक सतत प्रक्रिया है। नैतिकता, मानकों का एक समूह था एक कोड या मूल्य प्रणाली है, इसके जरिये मानव कार्यों को

सही या गलत, अच्छा या बुरा निर्धारित किया जाता है। नैतिकता सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंडों के साथ-साथ स्थापित कानूनों से भी प्रभावित होती है।

जन्म के समय बालक एक कोरे स्लेट की भाँति होता है जिसके कारण वह न तो नैतिक होता है और न ही अनैतिक होता है। विकास क्रम के साथ वह अपने सामाजिक परिवेश से नैतिक-अनैतिक व्यवहार सीखता है। वस्तुतः सामाजिक नियमों, मान्यताओं, सिद्धान्तों तथा अपेक्षाओं के अनुरूप व्यवहार करना ही नैतिकता है। यही कारण है कि बालक सर्वप्रथम अपने माता-पिता तथा परिजनों के द्वारा किये आचरणों को करने का प्रयास करता है। निःसन्देह अन्य व्यवहारों की तरह से ही नैतिक व्यवहार भी सीखा जाता।

नैतिक व्यवहार एक तरह से समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार प्रतिमानों का अनुसरण करना है। क्योंकि समय-समय पर एवं समाज-समाज, में स्वीकृत व्यवहार प्रतिमानों में अन्तर पाया जाता है इसलिए देश व काल के अनुसार नैतिक व अनैतिक व्यवहारों में अन्तर परिलक्षित होता रहता है। यही कारण है कि किसी भी राष्ट्र के विभिन्न कालखण्डों में नैतिकता के मानदण्डों में अन्तर पाया जाता है। वस्तुतः नैतिकता का सम्प्रत्यय एक सापेक्षिक सम्प्रत्यय है एवं देशकाल, समाज व संस्कृति के सन्दर्भ में इसकी व्याख्या की जा सकती है। मोटे तौर पर नैतिकता को एक ऐसी मानसिक प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है जो व्यक्ति को अच्छे-बुरे, सही-गलत, सच-झूठ, उचित-अनुचित तथा वांछनीय-अवांछनीय आदि के बीच अन्तर करने योग्य बनाती है। जो व्यक्ति अपने समाज की स्वीकृत मान्यताओं के आधार पर व्यवहार करता है उसे नैतिक कहा जाता है परन्तु जो व्यक्ति समाज के स्वीकृत नियमों का उल्लंघन करता है उसने अनैतिक व्यक्ति कहा जाता है। क्योंकि भिन्न-भिन्न समाजों की भिन्न-भिन्न मान्यताएँ होती हैं इसलिए नैतिक व्यवहार के आंकलन के लिए किसी सार्वभौमिक मानदण्ड की स्थापना करना सम्भव नहीं है। व्यक्ति जिस विशिष्ट समाज अथवा समुदाय अथवा राष्ट्र का नागरिक होता है वह उसी समाज के द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करके नैतिक आचरण करता है। यद्यपि कुछ व्यवहार ऐसे होते हैं जिन्हें अधिकांश, समुदायों, संस्कृतियों तथा कालखण्डों में उचित समझा जाता है। जैसे सत्य बोलना, चोरी न करना तथा किसी को कष्ट न पहुँचाना, सभी धर्मों में नैतिक मानदण्डों के रूप में स्वीकार किया जाता है इन्हें सनातन या सार्वभौमिक, नैतिक व्यवहार कहा जा सकता है। मनुष्य में नैतिक गुणों को ग्रहण करने की प्रक्रिया को नैतिक विकास कहते हैं।

क्योंकि नैतिक व्यवहार जन्मजात न होकर अर्जित होता है इसलिए बालक अपने परिवार, पड़ोस तथा विद्यालय के सामाजिक परिवेश में नैतिकता की शिक्षा प्राप्त करता है। शैशवावस्था तथा बाल्यावस्था में दण्ड व पुरस्कार एवं प्रशंसा व निन्दा के कारण वह अपेक्षित अच्छा आचरण करना सीखता है एवं बुरा आचरण करना त्याग देता है परन्तु जब एक ही व्यवहार की किसी परिस्थिति में प्रशंसा होती है जबकि दूसरी परिस्थिति में उस व्यवहार को तिरस्कृत किया जाता है तब वह असमंजस में पड़ जाता है। बालकों के लिए दोहरी नैतिकता को समझ पाना प्रायः कठिन होता है एवं इस प्रकार की विरोधाभासी परिस्थितियाँ बालक के नैतिक विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं परन्तु किशोरावस्था में पहुँच जाने पर व्यक्तियों में विवेक का उदय होने लगता है। उसके नैतिक व्यवहार को निर्धारित करने वाले बाह्य स्रोत कमजोर होने लगते हैं तथा वह आन्तरिक विवेक द्वारा निर्देशित होकर नैतिक व्यवहार करने का प्रयास करता है निःसन्देह यही नैतिकता का वास्तविक विकास है। नैतिक विकास को बालक के समाजीकरण का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है तथा बालकों को नैतिक ज्ञान, नैतिक सम्प्रत्यय, नैतिक तर्क तथा नैतिक व्यवहार को सिखाने की आवश्यकता होती है। नैतिक ज्ञान तथा नैतिक सम्प्रत्ययों का विकास अनुभव, अधिगम तथा परिपक्वता के साथ धीरे-धीरे होता है जबकि नैतिक तर्क तथा नैतिक व्यवहार व्यक्ति की बुद्धि तथा विवेक पर निर्भर करता है।

सामान्य रूप से किसी मनुष्य के चरित्र से तात्पर्य समाज द्वारा निश्चित नैतिक नियमों के पालन से होता है। यहाँ सामान्य सामाजिक नियमों और नैतिक नियमों का अन्तर समझना आवश्यक है। सामान्यतः किसी समाज की भाषा रीति-रिवाज और व्यवहार के प्रतिमानों का सीखकर उनका प्रयोग करना, सामाजिक नियमों का पालन माना जाता है और किसी समाज के व्यवहार सम्बन्धी सामाजिक और धार्मिक निर्देशों के अनुसार आचरण करना चरित्र माना जाता है।

पियाजे का नैतिक विकास सिद्धान्त

जीन पियाजे ने 1932 में नैतिक विकास का सिद्धान्त तैयार किया था, पियाजे के मुताबिक बच्चों के नैतिक विकास का उनके संज्ञानात्मक विकास से गहरा सम्बन्ध है। पियाजे का मानना था कि बच्चों के नैतिक निर्णय के विकास में एक निश्चित क्रम और तार्किक पैटर्न होता है। पियाजे ने बच्चों को अपने नैतिक विकास में एक सक्रिय सहभागी माना। वे इस सिलसिले में वातावरण के साथ बच्चों में होने वाले गतिशील अंतर्क्रिया पर अधिक बल डालते थे। उनका मत था कि जैसे-जैसे बच्चे अपने को वातावरण के साथ अन्तर्क्रिया करते हैं, उन्हें परिवर्तित करते हैं तथा उनमें कुछ परिमार्जन लाते हैं, उनमें नैतिक विकास होता है। पियाजे का नैतिक विकास का सिद्धान्त उन चरणों की रूपरेखा प्रस्तुत करता है, जिनमें एक बच्चा नैतिक निर्णय लेता है।

जीन पियाजे ने नियमों, अधिकारों, दोषों, पापों व अत्याचारों के मूल्यांकन, समानता तथा पर-निर्भरता से सम्बन्धित प्रश्नों तथा कहानियों के माध्यम से बालक-बालिकाओं के गहन साक्षात्कार लिए तथा इससे प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण करके बालकों के नैतिक विकास का अध्ययन किया। उनके अनुसार नैतिक विकास के तीन मुख्य स्तर क्रमशः 1. नैतिक यथार्थता 2. नैतिक समानता तथा 3. नैतिक सापेक्षता होते हैं। आगे पियाजे द्वारा बताये गये नैतिक विकास के इन तीनों स्तरों पर होने वाले नैतिक विकास की संक्षिप्त चर्चा की जा रही है।

1. नैतिक यथार्थता (Moral Realism)— यह बालकों के नैतिक विकास का प्रथम स्तर है जो बालक-बालिकाओं की आयु लगभग सात-आठ वर्ष होने तक चलता है। इसे विषम नैतिकता अथवा विवशता की नैतिकता भी कहते हैं। नैतिक विकास के इस स्तर पर बालक के अन्दर विद्यमान नैतिकता अन्यो के द्वारा स्थापित नियमों पर आधारित होती है। इस स्तर पर नियमों, उत्तरदायित्वों अथवा निर्देशों को अपरिवर्तनीय, अविचारणीय तथा निरपेक्ष माना जाता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इस नैतिक स्तर पर जो कुछ भी अधिकारी, बुजुर्ग अथवा नियम कहते हैं वही न्याय है, वही तर्कसंगत है, वही उचित है एवं अच्छे-बुरे कार्यों पर जो भी दण्ड अथवा पुरस्कार बड़े व्यक्ति देते हैं वही सबको स्वीकार्य होता है। इस स्तर पर यथावत आज्ञा पालन अच्छा माना जाता है। नैतिक विकास के इस स्तर पर बालक अपने स्वहित के भाव से स्वमेव नियमों का पालन करते हैं। उनका यह विश्वास होता है कि अत्याचार या बेईमानी करने पर प्रकृति दण्डित करती है तथा वे मानते हैं कि कोई भी बात या तो पूर्णतया सही होती है या पूर्णतया गलत होती है। इस स्तर पर उद्देश्य के आधार पर नहीं वरन् परिणाम के आधार पर व्यक्ति के विभिन्न कार्यों को सही अथवा गलत ठहराया जाता है। जिस कार्य का परिणाम जितना अधिक गंभीर होता है, उसके लिए मिलने वाला दण्ड भी उतना ही अधिक कष्टप्रद होने की आशा की जाती है।

पियाजे के अनुसार नैतिक यथार्थता के दो मूल स्रोत— 1. बालकों की बौद्धिक संरचना तथा 2. उसके स्वयं के अनुभव होते हैं। बौद्धिक कारकों में बालकों का अहं केन्द्रीयकरण तथा उसके विचारों की वास्तविकतायें आती हैं। अहं केन्द्रीयकरण से तात्पर्य बालक ही इस मान्यता से होता है कि सभी व्यक्ति के घटना के सम्बन्ध में ठीक यही विचार है जो मेरे विचार है। विचारों की वास्तविकता से तात्पर्य नियमों तथा विचारों को भौतिक वस्तुओं के समाज मानने की प्रवृत्ति से है। आनुभविक कारकों में बालकों के ऊपर प्रौढ़ों का नियंत्रण व दबाव, बालकों व प्रौढ़ों के अधिकारों में अंतर तथा बालकों का माता-पिता व बुजुर्गों के प्रति सम्मान आते हैं।

2. नैतिक समानता (Moral Equality) — नैतिक विकास का दूसरा स्तर बालक की लगभग सात-आठ वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर लगभग 12 वर्ष की आयु तक चलता है। यह स्तर सम-वयस्क बच्चे के साथ बढ़ती अन्तर्क्रिया का परिणाम होता है। हम उम्र साथियों के साथ बालक की अन्तर्क्रिया वस्तुतः समानता तथा लेने-देने के सम्बन्धों पर आधारित होती है। इस स्तर पर बालक की दृष्टि में न्याय मुख्यतः व्युत्क्रम दण्ड तथा समानता पर केन्द्रित हो जाता है। बालक पारस्परिक सहमति के आधार पर अपने खेल के नियमों का निर्धारण करने लगते हैं। स्व-केन्द्रित खेलों से हटकर बालक सहयोगात्मक खेलों में अधिक रुचि लेने लगते हैं। चार-पाँच वर्ष के बालक खेलों के नियमों की भिन्न-भिन्न समझ रखते हैं, अन्य बालक सही खेल रहे हैं अथवा गलत, इस पर उनका ध्यान कम होता है, वे नियमों की अपनी समझ के अनुरूप खेलते हैं। परन्तु आठ-नौ वर्ष के बालकों के खेल का ढंग इससे बिल्कुल भिन्न होता है। इस स्तर पर सभी बालकों को खेले के

एक समान नियम ज्ञात रहते हैं एवं अन्य बालकों के खेल का पारस्परिक निरीक्षण करना उनके लिए सामान्य बात होती है। खेलों में ईमानदारी बनाये रखने के लिए सभी भरसक हैं।

प्रयास करते हैं। इस आयु के बालक अपने खेलों के अधिकांश समय को नियमों या बेईमानी के ऊपर तर्क-वितर्क करने में व्यतीत कर रहे हैं। तुमने बेईमानी की है? नहीं-नहीं। मैं तो ठीक खेल रहा हूँ। तुमने गेंद को छुआ था, देखो! यह ठीक नहीं है, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए, जैसे तर्क-वितर्क बालकों के द्वारा खेल के दौरान अन्य बालकों के साथ करते देखे जा सकते हैं।

पियाजे के अनुसार हम उम्र बच्चों में इस प्रकार के तर्क-वितर्कों के कारण ही वे स्व-केन्द्रित खेल (Ego-centric Play) ने सहयोगात्मक खेल (Co-operative Play) की ओर अग्रसर होते हैं। तर्क-वितर्क के फलस्वरूप बालकों में परस्पर सम्मान तथा सहयोग की भावना विकसित होती है। इस प्रकार का नैतिक विकास तब ही होता है। जब बालकों में अन्य व्यक्तियों के दृष्टिकोण को ग्रहण करने तथा जटिल मान्यताओं को समझने की योग्यता विकसित हो रही होती है।

3. नैतिक सापेक्षता (Moral Relativism)

नैतिक विकास का यह स्तर सर्वाधिक विकसित स्तर है। प्याजे ने इसे स्वतः नैतिकता (Autonomous Morality) अथवा सहयोगात्मक नैतिकता (Morality of Co-operation) के नाम से भी सम्बोधित किया है। यह स्तर सामान्यतः लगभग 12 वर्ष की आयु में प्रारम्भ होता है। इस स्तर पर न्याय की संकल्पना मुख्यतः समानता पर आधारित होती है तथा विपरीत न्याय की समानता (Equalitarian Concept of Distributive Justice) का प्रत्यय प्रबल हो जाता है। नैतिकता को पारस्परिक समानता पर आधारित स्वीकार किया जाता है। बालकों के द्वारा बाह्य दबाव के अभाव में भी न्याय के आदर्शों का अनुसरण किया जाता है। इस स्तर पर परिस्थितियों, उद्देश्यों तथा मनोभावों को नैतिक निर्णय देते समय विशेष रूप से ध्यान में रखा जाता है। नियमों को सामाजिक अन्तर्क्रिया तथा आम सहमति के आधार पर निर्मित माना जाता है तथा ये नियम आवश्यकतानुसार परिवर्तनीय होते हैं। इस स्तर पर अनेक बालक तथा किशोर नैतिक निर्णयों के सम्बन्ध में अपने स्वयं के नियम बनाना शुरू कर लेते हैं।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि नैतिक यथार्थता स्तर बालकों में नियमों का अंध-अनुसरण (Blind Obedience) करने की प्रवृत्ति होती है, नैतिक समानता स्तर पर नियमों की व्याख्या करने की प्रवृत्ति होती है तथा नैतिक सापेक्षता स्तर पर कार्यों की व्याख्या करने की प्रवृत्ति होती है। प्याजे के अनुसार, सहयोग, पारस्परिक पर-निर्भरता तथा विभिन्न दृष्टिकोणों के प्रति जागरूकता व्यक्ति को स्वतः नैतिकता के स्तर पर पहुँचाने में सहायक सिद्ध होती है। नैतिक शिक्षा, घरेलू जीवन तथा अन्य वातावरणीय कारकों के कारण उनके दृष्टिकोण तथा नैतिक विकास में अंतर आ जाता है। निरपेक्ष नियमों से रहित नियमों से रहित अंतःक्रिया वाले समूहों के बालकों में व्यक्तिगत समानता तथा समूह सार्वभौमिकता की भावना प्रोत्साहित होती है तथा नियमों के निर्माण में सहभागिता बढ़ती है।

कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त—

लारेंस कोहलबर्ग (1927-1987) के नैतिक विकास के तीन स्तर एवं 6 अवस्था हैं, जिन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है। लारेंस कोहलबर्ग ने अपने सिद्धान्त में बताया कि व्यक्ति शैशवावस्था से व्यस्कता तक नैतिक तर्क के छह अलग-अलग चरणों के माध्यम से प्रगति करते हैं, उन्होंने इन चरणों को नैतिक तर्क तीन व्यापक श्रेणियों में बांटा। प्रत्येक स्तर नैतिक विकास के उत्तरोत्तर जटिल चरणों से जुड़ा है। लोग इन चरणों से एक निश्चित क्रम में आगे बढ़ते हैं और नैतिक समझ संज्ञानात्मक विकास से जुड़ी होती है। लारेंस सैद्धांतिक रूप से पियाजे के नैतिक विकास के सिद्धान्त से सहमत थे, लेकिन अपने विचारों को और विकसित करना चाहते थे।

दस वर्ष से सोलह वर्ष की आयु के बालकों के सम्मुख कहानियों के रूप में नैतिक दुविधाओं (Moral Dilemmas) को प्रस्तुत किया तथा इन दुविधाओं पर आधारित साक्षात्कार लिये। इन कहानियों से प्राप्त सूचनाओं के विश्लेषण से कोहलबर्ग ने नैतिक विकास के तीन प्रमुख स्तर तथा सात सोपान बताये हैं जिन्हें आगे सारणी में प्रस्तुत किया गया है। नैतिक विकास के इन तीनों स्तरों में उनसे सम्बन्धित सोपानों में होने वाले नैतिक विकास की आगे चर्चा की जा रही है।

सारणी 01
नैतिक विकास के स्तर तथा सोपान

स्तर (Stage)	सोपान (Levels)
1. पूर्व परम्परागत स्तर (Pre- Conventional Levels)	0. आत्मकेन्द्रित निर्णय (Ego Centric Judgement) 1. दंड तथा आज्ञा पालन अभिमुखता (Punishment and Obedience Orientation) 2. यांत्रिक सापेक्षिक अभिमुखता (Instrument Relativist Oreintation)
2. परम्परागत स्तर (Conventional Level)	3. परस्पर एकरूप अभिमुखता (Interpersonal Concordance Orientation) 4. अधिकार-संरक्षण अभिमुखता (Authority-Maintaining Orientation)
3. उत्तर परम्परागत स्तर (Post-Conventional Level)	5. सामाजिक अनुबंध विधि सम्मत अभिमुखता (Social contract Legalistic Oreintation) 6. सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त अभिमुखता (Universal Ethical Principle Oreintation)

1. पूर्व-परम्परागत स्तर

(Pre-Conventional Level)

इस स्तर पर बालक अपनी आवश्यकताओं के संदर्भ में चिन्तन करते हैं। नैतिक दुविधाओं से युक्त प्रश्नों पर उनके उत्तर प्रायः उनको होने वाले लाभ और हानि पर आधारित होते हैं। नैतिक कार्य अच्छे या बुरे कार्यों में निहित होते हैं न कि अच्छे या बुरे व्यक्तियों में। सामाजिक व सांस्कृतिक नियमों जैसे अच्छा या बुरा, सही या गलत आदि की व्याख्या मिलने वाले दण्ड, पुरस्कार अथवा नियमों का समर्थन करने वाले व्यक्तियों की शारीरिक सामर्थ्य अथवा होने वाले स्थूल परिणामों से आंकी जाती है। इस स्तर पर होने वाले नैतिक विकास को निम्नांकित तीन उपसोपानों में बाँटा जा सकता है-

- 1. आत्मकेन्द्रित निर्णय (Ego-Centric Judgement)-** इस सोपान में बालक प्रत्येक उस कार्य को जिसे वे करना पसन्द करते हैं अथवा उस वस्तु को जिसे वे प्राप्त करना चाहते हैं अथवा उस व्यक्ति को जो उनकी सहायता करता है अच्छा समझते हैं। इसके विपरीत कोई भी ऐसा कार्य, वस्तु या व्यक्ति जिसे वे नापसंद करते हैं, जिसे वे प्राप्त करना नहीं चाहते हैं अथवा व्यक्ति जो उन्हें हानि पहुँचाता है, उसे खराब समझते हैं।
- 2. दण्ड तथा आज्ञापालन अभिमुखता (Punishment and Obedience Orientation)-** इस सोपान में बालक बड़े व्यक्तियों अथवा अधिकार सम्पन्न व्यक्तियों के द्वारा दिये जाने वाले दण्ड से बचने के प्रति चिन्तित रहते हैं। वे नियमों तथा उनको तोड़ने से होने वाले दुष्परिणामों को समझते हैं। किसी कार्य के करने पर होने वाले स्थूल परिणाम उस कार्य को अच्छा बुरा निर्धारित करते हैं। अधिकार अथवा शक्ति ही कार्य को उचित अनुचित ठहराते हैं।

3. **यांत्रिक सापेक्षिक अभिमुखता (Instrument Relativist Orientation)**— नैतिक विकास के इस सोपान में बालक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तब ही करना चाहते हैं जब वे उनकी पूर्ति कर सकने में समर्थ होते हैं। वे स्वलाभ से प्रोत्साहित होते हैं तथा इस बात को समझते हैं कि सम्बन्ध सभी के प्रति निष्ठा, न्याय अथवा समर्पण भाव से न बनकर स्थूल पर निर्भरता के आधार पर बनते हैं। इस स्तर पर बालक मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वयम् को देखना होता है तथा कोई भी व्यक्ति केवल उन व्यक्तियों के प्रति उत्तरदायी होता है जो उसकी सहायता करते हैं।

2. परम्परागत स्तर

(Conventional Level)

कोहलबर्ग के अनुसार नैतिक विकास के पराम्परागत स्तर पर नैतिक मूल्य अच्छे या बुरे कार्यों को करने में निहित रहते हैं। बालक बाह्य सामाजिक अपेक्षाओं को पूरा करने में रूचि लेते हैं। वे अपने परिवार, अपने समूह अथवा अपने समाज अपने राष्ट्र की अपेक्षाओं को पूरा करने महत्व देते हैं तथा महत्वपूर्ण व्यक्तियों तथा सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप कार्य करते हैं। उनमें परम्परागत नियमों तथा दायित्वों के प्रति समर्थन तथा औचित्य का भाव रहता है। इस स्तर पर होने वाले नैतिक विकास को निम्नांकित दो उपसोपानों में बाँटा जा सकता है—

1. **परस्पर एकरूप अभिमुखता (Inter-personal Concordance Orientation)** — इस सोपान में बालक अच्छा बनकर अन्य व्यक्तियों से प्रशंसा प्राप्त करना चाहते हैं। वे अच्छे बालक अथवा अच्छी बालिका जैसा व्यवहार करने में रूचि लेते हैं जो कुछ अन्यो को अच्छा लगे या अन्यो की सहायता करें या अन्यो के द्वारा स्वीकृत हों, वहीं उत्तम माना जाता है। बालक दूसरे व्यक्तियों के भावों तथा इरादों (intentions) का ध्यान रखने की आवश्यकता के प्रति सजग रहते हैं। इस सोपान पर सहयोग को व्यक्ति के सर्वोत्तम आचरण के रूप में स्वीकार किया जाता है।
2. **अधिकार संरक्षण अभिमुखता (Authority Maintaining Orientation)**— इस सोपान में बालक सामाजिक दृष्टि से स्वीकृत नियमों तथा दायित्वों के अनुरूप कार्य करने की भावना से प्रोत्साहित रहते हैं। वे सर्वहित दृष्टि से विद्यमान सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखना चाहते हैं। वे समझते हैं कि समाज में एक व्यापक सामाजिक प्रणाली है जो उसमें रहने वाले व्यक्तियों के व्यवहार को नियंत्रित करती है। उनके विचार में नैतिकता का आधार सामाजिक व्यवस्था होती है तथा व्यक्तिगत हानि होने की स्थिति में भी व्यक्ति के द्वारा नियमों का पालन किया जाना चाहिए।

3. उत्तर-परम्परागत स्तर

(Post-Conventional Level)

नैतिक विकास के इस तृतीय तथा सर्वोच्च स्तर पर बालक उन नैतिक मूल्यों तथा नैतिक सिद्धान्तों को परिभाषित करने के स्पष्ट प्रयास करने लगते हैं। जिनकी सामाजिक दृष्टि से वैधता या उपयोगिता होती है तथा जो परम्परागत मूल्यों, नियमों या सिद्धान्तों से भिन्न हो सकते हैं। उनमें स्वनिर्धारित नैतिक सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा तथा अनुसरण करने की भावना होती है। नैतिक मूल्य वस्तुतः उभयनिष्ठ मानदण्डों, अधिकारों तथा कर्तव्यों की पूर्ति में निहित माने जाते हैं। इस स्तर पर होने वाले नैतिक विकास को निम्नांकित दो सोपानों में बाँटा जा सकता है—

1. **सामाजिक अनुबंध विधिसम्मत अभिमुखता (Social Contract Legalistic Orientation)** - इस सोपान के अंतर्गत उचित कार्यों को आलोचनात्मक ढंग से परखकर समस्त समुदाय के द्वारा स्वीकृत किये गये सामान्य व्यक्तिगत अधिकारों व मानदण्डों के रूप में परिभाषित करने की प्रवृत्ति आ जाती है। व्यक्तिगत मूल्यों तथा विचारों के सापेक्षवाद के प्रति जागरूकता के फलस्वरूप आम सहमति पर पहुँचने के लिए कार्यरत नियमों (Procedural Rules) पर बल दिया जाने लगता है। समाज की आम सहमति क्या है, के अलावा पूर्व में विद्यमान नियमों को सामाजिक उपयोगिता के तार्किक विचार विमर्श (Rational Considerations) के आधार पर परिवर्तित करने की सम्भावना भी

बनी रहती है। विधिसम्मत नियमों के अतिरिक्त स्वतंत्र स्वीकारोक्ति या समर्पण भाव व्यक्ति को अपने दायित्वों का पालन करने के लिए प्रेरित करता है।

2. **सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त अभिमुखता (Universal Ethical Principles Oreintation)**— इस सोपान में व्यक्ति उचित-अनुचित का निर्णय ऐसे स्वनिर्धारित नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर करता है जो तार्किक व्यापकता (Logical Comprehensiveness). सार्वभौमिकता (Universality) तथा एकरूपता (Consistency) से युक्त होते हैं। परन्तु ये सिद्धान्त स्वयं में अमूर्त तथा नैतिक बोध से युक्त होते हैं। वे न्याय के सर्वमान्य प्राकृतिक सिद्धान्त होने के साथ-साथ मानव अधिकारों की समानता, परम्परागत तथा मानव जाति के प्रति सम्मान की भावना से युक्त होते हैं।

कोहलबर्ग के द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित नैतिक विकास के विभिन्न स्तरों तथा सोपानों के अवलोकन से स्पष्ट है कि ये तीनों स्तर तथा ये सातों सोपान क्रमशः नैतिक निर्णय लेने की बढ़ती योग्यता तथा दृष्टिकोणों की बढ़ती व्यापकता व अमूर्तता को इंगित करते हैं। प्रथम स्तर पर बालक आत्मकेन्द्रित होते हैं क्योंकि वे स्वहित की दृष्टि से ही नैतिक व्यवहार करते हैं तथा निष्पक्ष भाव से अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में विचार करने की योग्यता विकसित कर लेते हैं। कोहलबर्ग के द्वारा प्रस्तुत नैतिक विकास के विभिन्न सोपानों पर नैतिक निर्णय प्रक्रिया निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो सकेगी।

नैतिक प्रश्न— उदाहरणार्थ माना कि आपकी माँ सख्त बीमार है। रात्रि 11 बजे डाक्टर ने उन्हें देने के लिए दवा बताई है। आप बाजार में दवा खरीदने जाते हैं, परन्तु सभी दुकाने बंद है। डाक्टर का कहना है कि दवा तुरंत चाहिए वरना आपकी माँ का स्वर्गवास हो सकता है। ऐसी स्थिति में आप अपने किसी मित्र, जो शहर में कहीं दूर रहता है, की दुकान का ताला तोड़कर दवा लाना चाहेंगे? कारण सहित बताइये।

कोहलबर्ग के नैतिक विकास के विभिन्न स्तरों तथा सोपानों में निहित तर्क के कारण विभिन्न सोपानों में उपरोक्त प्रश्न पर बालक के द्वारा भिन्न-भिन्न उत्तर अपेक्षित हो सकते हैं जिन्हें अग्रांकित सारणी में कारण सहित प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारणी – 02

नैतिक विकास के विभिन्न स्तरों पर नैतिक चिन्तन

(Moral Reasoning at different Stages of Moral Development)

नैतिक विकास का स्तर व सोपान (Level and Step of Moral Development)	उत्तर (Answer)	औचित्य (Justification)
I. पूर्व परम्परागत स्तर 0. आत्मकेन्द्रित निर्णय	हाँ	ऐसी परिस्थिति में दुकान का ताला तोड़कर दवा ले आना चाहिए, जिससे माँ का जीवन बचाया जा सके।
1. दण्ड तथा आज्ञापालन अभिमुखता	नहीं	किसी भी परिस्थिति में दूसरे की दुकान का ताला नहीं तोड़ना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से पुलिस दण्ड देगी।
2. यांत्रिक सापेक्षित अभिमुखता	हाँ	ऐसी परिस्थिति में दुकान का ताला तोड़कर दवा ले आना चाहिए, क्योंकि माँ का जीवन मुख्य है।
II. परम्परागत स्तर 3. परस्पर एकरूप अभिमुखता	नहीं	किसी भी परिस्थिति में दूसरों की दुकान का ताला नहीं तोड़ना चाहिए, ऐसा केवल गलत व्यक्ति ही करते हैं।

4. अधिकार संरक्षण अभिमुखता	नहीं	किसी भी परिस्थिति में दूसरों की दुकान का ताला नहीं तोड़ना चाहिए। ऐसा करना सामाजिक प्रणाली के विरुद्ध होगा। हमें व्यक्तिगत हानि सहन करनी चाहिए।
III. उत्तर परम्परागत स्तर		
5. सामाजिक अनुबंध विधि सम्मत अभिमुखता	हाँ	सामाजिक नियम एक-दूसरे के लाभ के लिए बनाए गए हैं इसलिए परिस्थिति को तात्कालिक आवश्यकता को देखते हुए दुकान का ताला तोड़कर दवा ले आनी चाहिए।
6. सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त अभिमुखता	हाँ	किसी भी मानव जीवन को बचाना मुख्य है इसलिए ऐसी संकटकालीन स्थिति में मित्र की दुकान का ताला तोड़कर दवा ले आनी चाहिए।

जीन पियाजे के द्वारा प्रस्तुत बौद्धिक विकास के स्तरों व नैतिक विकास के सोपानों तथा लारेन्स कोहलबर्ग के द्वारा प्रस्तुत नैतिक विकास के सोपानों में परस्पर एक अन्तर्निहित सम्बन्ध प्रतीत होता है जिसे निम्नांकित सारणी – 03 में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी – 03

बौद्धिक तथा नैतिक विकास के सोपानों में सम्बन्ध

(Relationship between Logical and Moral Development Stages)

पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development according to Piaget)	पियाजे के अनुसार नैतिक विकास (Moral Development According to Piaget)	कोहलबर्ग के अनुसार नैतिक विकास (Moral Development according to Kohlberg)
1. सांवेदिक गतिक अवस्था		
2. पूर्व संक्रिया अवस्था	I. नैतिक यथार्थता	0. आत्मकेन्द्रित निर्णय 1. दण्ड तथा आज्ञापालन अभिमुखता
3. मूर्त संक्रिया अवस्था	II. नैतिक समानता	2. यांत्रिक सापेक्षिक अभिमुखता
4. औपचारिक संक्रिया अवस्था	III. नैतिक सापेक्षिता	3. परस्पर एकरूप अभिमुखता 4. अधिकार संरक्षण अभिमुखता 5. सामाजिक अनुबंध विधिसम्मत अभिमुखता 6. सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त अभिमुखता

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नैतिक विकास जीवन की शुरुआत में ही शुरू हो जाता है और व्यस्कता के दौरान मृत्यु तक चरणों में जारी रहता है। नैतिक विकास का सिद्धान्त पदानुक्रमित है, लोग चरणों की एक श्रृंखला के माध्यम से अपने नैतिक तर्क में प्रगति करते हैं।

नैतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

(Factors Affecting Moral Development)

व्यक्ति के नैतिक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। जैविकीय निर्धारक, सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि तथा बौद्धिक कारक बालक के नैतिक व्यवहार को मुख्य रूप से प्रभावित करते हैं। बालक के नैतिक व्यवहार को प्रभावित करने वाले कुछ मुख्य कारक निम्नवत हैं—

1. **स्वास्थ्य (Health)**— जैविकीय कारकों के अंतर्गत स्वास्थ्य एक ऐसा कारक है जो बालक के नैतिक तथा आदर्शों पर प्रभाव डालता है। शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ व क्रियाशील बालक प्रायः वांछनीय व्यवहार को अधिक शीघ्रता व यथार्थता से सीख लेता है।
2. **पारिवारिक प्रभाव (Home Influence)**— परिवार नैतिक विकास को प्रभावित करने वाला एक अत्यंत महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली कारक है। माता-पिता व परिवार के अन्य सदस्यों के नैतिक विचारों तथा परिवार में नैतिक अनुशासन व पारिवारिक स्नेह की कमी जैसे कारक बालक के नैतिक व्यवहार को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं।
3. **समूह का प्रभाव (Group Influence)**— बालक अथवा व्यक्ति के नैतिक व्यवहार पर उसके समूह के नैतिक दृष्टिकोणों का भी प्रभाव पड़ता है। बालक के द्वारा किसी कार्य को उचित अथवा अनुचित मानना काफी हद तक उसके समूह के साथियों के द्वारा नियंत्रित होता है। समूह जिस कार्य को करना उचित समझना है, प्रायः व्यक्ति भी उसे करना उचित समझता है।
4. **धार्मिक प्रभाव (Religious influence)** — नैतिक विकास में धर्म एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। लगभग सभी धर्म नैतिक मूल्यों के विकास पर बल देते हैं। बालक धर्म के प्रति जितना अधिक समर्पित होता है उसका नैतिक विकास भी उतना ही अधिक अच्छा होता है।

सारांश

नैतिक विकास से तात्पर्य मानदण्डों को अपने में समाहित करना है जिससे व्यक्ति अपने नैतिक मूल्यों के अनुरूप आचरण कर सकें। जीन पियाजे तथा कोहलबर्ग के द्वारा नैतिक विकास प्रक्रिया को कुछ स्तरों तथा सोपानों में वर्गीकृत करके स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। पियाजे ने नैतिक विकास के तीन स्तर क्रमशः नैतिक यथार्थता, नैतिक समानता तथा नैतिक सापेक्षता बताई है जबकि कोहलबर्ग ने पूर्व परम्परागत स्तर, पराम्परागत स्तर तथा उत्तर परम्परागत स्तर नामक तीन स्तरों में नैतिक विकास को बाँटा है। कोहलबर्ग ने पूर्व-पराम्परागत स्तर को आत्मकेन्द्रित निर्णय, दण्ड व आज्ञापालन अभिमुखता तथा यांत्रिक सापेक्षित अभिमुखता आदि तीन सोपानों में, परम्परागत स्तर को परस्पर एकरूप अभिमुखता तथा अधिकार एवं संरक्षण अभिमुखता नामक दो सोपानों में एवं उत्तर परम्परागत स्तर को सामाजिक अनुबन्ध विधिसम्मत अभिमुखता तथा सार्वभौमिक नैतिक चिन्तन एवं उसके पीछे निहित तर्क भिन्न-भिन्न होते हैं। स्वास्थ्य, पारिवारिक स्थिति, समूह प्रभाव, धन प्रभाव, जनसंचार, मानसिक क्षमता जैसे विभिन्न कारकों से नैतिक विकास की प्रक्रिया प्रभावित होती है।

नैतिक विकास का मतलब है कि हम उम्र बढ़ने के साथ सही और गलत की पहचान कैसे करते हैं, यह हमारे धार्मिक और नैतिक मूल्यों का भी शामिल करता है। यह हमारे व्यवहार और सामाजिक जिम्मेदारी की भावना को प्रभावित करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, लाल (2013), शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी मेरठ, आर.लाल बुक डिपों.
2. गुप्त, (2000). मूल्यपरक शिक्षा और समाज. नई दिल्ली. नमन प्रकाशन.
3. सजवान, (2021), अधिगमकर्ता एवं अधिगम की प्रक्रिया, मेरठ, आर लाल बुक डिपों.
4. मानव, (2019), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान. मेरठ. आर.लाल बुक डिपो.
5. पचौरी, (2018). शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार. मेरठ. आर.लाल बुक डिपों.
6. गुप्ता, (2019). उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान. इलाहाबाद. शारदा पुस्तक भवन.
7. विशनोई, (2020). मूल्य व शांति शिक्षा. मेरठ. आर.लाल बुक डिपो.



Nature and nurture exploring the influence of genetics and environment

Pradeep Kumar
Department of Zoology
G L A Collage, Daltonganj
NPU Medininagar, Palamu, JH

Introduction

The debate surrounding the relative influence of nature (genetics) and nurture (environment) on human development and behavior has long captivated researchers, educators, and the general public alike. While some argue for the predominant role of genetic factors in determining individual traits and outcomes, others emphasize the significance of environmental influences in shaping who we are. However, contemporary understanding acknowledges the complex interplay between these two forces, recognizing that both genetics and environment interact dynamically to mold human characteristics.

This paper aims to explore the intricate relationship between genetics and environment in shaping human development, behavior, and outcomes. By examining the contributions of both nature and nurture, we seek to unravel the multifaceted mechanisms through which genes and environmental factors influence individuals' lives. Through a synthesis of theoretical frameworks, empirical research, and real-world examples, this study aims to provide a nuanced understanding of how genetic predispositions interact with environmental contexts to produce diverse outcomes across individuals.

Furthermore, this research endeavors to shed light on the implications of this interplay for education and human development. Recognizing the importance of considering both genetic and environmental factors in fostering optimal learning environments and supporting individual growth, we advocate for holistic approaches that acknowledge the complexity of human variability. By integrating insights from genetics, psychology, and education, this paper seeks to contribute to a deeper understanding of the nature-nurture debate and its implications for promoting human flourishing and well-being.

Discussion

The discussion surrounding the interplay of genetics and environment in human development and behavior is multifaceted and dynamic. While early debates often framed the issue as a dichotomy between nature and nurture, contemporary research highlights the intricate interaction between genetic predispositions and environmental influences.

Conclusion

In conclusion, the interplay between genetics and environment represents a fundamental aspect of human development and behavior. While early debates often framed the issue as a dichotomy between nature and nurture, contemporary research has revealed the complex and dynamic interaction between genetic predispositions and environmental influences.

This synthesis of genetics and environment highlights the importance of adopting a holistic perspective in understanding human variability and promoting optimal development. Rather than viewing genetics and environment as independent forces, it is

essential to recognize their intertwined nature and the ways in which they interact to shape individual traits, behaviors, and outcomes.

Furthermore, the implications of this interplay extend beyond theoretical debates to practical applications in education and human development. By acknowledging the influence of both genetics and environment, educators and policymakers can design interventions and programs that address the diverse needs of individuals and foster equitable opportunities for all.

Ultimately, the study of genetics and environment underscores the complexity of human nature and the importance of considering multiple factors in understanding human development. By embracing this complexity and promoting interdisciplinary approaches, we can work towards creating a more inclusive and supportive society that nurtures the potential of every individual, regardless of their genetic makeup or environmental circumstances.

One key aspect of the discussion is the relative contributions of genetics and environment to various traits and behaviors. Studies have shown that certain characteristics, such as height and intelligence, are highly heritable, meaning that genetic factors play a significant role in their expression. However, the environment also plays a crucial role in shaping these traits. For example, while genes may predispose an individual to a certain level of intelligence, environmental factors such as access to education, socioeconomic status, and nutrition can either enhance or diminish this potential.

Moreover, the discussion extends to the role of gene-environment interactions in shaping outcomes across different contexts. Research suggests that individuals with certain genetic predispositions may be more susceptible to the effects of environmental influences, leading to differential outcomes based on the interaction between genes and environment. For instance, genetic factors may interact with early childhood experiences to influence the development of mental health disorders, highlighting the importance of early intervention and support.

Additionally, the discussion encompasses the implications of this interplay for education and human development. Recognizing the influence of both genetics and environment on learning and behavior, educators are increasingly adopting holistic approaches that address the diverse needs of students. By creating inclusive and supportive learning environments, educators can help mitigate the impact of genetic predispositions and nurture the potential of every individual.

Overall, the discussion surrounding genetics and environment underscores the complexity of human development and behavior. By acknowledging the interaction between nature and nurture, researchers, educators, and policymakers can work towards promoting equitable opportunities for all individuals, regardless of their genetic makeup or environmental circumstances.

References

1. Plomin, R., Deary, I. J., & Bouchard Jr, T. J. (2013). Genetics and intelligence differences: Five special findings. *Molecular Psychiatry*, 18(1), 98–108.
2. Turkheimer, E. (2000). Three laws of behavior genetics and what they mean. *Current Directions in Psychological Science*, 9(5), 160–164.
3. Moffitt, T. E., Caspi, A., & Rutter, M. (2006). Measured gene-environment interactions in psychopathology: Concepts, research strategies, and implications for research, intervention, and public understanding of genetics. *Perspectives on Psychological Science*, 1(1), 5–27.

4. Plomin, R., & Asbury, K. (2005). Nature and nurture: Genetic and environmental influences on behavior. *Annals of the American Academy of Political and Social Science*, 600(1), 86–98.
5. Guo, G., & Stearns, E. (2002). The social embeddedness of genetics: Methodological implications for the study of gene–environment interactions. *American Journal of Sociology*, 107(3), 722–746.
6. Bronfenbrenner, U. (1979). *The ecology of human development: Experiments by nature and design*. Cambridge, MA: Harvard University Press.



अधिगम या सीखना

डॉ० लोकेन्द्र सिंह
सह आचार्य, शिक्षा विभाग
निर्वाण विष्वविद्यालय जयपुर,
राजस्थान (भारत)
विनोद कुमार
शोधार्थी
निर्वाण विष्वविद्यालय जयपुर

अधिगम का अर्थ :-

सीखना एक बहुत ही व्यापक शब्द है। सीखना मनुष्य की जन्मजात प्रकृति है। जन्म के कुछ महीने बाद ही वह जिसके सम्पर्क में आता है, उन्हीं की क्रियाओं का अनुसरण करने लगता है। थोड़ा बड़ा होने पर वह जो कुछ भी नया देखता है, उसी के विषय के क्या, क्यों और कैसे जैसे प्रश्न करने लगता है और इस प्रकार अपने आस-पास की वस्तुओं एवं क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करता है।

प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में नए अनुभवों को एकत्र करता रहता है। ये नये अनुभव, व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। इसलिए यह अनुभव तथा इनका उपयोग ही सीखना या अधिगम करना कहलाता है। **The Change in behavior is called learning.** अधिगम का अर्थ व्यवहार परिवर्तन है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अधिगम ही शिक्षा है। अधिगम और शिक्षा एक ही क्रिया की ओर संकेत करते हैं। दोनों क्रियाएँ जीवन भर चलती रहती हैं। विद्यार्थी परिपक्वता की ओर बढ़ता हुआ, अपने अनुभवों का लाभ उठाता हुआ वातावरण के प्रति जो उपयुक्त प्रतिक्रिया करता है, वही अधिगम है।

मनुष्य के विकास की प्रक्रिया का अध्ययन करने पर मनोवैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुँचे कि मनुष्य कुछ कार्य तो स्वाभाविक रूप से करता है जैसे – साँस लेना, देखना, सुनना, पलक झपकाना, हाथ-पैर हिलाना, चलना, मुँह से ध्वनि निकालना। इसके अतिरिक्त कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें वह अपने शारीरिक एवं मानसिक विकास के साथ स्वयं करने लगता है।

वुडवर्थ के शब्दों में :- “नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया सीखने की प्रक्रिया है।”

क्रो एवं क्रो ने इसे थोड़े व्यापक रूप में लिया है :- “सीखना आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।”

सरटैन, नार्थ, स्ट्रेंज तथा चैपमेन के अनुसार :- “सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनुभूति या अभ्यास के फलस्वरूप व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तन होता है।”

जी० डी० बोआज के अनुसार :- “सीखना या अधिगम एक प्रक्रिया है। जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न आदतों, ज्ञान एवं दृष्टिकोण अर्जित करता है जो कि सामान्य जीवन की मांगों को पूरा करने के लिए आवश्यक हैं।”

थॉर्नडाइक के अधिगम (सीखने) के नियम :-

थॉर्नडाइक ने सीखने के नियमों की दो प्रकार से व्याख्या की है :-

1. मुख्य नियम
2. गौण नियम

● मुख्य या प्राथमिक नियम :-

- **तत्परता का नियम :-** इस नियम के अनुसार व्यक्ति में सीखने की तैयारी उसके कार्य को आसान बनाती है। व्यक्ति को सीखने के लिए मानसिक रूप से तैयार होना चाहिए। जब व्यक्ति किसी कार्य के लिए पहले से तैयार रहता है तो वह कार्य उसे आनन्द देता है।

- **अभ्यास का नियम** :- अभ्यास द्वारा किसी भी कार्य को अच्छी तरह सीखा जाता है। व्यक्ति जिस क्रिया को बार-बार करता है, उस क्रिया को शीघ्र सीख जाता है तथा जिस क्रिया को छोड़ देता है या लम्बे समय तक छोड़ देता है, वह उसे भूलने लगता है। इससे उद्दीपक और अनुक्रिया के संबंधों को और अधिक मजबूत किया जा सकता है।

**“करत-करत अभ्यास ते जड मति होत सुजान,
रसरी आवत जात ते सिला पर पडत निशान”**

अर्थात् अभ्यास करते रहने से मुखर् भी विद्वान हो जाता है।

- **प्रभाव का नियम** :- यदि व्यक्ति को सीखने के बाद सुख या संतोष महसूस होता है तो इससे उद्दीपन एवं अनुक्रिया के संबंध और अधिक मजबूत होते हैं एवं जिन कार्यों को करने के बाद दुःख या असंतोष महसूस हो तो सीखने से बने उद्दीपन-अनुक्रिया संबंध घटने शुरू हो जाते हैं।
- **अधिगम के द्वितीय या गौण नियम** :- मुख्य या प्राथमिक नियमों के अतिरिक्त थॉर्नडाइक ने अधिगम के गौण नियमों का प्रतिपादन भी किया है जो निम्नवत् है :-
 - **बहु-अनुक्रिया का नियम** :- जब कोई व्यक्ति किसी कार्य को सीखना प्रारम्भ करता है तो वह स्वाभाविक रूप से विभिन्न प्रतिक्रियाएं करता है। परन्तु धीरे-धीरे अपने प्रयासों के आधार पर वह अपनी समस्या का हल खोज लेता है। इससे उसे संतोष मिलता है। थॉर्नडाइक का प्रयत्न एवं भूल द्वारा सीखन का सिद्धांत इसी नियम पर आधारित है।
 - **साहचर्य परिवर्तन का नियम** :- इस नियम के आधार पर पूर्व सीखने से संबंधित परिस्थितियों का निर्माण किया जाना आवश्यक है। थॉर्नडाइक के अनुसार यदि बच्चों के सामने नवीन ज्ञान प्रदान करते समय उन्हीं परिस्थितियों का निर्माण कर दिया जाता है जो उनके पहले अनुभव के समय मौजूद थी तो इस प्रकार प्रभावी ढंग से सीखाया जा सकता है।
 - **आत्मीकरण का नियम** :- इस नियम का अर्थ है कि हम जो भी नया ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसे आत्मसात् कर लेते हैं। हम नवीन ज्ञान को अपने पूर्व ज्ञान (अनुभव) का स्थायी अंग बना लेते हैं। ज्ञात से अज्ञात की ओर का शिक्षण सिद्धांत इसी नियम पर आधारित है।
 - **मनोवृत्ति का नियम** :- इस नियम के अनुसार अधिगम का व्यक्ति की मनोवृत्ति से निकट का संबंध होता है। यदि व्यक्ति मानसिक रूप से किसी कार्य को करने के लिए तैयार नहीं है तो या तो व्यक्ति उसे करने में असफल होगा, यही कारण है कि शिक्षक प्रेरणा देकर छात्रों को नवीन ज्ञान को ग्रहण करने के लिए मानसिक रूप से तैयार करते हैं।
 - **आंशिक क्रिया का नियम** :- इस नियम के अनुसार व्यक्ति जिस कार्य को करना चाहता है उसे छोटे-छोटे भागों में विभाजित कर लेता है। इस प्रकार विभाजन कार्य को सरल और सुविधाजनक बना देता है। व्यक्ति छोटे-छोटे भागों को शीघ्रता और सुगमता से कार्य को पूरा कर लेता है।

अधिगम की विशेषताएं :-

1. निरन्तरता। 2 सार्वभौमिकता।

सीखने की यह प्रक्रिया सदैव और सर्वत्र चलती रहती है। इसलिए मनुष्य अपने जन्म से मृत्यु तक सीखता रहता है। उसके सीखने की प्रक्रिया में विराम और अस्थिरता की अवस्था कभी नहीं आती है। इतना अवश्य है कि सीखने की गति कभी तीव्र और कभी मंद हो जाती है। मनुष्य के सीखने का कोई स्थान और समय निश्चित नहीं होता है। वह हर समय और हर जगह कुछ न कुछ सीख सकता है। वह केवल विद्यालय में वरन् समाज, परिवार, पड़ोसियों, साथियों, सिनेमा, सड़क, प्राकृतिक वातावरण, पशु-पक्षियों, अपरिचित व्यक्तियों, वस्तुओं सभी से कुछ न कुछ शिक्षा

ग्रहण करता रहता है। इस प्रकार मनुष्य जीवन भर सीखता हुआ अपने व्यवहार में परिवर्तन करता हुआ जीवन में आगे बढ़ता चला जाता है।

1. व्यवहार में परिवर्तन अधिगम (सीखना) हैं।
2. अधिगम सार्वभौमिक हैं। यह सभी के लिए होता है।
3. अधिगम विकास की प्रक्रिया हैं।
4. अधिगम समायोजन की प्रक्रिया है।
5. अधिगम उद्देश्यपूर्ण होता है।
6. जीवन ज्ञान की खोज सीखना है।
7. अधिगम वातावरण की उपज है।
8. अधिगम अनुभवों का संगठन है।
9. सीखना सम्पूर्ण जीवन चलता है।
10. सीखने की प्रक्रिया समायोजन में सहायक होती है।
11. सीखना विवेकपूर्ण है।
12. सीखना चेतन व अचेतन दोनों के माध्यम से होता है।

सीखने के प्रकार :-

सीखने को कई श्रेणियों में बांटा जा सकता है :-

1. **गव्यात्मक सीखना :-** इस प्रकार के सीखने में क्रियाओं के स्वरूप और क्रियाओं की गति पर ध्यान दिया जाता है। साईकिल सीखना, गिटार सीखना, पियानों सीखना आदि गव्यात्मक सीखने के उदाहरण हैं।
2. **शाब्दिक सीखना :-** पशुओं का अधिकांश सीखना गव्यात्मक होता है जबकि मानव का सीखना अधिकांश शाब्दिक होता है। पठन सीखना (रटना) जिसे पाठशालीय शिक्षण कहा जाता है वह भी एक प्रकार का शाब्दिक सीखना है। इस प्रकार का सीखना संकेत, चित्र, शब्द, अंक अथवा वाणी के माध्यम से होता है। इस प्रकार के सीखने के लिए सार्थक और निरर्थक दोनों प्रकार की सामग्रियों का उपयोग किया जाता है।
3. **समस्या समाधान :-** इस प्रकार के सीखने में सीखने वाला अनेक प्रतिक्रियाओं में यही प्रतिक्रिया चुनकर क्रिया करता है। इस प्रकार के सीखने के प्रयत्न एवं भूल द्वारा सीखना भी सम्मिलित है। समस्या समाधान सीखने का जटिल रूप है। समस्या समाधान अनेकों परिस्थितियों में चिन्तन का भी रूप है। समस्या समाधान सबसे उच्च स्तर के सीखने का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार के सीखने में विभिन्न संज्ञानात्मक योग्यताओं की आवश्यकता पड़ती है :- चिन्तन, मनन, तर्क, विभेदीकरण, सामान्यीकरण, कल्पना, निष्कर्ष आदि।

सीखने को प्रभावित करने वाले कारक :-

अधिगम (सीखना) एक अर्जित प्रक्रिया है। अतः विभिन्न कारकों द्वारा प्रभावित होना स्वाभाविक है। सीखने को निम्नलिखित कारक प्रमुख रूप से प्रभावित करते हैं :-

विद्यार्थी से सम्बन्धित कारक :-

1. विद्यार्थी को सीखने की इच्छा व अनिच्छा विद्यार्थी के अधिगम को प्रभावित करती हैं।
2. विद्यार्थी की शैक्षिक योग्यता का भी अधिगम पर प्रभाव पड़ता है।
3. विद्यार्थी की महत्वाकांक्षा पर अधिगम की सफलता या असफलता निर्भर करती है।
4. विद्यार्थी की बौद्धिक क्षमता का अधिगम पर सीधा असर पड़ता है। तीव्र बुद्धि वाले बालक कम बुद्धि वाले बालकों की अपेक्षा शीघ्र सीख लेते हैं।
5. शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक स्थिति का सीधा सम्बन्ध अधिगम से होता है।
6. विद्यार्थी के अधिगम पर परिपक्वता का काफी प्रभाव पड़ता है।

अध्यापक से सम्बन्धित कारक :-

1. शिक्षक का किसी विषय का ज्ञान अनुभव तथा योग्यता आदि का विद्यार्थी के सीखने पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है।
2. विद्यार्थी के अधिगम पर शिक्षक के आचार-विचार और व्यवहार का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।
3. शिक्षण विधि जितनी अधिक प्रभावशाली तथा वैज्ञानिक होगी, उतनी ही सीखने के लिए लाभदायक होगी।
4. शिक्षक का मानसिक स्वास्थ्य विद्यार्थियों के अधिगम को प्रभावित करता है।

विषय वस्तु से सम्बन्धित कारक :-

1. विषय वस्तु का स्वरूप भी विद्यार्थी की अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करता है।
2. विद्यार्थी का पूर्व अधिगम जितना सुदृढ़ और व्यापक होगा, उसके ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया उतनी ही अधिक सुचारु ढंग से चलती है।
3. अधिगम अनुभवों का आयोजन, जीवने सम्बन्धित उदाहरण विषय वस्तु का आकार, विषय वस्तु को प्रस्तुत करने का ढंग आदि भी अधिगम को प्रभावित करते हैं।

वातावरण से सम्बन्धित कारक :-

1. अधिगम के लिए उचित मौलिक वातावरण जैसे – प्रकाश, स्वच्छ वायु, सफाई, बैठने की व्यवस्था आदि भी सीखने पर प्रभाव डालती हैं।
2. विद्यार्थी के सीखने में उनके पारिवारिक वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
3. सामाजिक एवं संवेगात्मक वातावरण का भी विद्यार्थी के अधिगम पर सीधा असर होता है।

शिक्षा मनोविज्ञान में अधिगम का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अध्यापक अथवा शिक्षण की समस्त क्रियाओं का एक ही उद्देश्य होता है, बालके के व्यवहार को समाज सम्मत बनाना। बालक समाज सम्मत व्यवहार तभी करेगा जब उसका व्यवहार इस योग्य हो जायेगा कि वह समाज में अपना समायोजन कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- वर्मा डा० प्रीति, श्रीवास्तव डा० डी०एन० – आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान (विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा)
- लाल रमन विहारी, जोशी सुरेश चन्द्र – शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी (आर लाल बुक डिपो, मेरठ)
- भटनागर सुरेश – शिक्षा मनोविज्ञान (आर लाल बुक डिपो, मेरठ)
- लक्ष्मी पब्लिकेशन हाउस रोहतक – अधिगम, अधिगमकर्ता और संज्ञान
- चौहन रीता – शिक्षा मनोविज्ञान एवं सांख्यिकी
- पाठक पी०डी० – शिक्षा मनोविज्ञान
- <https://mycoaching.in/adhigam>



Learning

(Meaning, Nature, and Modes of Learning)

Dr.Jaina Pandey
Assistant Professor
Unity Degree College
Lucknow

Introduction

Psychologists use a variety of theoretical perspective and approaches to study learning, such as constructivism, behaviourism, cognitive psychology, and social learning theory. These perspectives offer different explanations for how learning occurs, emphasizing factors such as reinforcement, conditioning, cognitive processes, social influences, and active construction of knowledge. At its core, learning is a fundamental aspect of human development and adaptation, enabling individuals to navigate their environment, solve problems, make decisions, and interact effectively with others. It encompasses a wide range of activities and experiences, from formal education and training programs to informal interactions, experimentation, and self-directed exploration.

Learning is often characterized by its dynamic and continuous nature, occurring throughout the lifespan and across various contexts. It involves processes such as attention, encoding, retention, retrieval, and application of information, which can be influenced by factors such as motivation, interest, prior knowledge, and environmental conditions. Ultimately, learning is a transformative process that enables individuals to grow, evolve, and thrive in a complex and ever-changing world. It is essential for personal development, professional success, and societal progress.

Meaning of Learning

Learning occurs when something is learned. Learning is the process of acquiring new skills. Learning is often understood as the process of changing behaviour through experiences, practice, and effort. Learning can be defined as the process of acquiring new knowledge, skills, behaviours, attitudes, or understanding through study, experience, interaction, or reflection. It involves the assimilation and integration of information into one's existing knowledge framework, resulting in changes in cognition, behaviour, or perception. Learning's primary goal is to acquire information that may modify people's behaviour through practice, interaction, and experience. Learning is any relatively permanent change in behaviour brought about by experience or practice. Almost all human behaviour is learned. **"Learning is the relatively permanent change in a person's knowledge or behaviour due to experience."**(Richard E. Mayer).

The term "relatively permanent" relates to the fact that when people acquire new knowledge, a portion of their brains physically changes to store the new information. This is basically a memory process because learning is impossible for humans if they are unable to recall what has happened. Research indicates that once humans learn something, it might exist in some physical form in memory; however definitive confirmation is still required.

Not all change comes through learning. Another type of transformation governed by a genetic blueprint is an increase in height or change in brain size. Growth is the term for this type of transformation, which is caused by biology rather than experience. Children learn to walk, for instance, when their nervous systems, muscular strength, and sense of

balance allow them to do so. These developmental processes are determined by maturation rather than by the amount of practice the children have had learning to walk. Despite the desires of some eager parents, no amount of experience or practice will assist the child walk until maturity allows it.

Definitions

Crow & Crow “Learning is the acquisition of habits, knowledge & attitudes. It involves new ways of doing things and it operates in individuals attempts to overcome obstacles or to adjust to new situations. It represents progressive changes in behaviour. It enables him to satisfy interests to attain goals.”

Hilgard, Atkinson and Atkinson (1979) “Learning may be defined as a relatively permanent change in behaviour that occurs as the result of prior experience.”

Gardener Murphy (1968) “The term learning covers every modification in behaviour to meet environmental requirements.”

In psychology, learning refers to a relatively permanent change in behaviour or mental processes resulting from experience. This definition emphasizes several key aspects:

- 1. Relatively Permanent Change-** Learning involves changes that endure over time. It's not just about temporary shifts in behaviour but rather about lasting alterations in how individuals think, feel, or act.
- 2. Behaviour or Mental Processes-** Learning can manifest in observable behaviours, such as acquiring new skills or habits, as well as in internal mental processes, such as changes in attitudes, beliefs, or cognitive strategies.
- 3. Resulting from Experience-** Learning occurs through experience, which can include direct interaction with the environment, observation of others, instruction, or reflection on one's own thoughts and actions.

All living things, including humans, possess specific abilities from birth. For example, a new-born baby may immediately take milk from its mother's breast. These abilities are referred to as instinctive behaviour. An individual must adapt to different life conditions as they mature. As a result, he or she needs to adopt new routines, expertise, attitudes, and abilities, etc. "Learning" is the process of gaining all of these things. That implies-

- Learning is the process of becoming competent by utilizing inherited resources; it is not something that is gained at birth.
- Temporary behavioural changes are not considered learning.
- Learning includes both changing one's behaviour by gaining negative things and changing one's behaviour by obtaining positive things in accordance with social norms. That is to say, while learning leads to changes in behaviour, these changes do not always lead to betterment or constructive progress.

Nature of Learning

- 1. Learning is a Continuous Process:** From the moment of birth, the child learns through experiences collected from their surroundings. As a result, learning continues throughout life. Learning can occur directly or indirectly, and it can be formal or informal. Learning results in the development of a learner's aptitudes, habits, abilities, and knowledge.
- 2. Learning is Change in behaviour:** Changes in behaviour are a measurable outcome of the learning process. This modification could have any shape. It might be desired or undesired. However, in a desired form, indicating all these adjustments ought to

go in a constructive direction. All three components of human behaviour are involved in learning. Thus, the mental process encompasses cognitive, emotional, and conative elements.

3. **Learning is a universal process:** The process of learning is universal. Anywhere can experience it. All living things go through a process of learning. People learn throughout their lives, regardless of their cultural background. Learning is the process of acquiring and applying knowledge that is offered to a person throughout their life. It is dynamic. A human never quits learning new things. It keeps one's mind engaged and aware while also making them aware of their surroundings.
4. **Learning is Goal-oriented and Purposive:** There is always a purpose to learning. When teaching, the teacher constantly keeps the students' learning objectives in mind, which makes it goal-oriented. The process of learning will not produce any tangible outcomes if we don't have goals. We can progress toward predetermined learning objectives by means of the learning process. The learner progresses toward a predetermined objective as he gets knowledge.
5. **Learning is the relationship between stimulus and Response:** In general; learning includes a stimulus-response relationship. If his response aligns with the work that needs to be learned. Through learning a person learns how to respond to stimuli related to their surroundings and other aspects of life.
6. **Learning is the fundamental process of Life:** Human progress cannot be accomplished without learning. It serves as the foundation upon which civilization and society are built.
7. **Learning is transferable:** One can apply the knowledge learned in one circumstance to another. The knowledge that gets acquired in one scenario helps with knowledge acquisition in another. It's referred to as the transmission of learning. The learner must take care to prevent previous knowledge from getting in the way of learning new things and experiences.
8. **Learning Facilitates the Achieving of Teaching-Learning Goals:** Learning and teaching situations have different goals, objectives, and purposes. The learning process support in accomplishing the teaching goals. The learning process contributes in accomplishing the teaching objectives. We expect that people's behaviour will change as they acquire learning. With the development of knowledge, understanding, interests, abilities, and attitudes, this transformation occurs. Thus, the learning process is essential for fulfilling teaching-learning objectives.
9. **Activities and environment encourage learning:** Interaction with the environment is important to further the learning process. The more children connect with their environment, the more they learn. When there is no engagement or activity the child's ability to learn is hindered. The children learn through these interactions. There are behavioural changes in the children as a result of these interactions.
10. **Learning is a development and advancement process:** Learning can happen in any way. These directions may be helpful or harmful. The goal of learning is to guide the person's development in the direction that we want it to go. We don't want our children to take up bad habits like pickpocketing or stealing. Thus, learning ought to result in gradual modifications to the student's behaviour.

11. **Learning is much more than just thinking:** Learning includes not just intellect but the entire personality, including senses, feelings, intuition, beliefs, values, and willpower. Without the desire to learn, we are unable to do so, and once we do, our lives transform in some way. The learning may not mean much if it has no impact.
12. **Learning is the Process of Information Acquisition:** Acquiring information, knowledge, insight, and skills are the process of learning. It happens as a result of how the individual interacts with their surroundings.
13. **Organizing experiences leads to learning:** Getting new experiences is a fundamental component of learning. New experiences cause learners' behaviours to change. The learner's prior experiences shape their current learning opportunities.
14. **Learning does not include behavioural changes** brought on by drug use, disease, aging, or exhaustion.
15. **There is no learning from instincts and reflexes:** Behaviour changes based on intrinsic reaction tendencies, such as reflexes and instincts (such as an infant's habit of sucking, blinking in the presence of bright lights) cannot be linked to learning.

Learning Process

Learning is a process. This is accomplished in a series of stages. The process of learning Process includes-

1. **A motive**
2. **An Alluring Goal**
3. **An Obstacles to achieving the Goal**
 1. **A Motive:** The dynamic energy that drives behaviour and compels people to take action is known as their motive. Every action we take is motivated by our needs or desires. When our need is sufficiently overwhelming, we are forced to work towards fulfilling it. Learning occurs as a result of a reaction to some stimulus. As long as our current behaviour, knowledge, skills and abilities are sufficient to meet all our demands, we do not feel the need to modify our way of behaving or acquire new knowledge and abilities. A learner is motivated to start learning something by this need.
 2. **An Alluring Goal:** Each person needs to have a clear objective that they want to accomplish. To achieve anything, we have to constantly keep a clear objective in mind. Setting clear goals makes learning engaging and purposeful.
 3. **An Obstacles to achieving the Goal :** In the learning process, the obstacles, obstructive factor, or barrier plays equal importance. The hurdles or obstacles prevent us from achieving the objective. You won't change your current behaviour, knowledge foundation, or skill set if you have no difficulty at all achieving the objective. Consequently, overcoming the obstacle or block is a crucial stage in the learning process.

Modes of Learning

Many abilities are instilled in us from birth, such as the ability to speak, reach out and grab objects, stand up and move forward without assistance, and so on. Subsequently, we eventually acquire more sophisticated abilities and develop the capacity to handle a variety of issues. As a result, learning gradually progresses from basic to more complex forms, such as problem solving. All types of learning cannot be acquired in a single way.

(A) Learning by Observation

A fundamental requirement for all forms of learning is observation. Here, "observation" refers to the process of seeing or observing the stimuli rather than just "seeing" something. Hence, in addition to just using our eyes to "see," we also employ all of our senses when making observations. It is possible to register the existence of a stimulus by using our senses of touch, smell, taste, hearing, and vision.

We frequently employ "attention" to help our students learn more quickly. Children's interest increases when we engage them with content in the classroom and use tangible objects, pictures, photographs and modules, among other things. But this kind of curiosity is basic, and we shouldn't limit ourselves to only this kind of interest. Only when students are given a chance to see novel events and contribute variety to our lessons can interest be maintained. They feel bored if we try to maintain their interest and use the same things over and over again. We can assist children focus their attention for longer periods of time and hence learn more regarding the concept if we motivate them to focus on different aspects of what they are learning.

(B) Learning by Imitation

Learning by Imitation Similar to observation, the child's natural inclination is also towards imitation. The tendency to observe and copy the behaviours of others is known as imitation. The infant initially learns his gestures, actions, and movements through imitation. Children have a very strong ability to imitate, and you have to notice that they like doing so. Through imitation of moving picture demonstrations of skilful performance, children acquire a variety of athletic, industrial, and professional skills as they grow up. In learning, modelling is also very beneficial. Imitating famous people is a part of modelling; for example, a student may copy the famous cricket player Sachin Tendulkar's movements right away. Ideation can also refer to the creation of novel objects or behaviours. Teachers ought to offer their students the chance to grow as individuals. It is best to capitalise on or emphasise their creative tendencies.

(C) Learning by Trial and Error

Trial and error are the ways we learn in various circumstances. Here, we try several times to solve a specific task or issue and discover that trying more times pays off. Specific stimulus-response relationships are strengthened by the rewarding sense of rewards, and practice drives out failed attempts. The foundation of this kind of learning is connectionism, as proposed by Thorndike. It suggests that particular stimuli are associated with particular reactions due to conditioning. Random trial and error establishes the relationships between stimuli and reactions. Regarding classroom instruction, the law has an enormous effect. Children's vocabulary and memorization skills can be developed with their assistance when teachers use them effectively.

Trial and error learning is governed by a number of laws, including the laws of exercise, readiness, and effect. Regarding the law of exercise, Thorndike started to believe that rewards and punishments have different and opposing effects. While punishment does not decrease the relationship to the same extent as reward, it does increase it significantly. Reward affects learning more quickly and intensely than punishment. . Moreover, rewards help in developing the personality of children in a positive and healthy manner. Thorndike thus began to place more emphasis on praise and rewards rather than criticism and punishment.

(D) Learning by Insight

The majority of human learning occurs not only via imitation or observation but also from problem-solving activities that individuals encounter in daily life. If someone suddenly discovers the solution while working through an issue, we say that person received

insight. In actuality, the person finds the remedy by comprehending how several elements of the difficult circumstance relate to one another. In everyday conversation, we use expressions like "seeing the point" or "getting the idea" to characterise the process of learning.

Gestalt psychologists introduced the concept of learning by insight. Gestalt is a word denoting form, shape, or arrangement. To better understand the process of insight and learning we look at Kohler's well known chimpanzee and banana experiment. There was a chimpanzee in a cage. Some bananas were placed on one side of the cage outside. The chimpanzee was starving, and his long arms were unable to reach the banana bunch. Inside the cage, a few sticks were kept close to the entrance. Initially, chimpanzee attempted to grab bananas from their hands. It was unsuccessful. He seemed to be pondering over the issue as he sat in a corner after multiple unsuccessful tries. He jumped, grabbed a stick, and pulled the bananas towards him at once. Kohler conducted the experiment again with a few changes to the design. Based on his research, he provided the following analysis of the insight-learning process:

- The learner perceives the situation as a whole.
- He examines all of the situation's components and tries to build a meaningful connection between them. He redefines the situation based on this new understanding.
- This process continues until he suddenly resolves the troubling situation. When we state that a learner "suddenly gets an insight into the solution," we mean just that.

Conclusion

In psychology, learning involves the ability to adapt to changes in the environment or circumstances. Individuals learn to adjust their behaviour, thoughts, and emotions based on new information and experiences. Learning often occurs through the association of stimuli or responses with specific outcomes. Reinforcement plays a crucial role in learning by strengthening associations between behaviours and their consequences. It also involves cognitive processes such as attention, memory, and problem-solving. Cognitive theories of learning, including those proposed by Jean Piaget and Lev Vygotsky, emphasize the role of mental processes in understanding and applying new information.

References

1. Aggarwal, J.C. (2008). Psychology of learning and development. New Delhi: Shipra Publications.
2. Aggarwal. J. C.(2007).Essentials of Educational Psychology (second edition). Vikash publishing House Pvt. Ltd. Noida (U, P.)
3. Bhatia, H. R. (1986). Orient Longmen Ltd.: Elements of educational psychology, (Fifth edition) . Hyderabad
4. Chauhan, S. S. (2007). Advanced Educational Psychology (Seventh Edition). Vikash Publishing House Pvt. Ltd., Noida, (U.P).
5. Kulshrestha, S.P. (1994). Assessing the Non-Scholastic Behaviour of Learning, Association of Indian Universities, New Delhi.
6. Mathur, S. S. (1996).Educational Psychology. Vinod Pustak Mandir, Agra.
7. Mangal, S. K.(2001).Educational Psychology. Prakash Brothers, Tandon publications. Ludhiana.

8. Mangal, S.K. (2002).Advanced educational psychology (2nded.). New Delhi: Prentice-Hall of India.
9. Sharma. R. A. (2001).Fundamentals of Educational Psychology (Third edition).Surya Publication, Meerut.
10. <https://gcwgandhinagar.com/econtent/document/1587181853LEARNING.pdf>
11. [https://igntu.ac.in/eContent/BEd-02Sem-DrShikhaBanarji teaching%20and%20learning.pdf](https://igntu.ac.in/eContent/BEd-02Sem-DrShikhaBanarji%20teaching%20and%20learning.pdf).
12. <https://thelearningcoach.com/learning/10-definitions-learning/>



Learning: Planting the Seeds of Knowledge

Ms. Prerna A. Baria
Assistant Professor
Som-lalit College of Education
Gujarat University

Introduction

Learning. It's a word that encompasses a vast and ever-evolving. It's the spark that ignites curiosity, the fuel that propels us through life's experiences, and the foundation upon which we build our understanding of the world. From the wide-eyed wonder of a child grasping their first words to the seasoned scholar delving into complex theories, learning is a lifelong process that shapes who we are and what we can achieve. This chapter serves as a guide to this enriching journey. It will explore the fertile ground where learning takes root, examining the different ways knowledge is acquired and the diverse paths it takes. It will delve into the fascinating science behind learning, uncovering the intricate mechanisms that allow our brains to absorb, process, and retain information. It will discover the various learning styles that colour our experiences, and explore strategies to cultivate a love for learning that transcends classrooms and textbooks.

The world is a vast and ever-evolving tapestry, with new knowledge and experiences waiting to be discovered at every turn. As we embrace the lifelong pursuit of learning, we cultivate a sense of intellectual curiosity that keeps our minds sharp, our spirits engaged, and our lives enriched. So, let us continue to plant the seeds of knowledge, nurture them with an inquisitive spirit, and watch as they blossom into a garden of wisdom and understanding.

Concept and meaning of Learning

The concept of learning encompasses the multifaceted process of acquiring new knowledge, skills, and behaviors. It's not simply the accumulation of facts; it's a dynamic transformation that shapes our understanding of the world and influences our actions (Ambrose et al., 2010). This process is rooted in the human brain's remarkable ability to adapt and form new connections between neurons (Pascual-Leone et al., 2005). Imagine a child learning to ride a bike. Initially, the process feels awkward and requires focused attention. However, as the child practices, their brain strengthens the neural pathways associated with balance, coordination, and steering. This ongoing process of neural reinforcement ultimately leads to the mastery of cycling.

Learning manifests in various ways, with both formal and informal avenues for knowledge acquisition. Formal learning often occurs in structured environments like classrooms, where individuals gain knowledge through lectures, discussions, and guided practice (Sitzmann & Ely, 2011). For instance, a student enrolled in a biology class might learn about cellular respiration through interactive diagrams, group discussions, and laboratory experiments. Informal learning, on the other hand, is the more organic process of gaining knowledge from everyday experiences (Desigur, 2019). Take, for example, an individual following a new recipe. Through trial and error, they learn the importance of ingredient measurements, cooking techniques, and adjusting flavors to their preference. But learning isn't a passive process. We actively engage with information, building upon

existing knowledge structures to create new understanding. There are multiple avenues for this engagement, each with its own unique flavor. Formal learning, often associated with classrooms and structured environments, provides a framework for acquiring knowledge in specific disciplines. Through lectures, discussions, and guided practice, learners develop a strong foundation in various subjects. Informal learning, on the other hand, is the more organic process of acquiring knowledge from everyday experiences. It could be anything from cooking a new recipe to navigating a new city, from tinkering with a gadget to deciphering a loved one's emotional cues.

Learning isn't always a smooth and linear path. Sometimes, it involves overcoming challenges and learning from mistakes. A budding musician might practice a difficult piece of music for weeks, encountering frustrating moments of dissonance and missed notes. However, through perseverance and analysis of their errors, they refine their technique and eventually master the piece. This highlights the role of "productive failure" in learning, where mistakes serve as stepping stones to improvement (Yeager & Dweck, 2012).

The effectiveness of learning is significantly influenced by individual learning styles. Some learners excel in interactive environments, thriving on discussions and group activities (Kellner, 1980). Others find their niche in independent study, preferring to absorb information through self-paced reading and reflection (Felder & Silverman, 1988). Additionally, learners benefit from recognizing their sensory preferences. Visual learners grasp concepts best through diagrams and illustrations, whereas auditory learners excel with lectures and explanations (Riding & Dunn, 1999).

The fertile ground for learning begins with the human brain, a biological marvel capable of phenomenal feats of information processing. It's here that the seeds of knowledge are planted, taking root in a network of neurons that communicate through electrical impulses. Sensory input, whether visual, auditory, or tactile, triggers these impulses, creating connections between neurons. As these connections strengthen through repeated exposure, memories are formed, and knowledge solidifies.

Definitions of Learning

“A relatively permanent change in a person's knowledge or behavior due to experience.”

(Robert M. Gagné)

“The process of gaining knowledge and skills and having them readily available from memory so you can make sense of future problems and opportunities.” **(R.M. Smith)**

“A change in human disposition or capability that persists over a period of time and is not simply ascribable to processes of growth.” **(Robert M. Gagné)**

“The act or experience of one that learns.” **(Merriam-Webster)**

“Knowledge or skill acquired by instruction or study.”

“Learning as the transformative process of taking in information.” **(NURA)**

“A process that leads to change, which occurs as a result of experience.” **(Ghina**

Raudhatul Jannah)

“Process of gaining knowledge and expertise.” **(Romharshp Panthi)**

“Learning is a permanent change in behavior as a result of experience.” **(Wasini)**

“Learning is used to refer to (1) the acquisition and mastery of what is already known about something, (2) the extension and clarification of meaning of one's experience, or (3) an organized, intentional process of testing ideas relevant to problems”

As we sum up all the definitions, the learning multifaceted and dynamic, encompassing the acquisition of knowledge, skills, and behaviors. It thrives through a combination of formal and informal experiences, shaped by individual learning styles and the ability to learn from mistakes. By nurturing a love for learning and embracing its diverse forms, we cultivate a lifelong journey of growth and intellectual enrichment.

However, the path to knowledge isn't always linear. Sometimes, we learn through trial and error, encountering mistakes that serve as valuable lessons. Other times, we learn through observation, mimicking the actions and behaviors of others. Social learning, a powerful force in human development, allows us to absorb knowledge and skills from our interactions with peers, mentors, and role models. The way we learn is as unique as we are. Some individuals thrive in environments brimming with interaction and discussion, while others prefer the quiet solitude of independent study. Visual learners benefit from diagrams and illustrations, while auditory learners grasp concepts best through lectures and explanations. Kinesthetic learners, on the other hand, learn best by doing, through hands-on activities and practical experiences. Recognizing and embracing these individual learning styles is crucial for fostering a love of learning that lasts a lifetime.

Beyond these styles, there are a plethora of strategies that can enhance the learning experience. Active learning, where learners engage with the material through activities like discussions, problem-solving, and application, is far more effective than passive reception. Mnemonics, techniques to aid memory like acronyms or rhymes, can be helpful for retaining information. Additionally, creating a positive learning environment that fosters curiosity, experimentation, and a sense of accomplishment goes a long way in keeping learners motivated.

Learning, however, is not merely about accumulating facts and figures. It's about developing critical thinking skills, the ability to analyze information, evaluate arguments, and form well-reasoned conclusions. It's about fostering creativity, problem-solving capabilities, and the ability to adapt to new situations. Ultimately, learning equips us to navigate the complexities of life, to contribute meaningfully to society, and to become well-rounded individuals with a thirst for knowledge and a passion for growth.

Characteristics of Learning

Learning is a cornerstone of human experience, a dynamic process that shapes who we are and propels us forward. But what exactly defines learning? It's not a singular act, but rather a tapestry woven from several key characteristics. Let's delve deeper into these characteristics to gain a richer understanding of this fascinating journey.

- 1. Active Process:** Learning isn't passive absorption of information. It requires active engagement and participation from the learner. This can involve asking questions, participating in discussions, solving problems, or applying knowledge in practical ways. Imagine a student in a history class not just memorizing dates and names, but actively analyzing primary sources, engaging in debates, and creating timelines to understand historical events. Through active participation, the student constructs a deeper understanding of the past.
- 2. Lifelong Pursuit:** Learning is not confined to classrooms or textbooks. It's a lifelong pursuit that unfolds across our entire lifespan. From the moment we're born, we're constantly acquiring new knowledge and skills, whether it's mastering our first steps as infants or navigating the complexities of social interactions as adults. A seasoned chef, for instance, might continue to learn new cooking techniques through online courses or experimenting with exotic ingredients. Learning is a continuous evolution, enriching our lives at every stage.
- 3. Constructive Process:** New knowledge doesn't exist in a vacuum. We build upon existing knowledge and experiences to construct new understanding. It's like adding new threads to a tapestry, where each strand informs and strengthens the whole. A student learning about photosynthesis in biology class might draw connections to their prior knowledge of plant structures and the role of sunlight in

energy production. By integrating new information with existing knowledge, they develop a more comprehensive understanding of the concept.

4. **Experience-Driven:** Our experiences are potent catalysts for learning. We learn through trial and error, by observing others, by interacting with the world around us. A child learning to ride a bike experiences the joy of success and the sting of failure, ultimately internalizing the necessary balance and coordination. Traveling to a new country exposes us to different cultures and customs, broadening our worldview. Every experience, positive or negative, shapes our knowledge and understanding.
5. **Context-Dependent:** The effectiveness of learning is significantly influenced by the context in which it occurs. A student studying for an exam in a quiet, well-lit environment is likely to retain information better than one cramming in a noisy, distracting space. Similarly, an individual learning a new language might find it easier to pick up conversational phrases while immersed in a foreign culture compared to studying grammar rules in isolation. The environment and our emotional state play a crucial role in how effectively we learn.
6. **Goal-Oriented:** Learning is often driven by goals and aspirations. We might be motivated to learn a new skill for career advancement, a new language to connect with loved ones, or a new musical instrument for personal enrichment. Having a clear purpose in mind fuels our focus and perseverance throughout the learning process.
7. **Change-Inducing:** At its core, learning is about change. It's about transforming our understanding of the world, acquiring new skills, and adapting our behaviors. This change can be internal, reflected in our thought processes, or external, manifested in our actions. A person learning about healthy eating habits might not only gain knowledge about nutrition but also change their dietary choices to live a healthier lifestyle.
8. **Individualized Journey:** While there are universal principles of learning, the process itself is highly individualized. We each have unique learning styles, preferences, and strengths. Some learners thrive in social settings, while others prefer solitary study. Some learn best visually, while others benefit from auditory explanations. Recognizing and catering to these individual differences is vital for optimizing the learning experience.
9. **Error-Incorporating:** Mistakes and failures are inevitable aspects of the learning journey. They are not roadblocks, but rather stepping stones to growth. Through trial and error, we experiment, identify what doesn't work, and refine our approaches. A scientist conducting research might encounter unsuccessful experiments, yet these failures provide valuable insights and ultimately contribute to the advancement of knowledge. Embracing mistakes as opportunities for learning fosters resilience and a growth mindset.
10. **Social Dimension:** Learning is not a solitary endeavor. We learn from and alongside others through collaboration, observation, and interaction. A student might learn valuable teamwork skills through group projects. A musician might refine their technique by observing a master performer. Social interaction fosters knowledge sharing, peer support, and the development of important social skills.

Philosophy and Learning

Learning and philosophy are intricately interwoven threads in the tapestry of human intellectual development. Learning provides the foundation upon which philosophy builds its grand structures of thought. Through the acquisition of knowledge and skills in various disciplines, we gather the raw materials – facts, concepts, and experiences – that fuel philosophical inquiry. Reading historical accounts, studying scientific principles, and analyzing literary works equip us with the tools to grapple with fundamental questions about existence, knowledge, and morality.

Philosophy, in turn, shapes the way we learn. It fosters critical thinking skills, teaching us to question assumptions, analyze arguments, and evaluate evidence. Philosophical frameworks like empiricism and rationalism guide our approach to acquiring knowledge, pushing us to consider the validity of our senses and the power of logic. By examining different philosophical schools of thought, we learn to appreciate the complexity of issues and develop well-reasoned arguments. Furthermore, the pursuit of knowledge often leads us to philosophical questions. As we delve deeper into scientific or historical studies, we encounter paradoxes, inconsistencies, and unanswered questions that spark philosophical inquiry. For instance, studying physics might lead us to ponder the nature of reality and the existence of time. Similarly, exploring history might provoke questions about ethics, justice, and the role of the individual in society.

Ultimately, the interrelationship between learning and philosophy fosters intellectual growth and personal development. Learning provides the fuel for philosophical inquiry, while philosophy guides us in how to learn more effectively. This dynamic duo equips us to not only acquire knowledge but also to understand its meaning, implications, and limitations. It empowers us to think critically, challenge assumptions, and navigate the complexities of the world around us, making us more well-rounded and intellectually curious individuals.

Factors affecting Learning

The journey of learning is woven from threads of various influences. These factors, both internal and external, significantly impact the way we acquire, process, and retain knowledge. Let's delve into some of the key players that shape the learning experience.

Internal Factors:

- **Cognitive Abilities:** Our inherent intellectual capabilities, such as memory, attention span, and problem-solving skills, play a crucial role in learning. Individuals with strong working memory can hold information readily available for manipulation, while those with exceptional focus can concentrate on complex tasks for extended periods.
- **Motivation:** The drive to learn is a powerful internal motivator. Intrinsic motivation, fueled by curiosity and a desire for knowledge, fosters a deeper engagement with the learning process. Extrinsic motivation, driven by external rewards or punishments, can also be effective, but may not lead to sustained learning.
- **Learning Styles:** We each have unique preferences for how we absorb information. Visual learners excel with diagrams and illustrations, auditory learners benefit from lectures and explanations, and kinesthetic learners thrive through hands-on activities. Recognizing and catering to these individual styles optimizes learning.
- **Prior Knowledge and Experiences:** Our existing knowledge base serves as the foundation upon which new information is built. A student with a strong understanding of basic geometry will grasp more advanced concepts with greater

ease. Similarly, personal experiences can shape learning. A student who has traveled extensively might find it easier to learn about different cultures.

- **Emotional State:** Our emotional well-being significantly impacts learning. Stress, anxiety, and depression can hinder focus and concentration. Conversely, a positive and motivated emotional state fosters openness to new ideas and a willingness to engage with the learning process.

External Factors:

- **Teaching Methods and Strategies:** The way information is presented can dramatically impact learning. Effective teachers employ diverse teaching methods, cater to different learning styles, and create a stimulating and interactive learning environment.
- **Learning Environment:** The physical and social surroundings play a crucial role. A well-lit, quiet space with minimal distractions is conducive to focused learning. However, a highly social environment might be beneficial for collaborative learning activities.
- **Social Interactions:** Learning is a social endeavor. Collaboration with peers, discussions with mentors, and the exchange of ideas can significantly enhance understanding. Supportive social circles can provide encouragement and motivation, while exposure to diverse perspectives broadens our knowledge base.
- **Technology:** Technology can be a powerful tool for learning, offering access to vast resources, interactive simulations, and personalized learning platforms. However, it can also be a source of distraction if not used judiciously.
- **Socioeconomic Background:** Socioeconomic factors can influence access to quality education, learning resources, and a supportive learning environment. These factors can create disparities in learning opportunities, highlighting the importance of equitable access to quality education.

Importance of Learning

The importance of learning transcends the mere accumulation of facts and figures. It's the cornerstone of human progress, the fuel that propels us forward as individuals and societies. Let's discuss why learning is vital in every aspect of our lives:

- **Empowerment and Personal Growth:** Learning equips us with the knowledge and skills necessary to navigate the complexities of life. It allows us to solve problems, make informed decisions, and pursue our goals. Mastering a new language opens doors to new cultures and opportunities. Understanding financial literacy empowers us to manage our finances effectively. Learning a new skill, whether it's coding or playing a musical instrument, fosters a sense of accomplishment and boosts self-confidence.
- **Adaptability and Innovation:** The world is constantly evolving, and learning allows us to adapt to change. Whether it's embracing new technologies, adjusting to new work environments, or navigating life's unexpected challenges, continuous learning keeps us relevant and resilient. It fosters creativity and innovation, allowing us to develop new solutions to complex problems and contribute to advancements in various fields.
- **Critical Thinking and Problem-Solving:** Learning hones our critical thinking skills, teaching us to evaluate information objectively, identify biases, and form well-reasoned arguments. This empowers us to make sound decisions, both

personally and professionally. By learning from diverse perspectives, we develop empathy and tolerance, fostering a more harmonious society.

- **Lifelong Fulfillment and Well-being:** Learning is a never-ending journey that keeps our minds sharp and our spirits engaged. It fosters curiosity and a sense of wonder, enriching our lives with new experiences and perspectives. Whether it's delving into history, exploring the wonders of science, or appreciating the beauty of art, learning keeps our minds active and combats cognitive decline.
- **Contribution to Society:** A well-educated and continuously learning populace forms the bedrock of a thriving society. Learning fosters civic engagement, encouraging individuals to participate actively in their communities. It equips us with the knowledge to tackle societal challenges, from environmental issues to social inequalities. By sharing our knowledge and skills, we empower others and contribute to a collective betterment.

Summary

This chapter explores the multifaceted concept of learning, highlighting its importance throughout our lives. Here are the key takeaways:

- **What is Learning?** Learning is the dynamic process of acquiring knowledge, skills, and behaviors. It's not just memorization, but a transformation that shapes our understanding of the world (going beyond facts). The human brain's ability to form new connections between neurons is fundamental to this process.
- **Formal vs. Informal Learning:** We learn through both formal channels (structured environments like classrooms) and informal experiences (everyday interactions). Formal learning provides a strong foundation in specific subjects, while informal learning allows us to acquire knowledge organically from daily life.
- **Learning Styles:** Individual differences play a significant role. Some learners thrive in social settings (discussions, group activities), while others prefer independent study (reading, reflection). Additionally, visual learners benefit from diagrams, auditory learners excel with explanations, and kinesthetic learners learn best by doing.
- **Overcoming Challenges:** Learning isn't always smooth. We learn from mistakes ("productive failure") and by overcoming challenges, like a budding musician refining their technique through trial and error.
- **The Importance of Curiosity:** A love for learning fuels the journey. Curiosity and a questioning spirit keep us engaged and foster a lifelong pursuit of knowledge.
- **Characteristics of Effective Learning:** Active engagement (discussions, problem-solving), utilizing appropriate strategies (mnemonics), and fostering a positive learning environment are crucial for effective learning.
- **Learning Beyond Facts:** Learning equips us with critical thinking skills, problem-solving abilities, and the capacity to adapt to new situations. Ultimately, it empowers us to navigate life's complexities and contribute meaningfully to society.
- **Interrelationship with Philosophy:** Learning and philosophy are intertwined. Learning provides the foundation for philosophical inquiry, while philosophy guides us in how to learn more effectively. This duo allows us to understand the meaning and implications of knowledge.
- **Factors Affecting Learning:** Both internal (cognitive abilities, motivation, learning styles, prior knowledge, emotional state) and external factors (teaching

methods, learning environment, social interactions, technology, socioeconomic background) influence how we learn.

Importance of Lifelong Learning: Learning is not confined to classrooms. It's a continuous journey that fosters personal growth, empowers us to adapt and innovate, equips us with critical thinking skills, and contributes to our overall well-being. A well-educated and continuously learning society is the bedrock of progress.



संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्त

डॉ० विशेष श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर (शिक्षाशास्त्र)
मड़ियाहूँ पी०जी० कालेज
जौनपुर, उत्तर प्रदेश

प्रस्तावना

मनुष्य के व्यवहारों में अधिगम की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। यह व्यक्ति के अनुभव के फलस्वरूप होने वाले व्यापक परिवर्तनों की श्रृंखला को द्योतित करता है। अधिगम को हम अनुभवों के कारण व्यवहार में अथवा व्यवहार की क्षमता में होने वाले अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तनों के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। व्यवहारों में कुछ परिवर्तन दवाओं के उपयोग अथवा मकान के कारण भी घटित होते हैं। ये परिवर्तन अस्थायी होते हैं। इनको अधिगम नहीं माना जा सकता है। उन परिवर्तनों को ही अधिगम माना जाता है जो अभ्यास और अनुभव के कारण होते हैं और जो अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन अपने जीवन में नए अनुभवों को एकत्र करता रहता है जिनके अन्तर्गत व्यक्ति के व्यवहार में अनुभव अभ्यास प्रशिक्षण के अन्तर्गत उसके अंदर परिवर्तन इंगित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में कुछ न कुछ सीखता है जिस व्यक्ति में सीखने की जितनी शक्ति होती है उतना ही अधिक उसके जीवन का विकास होता है। बालक प्रत्येक समय और पृथ्वी पर किसी न किसी स्थान पर कुछ न कुछ सीखता रहता है।

परिभाषा—

स्किनर के अनुसार—“सीखना व्यवहार में उतरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है”

गिलफोर्ड—“व्यवहार के कारण व्यवहार में परिवर्तन ही सीखना है।”

क्रो एवं क्रो—“अपनी आदतों ज्ञान तथा अभिद्रन्तियों का अर्जन ही अधिगम है।”

2—अधिगम की विशेषताएँ —Characteristics of learning

1. अधिगम मानव में विकास लाता है।
2. अधिगम समायोजन कराता है।
3. अधिगम द्वारा अनुभवों का संगठन करता है।
4. अधिगम उद्देश्यपूर्ण होता है।
5. अधिगम मानव में विवेकपूर्ण व सृजनशील क्षमता का विकास करता है।
6. अधिगम एक क्रियाशील पक्ष है।
7. अधिगम में व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों पक्ष होते हैं।
8. अधिगम द्वारा व्यक्ति के व्यवहार व आचरण को संगठित व प्रभावित करता है।
9. अधिगम कठिन से सरल की ओर होता है—जब तक कोई नई विषय वस्तु उसके लिए सरल होती है तो वह उसके लिए कठिन होता है। जब शिक्षार्थी अधिगम कर लेता है तो वह विषय वस्तु उसके लिए सरल हो जाती है इसलिए अधिगम कठिन से सरल की ओर होता है।
10. जीवन लक्ष्यों की पूर्ति में सहायता मिलती है।

3—अधिगम के प्रकार —Types of learning

3.1—अधिग्रहण सीखना (Reception learning)

सामग्री शिक्षार्थी को बोलकर या लिखकर दी जाती है।

3.2—अन्वेषण सीखना (Discovery learning)

इसमें शिक्षार्थी को दी गई सामग्री में से नए सम्प्रत्यय या विचार खोजकर सीखना होता है।

3.3—रटकर सीखना (Rite learning)

सामग्री को बार—बार दोहरा कर सीखना होता है।

3.4—अर्थपूर्ण सीखना (Meaningful learning)

सीखी जाने वाली सामग्री को समझकर तथा पूर्ण ज्ञान से सम्बन्ध जोड़कर सीखना।

3.5—शाब्दिक अधिगम (Verbol learning)

शाब्दिक अधिगम से तात्पर्य शब्द भंडार, भाषा, कौशल तथा भाषायी विषय वस्तु पर आधारित विषय वस्तु को सीखने से है।

3.6—गत्यात्मक अधिगम (Dynamic learning)

गत्यात्मक (गायक) अधिगम से तात्पर्य शरीर के विभिन्न अंगों के संचालन में तथा शारिरिक कौशलों में निपुणता अर्जित करने से है। जैसे नृत्य करना, कार चलाना, घुड़सवारी, व्यायाम करना आदि।

3.7—समस्या समाधान अधिगम (Problem solving learning)

इसमें शिक्षार्थी को दी गई सामग्री में से नए सम्प्रत्यय या विचार खोजकर सीखना होता है।

4.0—अधिगम के सिद्धान्त (Theory of learning)

4.1—संज्ञानात्मक सिद्धान्त (Connitive coorning)

अधिगम का संज्ञानात्मक सिद्धान्त—जीन पियाजे की अवधारणा

(Connitive theory of learing-Concept of Jean Piaget)

पियाजे ने संज्ञानात्मक अधिगम की व्याख्या करते हुए यह कहा है कि संज्ञान प्राणी का वह ज्ञान है जिसे वह वातावरण में सक्रिय रूप से व्यवहृत होकर अर्जित करता है। इन्होंने संज्ञान को क्रिया पर आधारित ज्ञान कहा है। शिशु शुरु में माँ के स्तन को ढूँढ़कर छूकर तथा उसका पान करके ही उसके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करता है। इन क्रियाओं के कारण शिशु में माँ के स्तन से सम्बन्धित ज्ञान की जानकारी प्राप्त करता है।

पियाजे ने अपने सिद्धान्त में कुछ उपयोगी संप्रत्ययों का उल्लेख किया है जिसकी जानकारी संज्ञानात्मक अधिगम के विकास को समझने हेतु जरूरी है।

4.3.1—संज्ञान—संक्रिया— (Cognitive Process)

पियाजे ने यह बताया है कि जन्म से ही बालक में प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, चिन्तन, तर्क आदि की क्रियाएँ पाई जाती हैं तथा जीवन पर्यन्त चलती रहती हैं। ये क्रियाएँ अधिगम के विकास की किसी अवस्था में पहुँचकर न तो समाप्त होती हैं एवं न बदलती हैं। पियाजे ने इन क्रियाओं को अपरिवर्तनशील एवं अवस्थायुक्त माना है, क्योंकि अधिगम अर्जन की सम्पूर्ण अवधि में ये समान रूप से चलती हैं।

4.3.2—संज्ञान—संरचना— (Cognitive Structure)

इस अवस्था में बालक की सभी क्षमताएँ, योग्यताएँ, विचार, ज्ञान आदतें सम्मिलित होती हैं बालक द्वारा एक अवस्था में अर्जित ज्ञान, अनुभव तथा परिपक्वता में वृद्धि के कारण अगली अवस्था में परिमार्जित और संवह्णित हो जाता है। ज्ञान भण्डार या संज्ञान—संरचना प्रत्येक अवस्था में आकार तथा गुण दोनों ही दृष्टियों में परिवर्तित होती हैं। इसलिए इन संरचनाओं को अवस्था आश्रित माना जाता है।

4.5—संज्ञानात्मक अधिगम विकास की अवस्थाएँ (Connitive coorning)

4.5.1—संवेदी पेशीय अवस्था (0—2 वर्ष)— (Sensory motor state)

इस अवस्था में बालक केवल अपनी संवेदनाओं और शारिरिक क्रियाओं की सहायता से ज्ञान अर्जित करता है। बच्चा जब जन्म लेता है तो उसके भी सहज क्रियाएँ (त्मसिमजम) होती हैं। इन सहज क्रियाओं और ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से बच्चा वस्तुओं, ध्वनियों, स्पर्श, रसों एवं गंधों एवं अनुभव प्राप्त करता है और इन अनुभवों की पुनरावृत्ति के कारण वातावरण में उपस्थित दीपकों की

कुछ विशेषताओं से परिचित होता है। दो वर्ष की अवधि समाप्त होते-होते बच्चे के भीतर विचार तथा कल्पना का श्रीगणेश होता है।

4.5.2—पूर्ण संक्रियात्मक अवस्था (2–6 वर्ष)– (Full Operational State)

इस अवस्था में बालक अपने द्वारा प्राप्त अनुभव से प्राप्त ज्ञान से न सीखकर दूसरों के सम्पर्क से ज्ञान आर्जित करता है। अब वह खेल, अनुकरण, चित्र निर्माण तथा भाषा के माध्यम से वस्तुओं के सम्बन्ध में अपनी जानकारी अधिकाधिक बढ़ाता है। इस अवस्था में धीरे-धीरे प्रतीकों को ग्रहण करना सीखता है। पर अभी वह कारण-कार्य सम्बन्ध अथवा तार्किक चिंतन से अनभिज्ञ होता है।

4.5.3—स्थूल संक्रिया अवस्था (7–12 वर्ष)– (Micro Operating State)

इस अवस्था की तुलना में दूसरी अवस्था विकसित संज्ञान की अवस्था कही जा सकती है, जैसे ही दूसरी की तुलना में तीसरी अवस्था और ज्यादा विकसित संज्ञान की अवस्था और ज्यादा विकसित संज्ञान की अवस्था मानी जायेगी। इस अवस्था में बालक तार्किक चिंतन करने योग्य हो जाता है, पर उसका तर्क स्थूल परिस्थितियों तक ही सीमित रहता है। उदाहरण के लिए अगर कहा जाये कि राम श्याम की बजाय अच्छा है एवं श्याम, मोहन से अच्छा है तो इस अवस्था में बालक इस निष्कर्ष पहुँचे सकता है कि राम तीनों से सबसे अच्छा बालक है। इस अवस्था में अनुकरणशीलता पायी जाती है।

4.5.4—औपचारिक संक्रिया अवस्था (12 वर्ष)– (Formal Operating Stage)

इस अवस्था संज्ञानात्मक अधिगम विकास की अंतिम अवस्था है जो बारह वर्ष के बाद प्रारम्भ होती है। यह अवस्था तार्किक चिंतन की अवस्था होती है, क्योंकि बालक अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त स्वयं विचार के सम्बन्ध में विचार करने में सक्षम होता है। अब वह उद्दीपकों की अनुपस्थिति में भी उनकी विशेषताओं, उपयोगिताओं और अन्य विवरणों के सम्बन्ध में सोच सकता है। अमूर्त चिंतन किशोरावस्था की एक प्रमुख विशेषता होता है।

4.6—शिक्षा में उपयोगिता (Utility in Education)

संज्ञानात्मक सिद्धान्त रचनात्मक प्रक्रिया और व्यक्ति पर जोर देते हैं, प्रक्रिया, रचनात्मक विचार के आधार के रूप में संज्ञानात्मक तंत्र की भूमिका पर जोर देने में और व्यक्ति, ऐसे तंत्रों में व्यक्तिगत मतभेदों पर विचार करने में यह संज्ञानात्मक सिद्धान्त सार्वभौमिक क्षमताओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं। संज्ञानात्मक अध्ययन सिद्धान्त एक ऐसा विषय है जिसमें मनोविज्ञान में बहुत शोध अध्ययन हुए हैं और हो रहे हैं। संज्ञानात्मक अध्ययन के बहुत से सिद्धान्त हैं जो अलग-अलग और कभी-कभी विरोधामासी विचार देते हैं। यद्यपि निम्नलिखित मुद्दों पर आपस में सहमति प्रतीत सा होता है—

1. इसका बहुत बड़ा भाग बाल्यावस्था में विकसित अर्थात् जीवन के प्रारम्भिक निष्कर्ष निर्माणात्मक है।
2. यह एक क्रमिक प्रक्रिया है, कुछ योग्यताएँ अन्य से पहले विकसित होता है।
3. यह आंतरिक होता है, यह केवल विचारों व क्रियाओं में प्रदर्शित होता है। उदाहरण के लिए जब कोई बच्चा लिखकर, मौखिक या क्रिया करके किसी समस्या का समाधान न करे, यह जानना सम्भव नहीं है कि वह जोड़ कर सकता है या नहीं।
4. इस प्रक्रिया को सार्थक रूप से सामाजिक परिस्थितियों को प्रभावित करती है।
5. विभिन्न बच्चों में संज्ञानात्मक विकास की गति भिन्न-भिन्न होती है।
6. उपयोगी ज्ञान संरचनाओं का निर्माण करने और नैदानिक तर्क सिखाने की कोशिश करते समय सीखने का मार्गदर्शन करने के लिए उपयोगी सिद्ध होता है।
7. वैदानिक मामले पर चर्चा के दौरान पूर्व अनुभवों को याद करने की सुविधा प्रदान करता है।
8. संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि यह आन्तरिक भावनाओं के जाग्रत करने का साधन मात्र है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Bhattacharya.s (1960) foundation of education and educational research archarya book dept
2. Buch.M.B (1974)-A survey of research in education M.S. university Baroda.
3. Gupta S.P.(2008)-Uchcha Shiksha Manovigyan Sharda Pustak Bhavan Allahabad.
4. Kerlinger F.N. (1964)-Foundation of Behaviaral Research Gunshot wester link Newyork.
5. Mangal S.K. (2005)-Advanced education Psychology. New Delhi Prential Hall of india Pvt. Ltd.

Web Search

- 1- www.wikipedia.com
- 2- www.scottbujj.com
- 3- www.vikashpedia.com



COGNITIVE THEORIES OF LEARNING

Dr. Kavita Gupta
Assistant Professor
Mahakakshmi College for Girls
Duhai, Ghaziabad

Introduction

Cognitive learning theory focuses on thinking, or the internal processes involved in associated with information and memory. This theory encourages students to "think about their thoughts" in order to better comprehend concepts or topics that might make them uncomfortable (Levine, 2022). Implementing cognitive learning theory can help to increase student engagement and motivation, as it provides a new way of looking at themselves and their brains. In order to cognitive learning theory, it is important to understand the term "metacognition". "Metacognition" as it is the basis of this theory. Metacognition is one's awareness of one's own thoughts and thought processes (Levine, 2022).

The term metacognition literally means 'about knowing' and is used to refer to knowing about knowing or, more informally, thinking about thinking. Flavell defined metacognition as knowing about cognition and controlling cognition. Metacognition also involves reflection on one's own thinking processes, such as study skills, memory and the ability to monitor learning.

A Brief History

The first philosophers to delve deeply into the theory of cognition and behavior are Plato and Descartes and their theories of knowledge and behavior inspired further thought and research into cognition. Later researchers such as Wilhelm Wundt, William James, John Dewey and John Watson continued to explore how the how the mind and thought worked (Illeris, 2018). Jean Piaget founded cognitive psychology in the 1930s in response to the then-dominant behaviorist school of school of psychology at the time, which focused solely on behavior that could be observed externally observable. He is highly regarded in the field of cognitive psychology for his research and insights into internal structures, knowledge and the environment (Illeris, 2018). Piaget believed that an understanding of the cognitive orientation to learning was essential to providing quality education. Cognitive learning theory has evolved and adapted over time with advances in technology,

The Cognitive Processes

Cognitive processing is a general term used to describe a series of cognitive operations performed when creating and manipulating mental representations of information following are the main cognitive process namely:

Attention

The psychological definition of attention is 'a state of focused awareness of some portion of the available sensory information'. Identifying and filtering out irrelevant data and

distributing important data to other mental processes is a key function of attention. For example, the human brain is capable of processing auditory, visual, olfactory, gustatory and tactile information at the same time. The brain is only able to consciously process a small subset of this information, and this is achieved through attention processes.

Perception

Perception involves both the physical senses (vision, smell, hearing, taste, touch and proprioception) and the cognitive processes that interpret these senses. In essence, perception is the process by which people make sense of the world around them through the interpretation of stimuli. In their structuralism approach to psychology, early psychologists such as Edward B. Tetchier began to work with perception. Structuralism was concerned with trying to reduce human thought to its most basic elements by gaining an understanding of how an individual perceives particular stimuli.

Current perspectives on perception within cognitive psychology tend to focus on how the human mind interprets sensory stimuli and how these interpretations affect behavior.

Repetition: To keep information in short-term memory longer, it is stored by repetition. The reason for longer retention is that encoding takes place. Information is not lost before it is sent to long-term memory. The stimulus or stimuli should lead to a response. "Perceiving is active and selective, and the perception of the situation(s) is based on efficient preparation and orientation".

Coding: Coding is the process of transferring information by relating information stored in long-term memory to that stored in short-term memory. The person to whom the information is to be sent to long-term memory should do the coding in a meaningful way. Each individual carries out the encoding in the way that is most meaningful to him or her. In order to enrich the process of encoding by increasing the meaningfulness of information, there are four basic elements: Efficiency, Organizing, Articulating and Clues to Help Remember.

Storing: To explain how accumulated information is stored, Anderson and Bower proposed an important model. This model is based on the idea that information is built on verbal units, including subject/verb structures, not perceptions. The storage of information is in long-term memory. However, information is stored in the appropriate part of episodic, semantic and procedural memory during the process of storing. This is how the process of retrieval takes place.

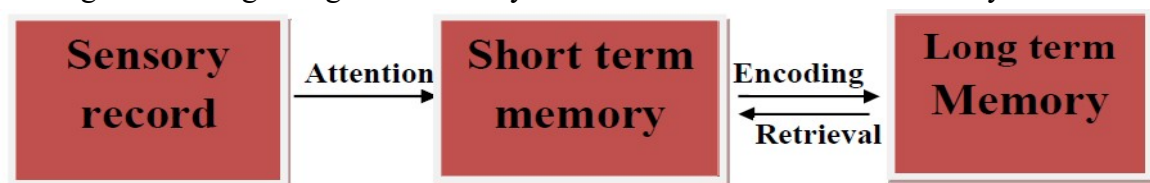
Retrieval: The information stored in long-term memory is searched for, found and activated. The important thing is to identify the clues that allow the stored information to be accessed. There is no real forgetting in long-term memory, according to Ashcraft. Forgetting is a failure to retrieve.

Data Processing Theory

Data processing theory is a theory that was put forward by George A. Miller (1920-) based on Edward C. Tolman's (1886-1959) sign and latent learning theories, which claims that learning is a complex and internal process that occurs with some mental processes, and is based on the cognitive approach. The theory of information processing accepts information as the basic means of learning and explains learning in terms of the memory system. It focuses on how information enters memory, how it is stored, and how it is recalled when needed. In the theory of information processing, the process begins with

the reception of external stimuli through the sense organs and continues with the description and storage of these stimuli. Stored information can be retrieved and used.

Data processing model consists of three main elements like (1) **information stores**, (2) **cognitive processes** and (3) **executive cognition**. Information storage is the first element of the computing model and refers to the places where information is stored. They include (1) **sensory record**, (2) **short-term memory (working memory)** and (3) **long-term memory**. These are the stages of simultaneous data handling. First, through the sensory organs, the stimuli received from the environment enter the sensory memory. Then the raw information is transferred to processor memory using attention and perception. In processor memory, the raw information is made meaningful by thinking about it and combining it with information in long-term memory. This is where information is transformed into behavior, or transferred to long-term memory to be retained through meaningful encoding. Long-term memory is where information is continuously stored.



It has three different parts where different types of information are stored, such as (1) **semantic memory**, (2) **recollective memory** (3) **Operational memory**. It is transferred to the working memory to be used. The learner does this sometimes consciously and sometimes automatically. Forgetting, as opposed to retrieving or remembering, means eliminating information from memory or not being able to retrieve it. The third element of the information processing model consists of executive processes called cognition Information or executive cognition. Executive cognition requires information storage and cognitive processes to work harmoniously in computing. Executive cognition is individual in nature, and the learning individual controls and manages cognitive processes.

Sensory Record

The first step in the acquisition of information and the first unit of the memory system is the sensory recording. An individual is always under the influence of stimuli coming from around them. An individual is exposed to a lot of information at once through seeing, hearing, touching, tasting and smelling.

Short-Term Memory

The second element of the system, stores the information selected from the sensory record by the processes of attention and perception. Temporary memory, also called processor memory or active memory, is the memory that temporarily stores limited information for a limited time. Both the duration and the capacity to hold information are limited. The short-term memory is able to store approximately 7/-2 units of information (letters, numbers, shapes, phrases, photos,) for 20 to 30 seconds. The short-term memory is in contact with both the sensory record and the long-term memory.

Long Term Memory

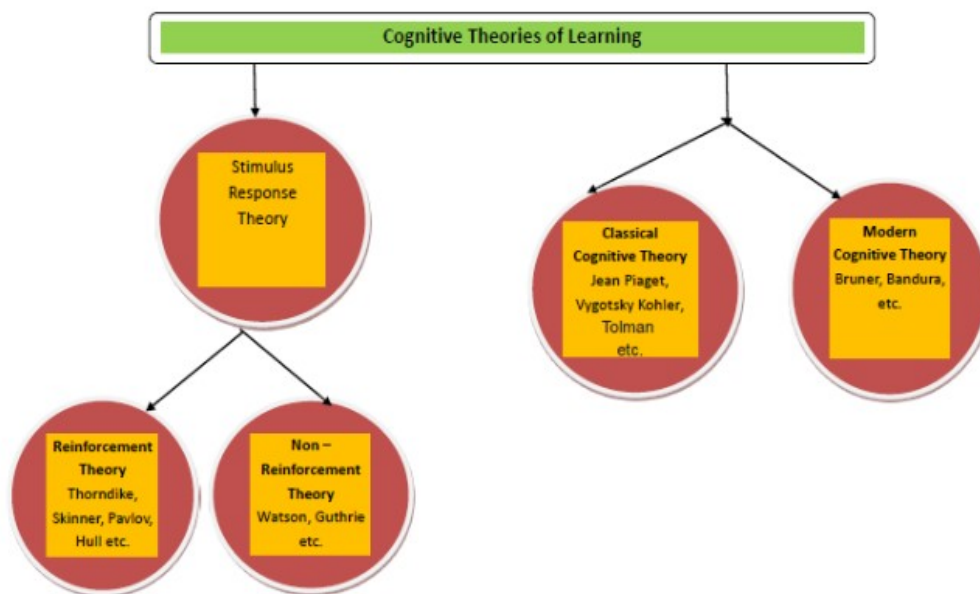
Semantic memory is the encyclopedic knowledge that a person has. Knowledge such as the shape of the Eiffel Tower or the name of a sixth form friend is semantic memory. Access to semantic memory ranges from easy to extremely difficult, depending on a number of variables, including how recently the information was encoded, the number of

associations it has with other information, the frequency of access, and the level of meaning.

Episodic memory is the recollection of autobiographical events that can be described in explicit terms. It includes all memories that are temporal in nature. Episodic memory typically requires the deepest level of conscious thought, often combining semantic and temporal information to formulate the memory.

Procedural memory is used to remember how to perform certain actions. It is often activated at a subconscious level or, at the most, it requires a minimal amount of conscious effort to activate. Procedural memory contains stimulus-response information which is activated by associating with particular tasks, routines, etc. When a person seems to respond to a situation or process in a certain way 'automatically', they are using procedural knowledge. This is exemplified by learning to drive.

Cognitive Theories of Learning



Classical Cognitive Theories

Cognitive development has two classical theories. The one that will be the focus of this paper is **Piaget's theory of cognitive development**. His hypothesis was that learning is a physical, biological function of successful interaction with the environment (Phillips, 1998). It is based on this that Piaget's Theory of Cognitive Development begins. Piaget's theory of cognitive development is based on two biological tendencies. The two tendencies are organization and adaptation. In Piaget's view, organization is the process by which humans have the capacity to organize their observations and experiences into coherent sets of meanings (Eggen, 1999). It is this organization of observation that makes the process of thinking more efficient. If a person can put the things they observe into some sort of order, the easier it is to remember and apply their observations. Adaptation, according to Piaget's theory, is the tendency to adapt to the environment. Adaptation is a process by which we create matches between our original observations and new observations that may not fit together exactly. Our original observations and ideas are called our schemas. To fit new observations and experiences into our schemas, we use one of two techniques. We can assimilate this information by putting it together

with old patterns or ideas. If it's not a good fit, you can use the second method of adaptation, which is to adapt or modify your schema.

Children progress intellectually through four stages, according to Piaget's theory: Sensor motor, Preoperational, Concrete Operations and Formal Operations. Piaget suggested that there were different challenges that the child had to deal with at each of these stages. He also pointed out that if the child did not master the tasks at one level, he or she would not be able to master the tasks at the other levels. All theories that posit "stages" of development have inherent problems. Development does not occur in discrete stages - it occurs whenever the environment becomes more demanding and/or less supportive of the individual. In our society, it is simply the case that we all tend to place these demands on children at about the same time - this gives the appearance that we are witnessing 'stages' of development.

The second classical theory is **Vygotsky**. He believed that the development of learning was a social process directly linked to the transmission of information, and that learning was a developmental process. Vygotsky argued that language was the key to cognitive development and that learning was influenced by the culture of the individual. He believed that a child first incorporated the language of others into his or her personal knowledge and practiced it, known as private language, and later used this 'private language' in efforts to solve tasks. Vygotsky went on to re-define this theory into what we now know as the Zone of Proximal Development. The ZPD defines intellectual development as the ability to use thought to control our own behavior, but first we must master cultural communication systems and then use these systems to regulate our thought processes. Children learning with ZPD work on tasks that they could not complete on their own, but were able to complete with the help of a competent teacher. These teachable moments demonstrate Vygotsky's theory that learning is progressive development.

Modern Cognitive Theories

Bruner's discovery Learning

A proponent of cognitive learning and a developmental psychologist primarily interested in the development of mental skills, Jerome S. Bruner (1966) is a pioneer of cognitive learning. His approach to psychology is eclectic (i.e. he selects the best or most useful features of the different competing theories). He views the human being as an information processor, thinker and creator, and treats the learner as a reactive organism who actively selects, structures, retains and transforms learning/information to achieve specific goals. In addition to animalistic drives, Bruner suggests that humans have primary needs.

One could be called "curiosity", which keeps an organism active even when there is no organic stress. So it is not just the need for things like food or sex that always dominates our cognitive activity. Accordingly, Bruner sees learning as a purposeful activity. It satisfies this drive and satisfies the curiosity of the learner.

Learning as a cognitive process

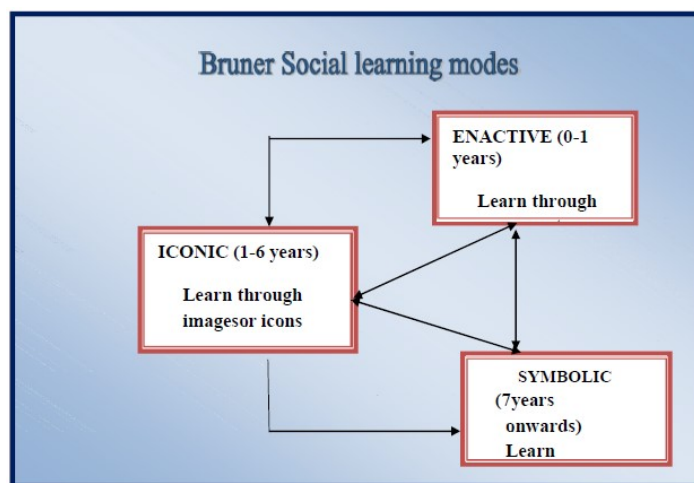
Bruner describes students as problem solving, interacting with their environment, testing hypotheses and developing generalizations. The aim of education, in Bruner's view, should be cognitive development, and the content of learning should be conducive to the development of problem-solving skills through the processes of inquiry and discovery. The cognitive process involves three almost simultaneous processes, according to Bruner.

- Acquiring new knowledge/ information

- Transforming the acquired knowledge
- Verification of the appropriateness of the new knowledge. Modes of cognitive development are described by Bruner as- **Three hierarchical levels/modes.**

The first mode is what we call '**enactive**'. It is about representing knowing through action. For example, a child who has an inactive knowledge of how to ride a bicycle may not be able to have a description of the procedure. The second mode is '**iconic**'. It is based upon internal imagery. Knowledge is represented by pictures/graphics/drawings that represent a concept but cannot fully define it. For example, a drawing may represent the 'triangle' diagrammatically without explaining the concept of 'triangularity'. The third and most advanced mode is '**symbolic** representation'. This is the use of words and other symbols to describe a concept or experience. Symbolic representation is based on an abstract, arbitrary and more flexible system of thought. At this stage, language becomes more important as a medium for both the reception and expression of ideas. For example, at this stage the child can explain the concept of 'triangle' or the concept behind the operation of a bicycle. , Bruner concluded that:

"At every age, people learn best when their perception is stimulated by an enlightening experience".



Bandura's Social Learning Theory (1977)

In order to provide a comprehensive model that could account for the wide range of learning experiences that occur in the real world, Social Learning Theory integrated behavioral and cognitive theories of learning. Originally outlined by Bandura and Walters in 1963, the theory was entirely behaviorist; the key to its innovation and increasing influence was its focus on the role of imitation. Over the years, Bandura moved towards a more cognitive perspective, which led to a major revision of the theory in 1977, when the main principles of social learning theory became the following-

- Learning is a cognitive process that takes place in a social context rather than being purely Metacognition also involves reflection on one's own thinking processes, such as study skills, memory and the ability to monitor learning. behavioral.
- Learning can be through observation of behavior and observation of the consequences of behavior (vicarious reinforcement).
- Learning involves observing, extracting information from those observations, and making decisions about how to perform the behavior (observational learning or modelling). In this way, learning can take place even when there is no

observable change in behavior.

- Reinforcement plays a role in learning but is not the sole cause of learning.
- The learner is not passive, having received information the cognition, the environment and the behavior all influence each other (reciprocal determinism).

Modeling and Basic Cognitive Processes

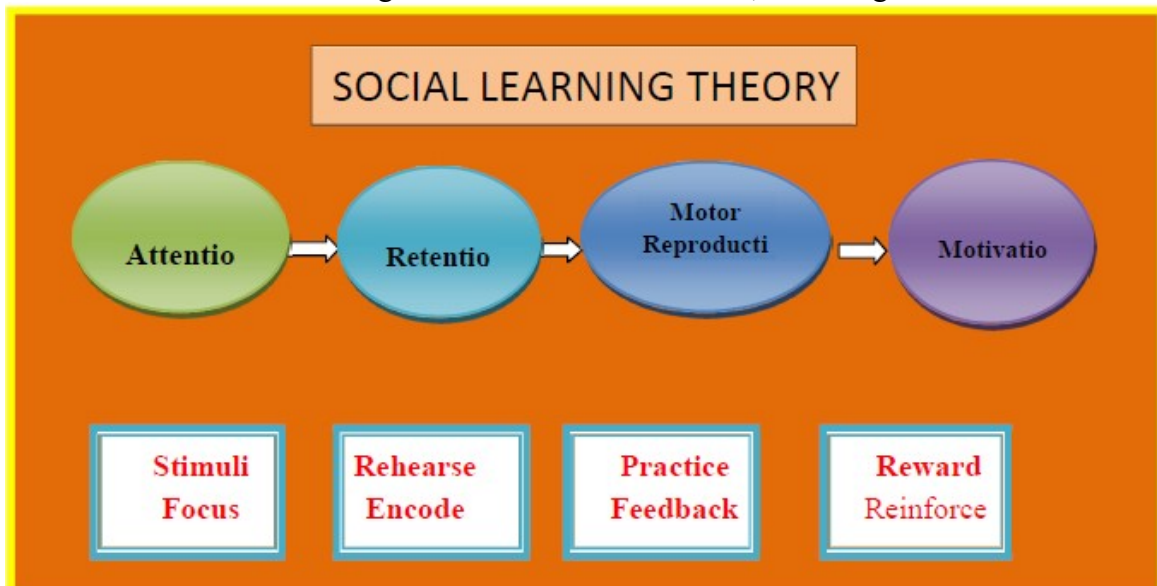
Social learning theory relies to a large extent on the concept of modelling, as described above. Bandura outlined three modelling stimuli:

Live models where a person is in the process of demonstrating the target behavior

Verbal instruction, in which a person describes the desired action in detail and tells the participant how to perform it

Symbolic, in which the modelling takes place by means of the media, including films, television, the Internet, literature and radio. The stimuli can be real or fictitious persons. Exactly what information is gleaned from observation is influenced by the type of model and a number of cognitive and behavioral processes, including Cognitive Processes

The nature of the model, as well as a number of cognitive and behavioral processes, will influence what information is gleaned from the observation, including



Conclusion

Learning theories are intended to help trainers understand the processes and circumstances that make learning possible and, in turn, to provide guidance for developing activities and environments that best support learning. Learning theorists do their best to describe how people learn on the basis of careful observation and experimentation, but no theory of learning is perfect. In fact, every theory has its critics, and the various theories tend to fall in and out of favor over time. Even so, the theories provide us with an empirically based understanding of how learning takes place. Vygotsky explained learning through dialogue (Fosnot 1996), whereas Piaget sought to study and explain learning through the role of contradiction and equilibrium. Piaget was concerned with the development of logical reasoning, whereas Vygotsky was concerned with categorical perception, logical memory, conceptual reasoning and self-regulated attention (Gredler, 1997, 269). Ultimately, we should think of learning theories as guidelines rather than rules, and we should draw on them in a way that reflects our own values and understandings.

References

1. Goel, Vinod (2007). "Anatomy of deductive reasoning". *Trends in Cognitive Sciences*. **11** (10): 435–441. Doi:10.1016/j.tics.2007.09.003. PMID 17913567. S2CID 6927091
2. Ally, M. (2008). Foundations of educational theory for online learning. In T. Anderson (Ed.) *Theory and practice of online learning*. Mart 2012'de <http://www.aupress.ca/index.php/books/120146> (retrieved
3. Vålmaa-Blum, Riitta (2009). "The phoneme in cognitive phonology: Episodic memories of both meaningful and meaningless units?". *Cognitextes*. **2** (2). Doi 10.4000/cognitextes.211
5. Schwarz-Friesel, Monika (2012). "On the status of external evidence in the theories of cognitive linguistics". *Language Sciences*. **34** (6): 656–664. Doi: 10.1016/j.langsci.2012.04.007



TRANSFER OF LEARNING

Noushia Tabassum

Assistant Professor

Mundeshwari College For Teacher Education

Patna

Introduction:

We learn many things and do many tasks in our day to day life, sometimes when we do a new task or learn a new thing; we feel that there is something difficult in completing or thinking about the new task. The knowledge and experience learned earlier is coming in handy. Prior knowledge acquired in the field of mathematics is very helpful in solving calculation related problems in Physics. Similarly, if someone knows how to play tennis, it becomes easier for him to learn to play badminton. In this way, knowledge learned or training received in one situation affects the acquisition of knowledge or skills in another situation.

This effect is called transfer of learning or training in psychological literature. By many scholars it has also been named as transfer of learning, and transfer of learning or training. Whatever the name, it means that the knowledge or skills available in one area or situation can be used to influence the acquisition of knowledge or skills in another situation. The knowledge gained or expertise acquired in learning one work can be used in learning or doing another work. Transfer of learning is a fundamental concept in education and psychology, playing a crucial role in how individuals acquire, retain, and apply knowledge, skills, and concepts across different contexts.

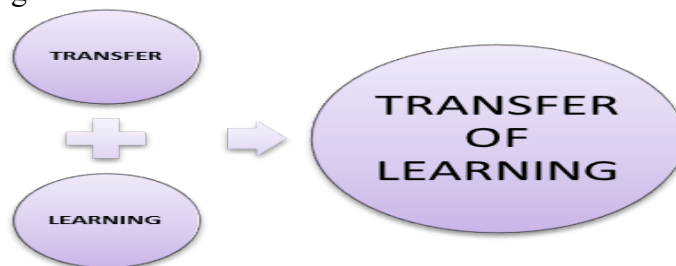
Definition:

Crow and Crow: “The carry-over of habit of thinking, feeling or working of knowledge or of skills from one learning area to another is usually referred to as transfer of learning.”

Peterson: “Transfer of learning is generalization, for it is extension of idea to a new field.”

Guthrie and Powers: “Transfer of learning may be defined as a process of extending and applying behaviour.”

Transfer of learning is a combination of two words first is transfer and second is learning.



Transfer : Act of moving something or someone to one place to another.

Learning : Act of gaining knowledge, skill by experience, study, being taught and creative, etc.

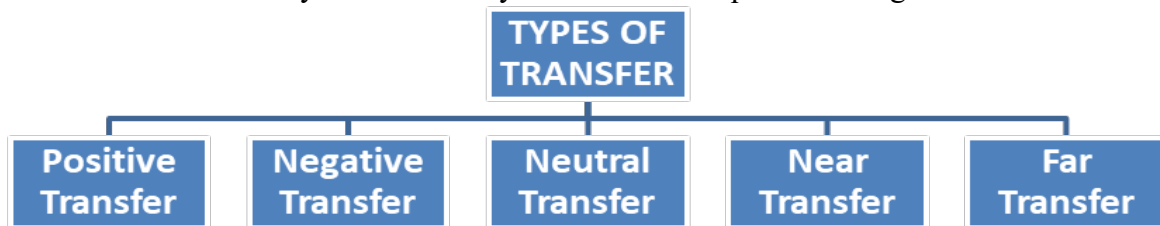
Transfer of Learning : Transfer of learning refers to the application of knowledge, skills, or concepts learned in one situation to another situation.

The word transfer is used to describe the effects of past learning upon present acquisition. In the laboratory and in the outside world, how well and how rapidly we learn anything depends to a large extent upon the kinds and amount of things we have learned

previously. In simple way transfer may be defined as “the partial or total application or carryover of knowledge, skills, habits, attitudes from one situation to another situation”. Hence, carryover of skills of one learning to other learning is transfer of training or learning. Such transfer occurs when learning of one set of material influences the learning of another set of material later.

Types of Transfer:

When a person uses his past experience to do something new, we call it transfer of learning. It is not certain that transfer is to take place from each and every situation to other. Further, it is not certain that learning in one situation will always help positively in another situation. It may even adversely affect the subsequent learning.



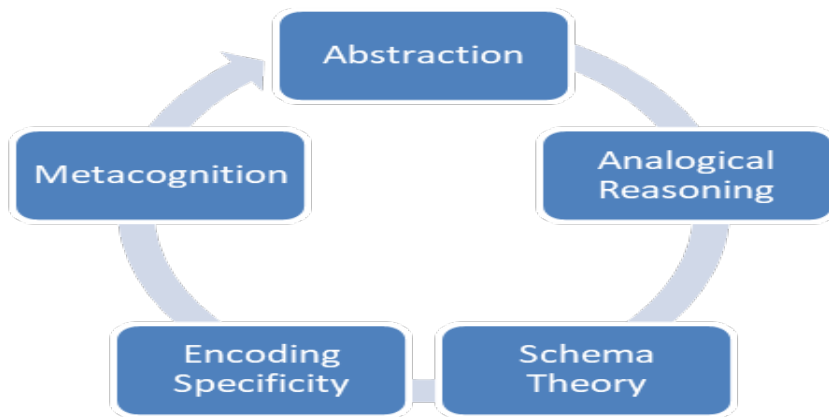
Types of transfer

Transfer of learning can manifest in different forms-

1. **Positive Transfer:** When previously learned knowledge or skills enhance learning or performance in a new context is called positive transfer of learning. For example, a student who has mastered basic arithmetic skills may find it easier to learn algebraic concepts.
2. **Negative Transfer:** When previously learned knowledge or skills hinder learning or performance in a new context is called negative transfer of learning. For example when a person who learned to drive a manual transmission car struggles to adapt to an automatic transmission vehicle.
3. **Neutral Transfer:** When learning of one activity neither facilitates nor hinders the learning of another task, it is a case of neutral transfer. It is also called as zero transfer. For example knowledge of history has no use in learning cycle.
4. **Near Transfer:** When knowledge or skills are applied in a context similar to the one in which they were learned. Near transfer is often facilitated by the presence of shared elements or surface similarities between the learning and transfer contexts, making it easier for learners to recognize and apply relevant knowledge or skills. For instance, using problem-solving strategies learned in mathematics to solve physics problems.
5. **Far Transfer:** When knowledge or skills are applied in a context that is quite different from the one in which they were learned. Far transfer requires learners to abstract underlying principles or rules and apply them to novel situations with different surface features. An example is applying critical thinking skills developed in literature analysis to evaluate arguments in a political science course.

Mechanisms of Transfer:

Mechanisms can be defined as processes or events that are responsible for specific changes in learning outcomes. In learning process, mechanisms are the factors through which interventions produce change.



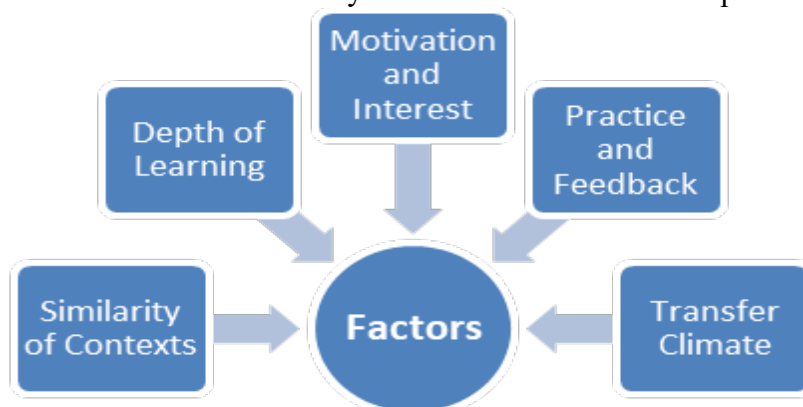
Mechanisms of transfer

Several cognitive mechanisms underlie transfer of learning:

- 1) Abstraction: Individuals abstract general principles or patterns from specific instances and apply them to new situations.
- 2) Analogical Reasoning: Drawing parallels between familiar and unfamiliar situations to guide problem-solving and decision-making.
- 3) Schema Theory: Schema theory suggests that individuals organize knowledge into mental frameworks or schemas, which they adapt and apply to new situations.
- 4) Encoding Specificity: Transfer is influenced by the similarity between the learning and application contexts. The more similar the contexts, the greater the likelihood of transfer.
- 5) Metacognition: Awareness of one's own cognitive processes and strategies facilitates transfer by enabling individuals to reflect on past experiences and apply relevant strategies in new contexts.

Factors Influencing Transfer:

Anything that contributes to a result or has a causal relationship to a phenomenon, event, or action is called factor. There are many factors that affects transfer process of learning.



Factors influencing transfer

Several factors influence the extent and effectiveness of transfer of learning:

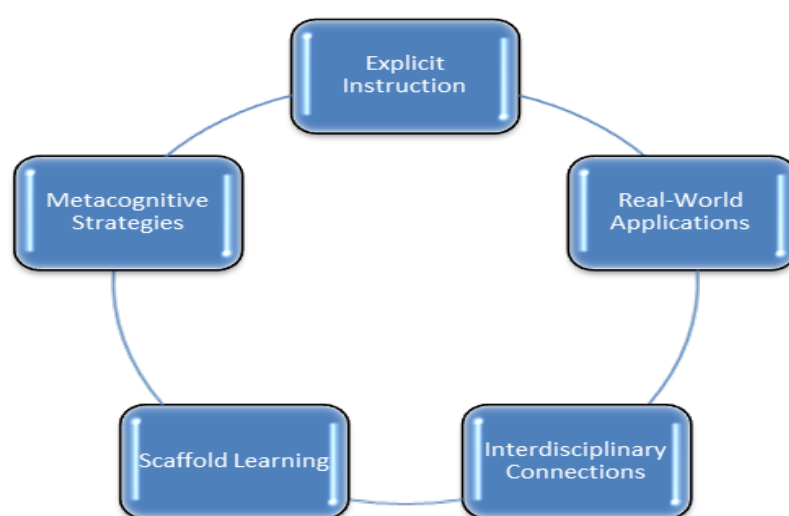
1. Similarity of Contexts: Transfer is more likely to occur when the learning and application contexts share similarities in terms of content, tasks, and environmental cues.
2. Depth of Learning: Transfer is enhanced when learners deeply understand the underlying principles or concepts rather than merely memorizing facts or procedures.

3. **Motivation and Interest:** Learners who are motivated and interested in the subject matter are more likely to engage in transfer activities and apply their knowledge creatively.
4. **Practice and Feedback:** Opportunities for practice and constructive feedback facilitate the development of transferable skills and strategies.
5. **Transfer Climate:** A supportive learning environment that encourages exploration, experimentation, and risk-taking promotes transfer of learning.

Forms of Transfer of Learning:

1. **Lateral transfer:** learning of one kind facilitates learning of same level in other situation or in other context. For example if a child learn addition in class room and apply it in real life situation.
2. **Sequential transfer:** positive facilitation of present learning through past learning is sequential transfer of learning. For example teaching of first day has relation with second day of teaching.
3. **Horizontal transfer:** lateral and sequential transfer is called horizontal transfer of learning because the learner stays within the same behaviour category in making the transfer.
4. **Vertical transfer:** learning at one’s behavioural level facilitates learning at higher behavioural level in vertical transfer. For example teaching of addition and subtraction should facilitate the subsequent solution of problem utilising these operations.
5. **Bilateral transfer:** the human body is divided into two laterals, right and left. When training imparted to one lateral automatically transfers to another lateral, we call it bilateral transfer. For example training of right hand writing automatically transfers to left hand.
6. **General and specific transfer:** situation in which prior learning aids subsequent learning because of specific similarities between two tasks is specific transfer. Situation, in which prior learning aids subsequent learning due to use of similar cognitive strategies, is called general transfer.

Strategies to Facilitate Transfer:



Strategies to facilitate transfer

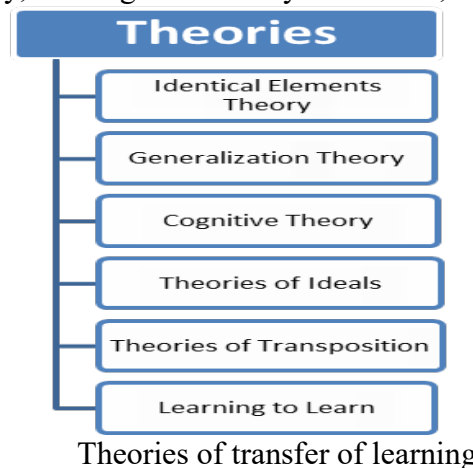
Educators can employ various strategies to enhance transfer of learning:

Explicit Instruction: Clearly articulating the connections between prior learning and new situations helps learners recognize transfer opportunities.

- I. Real-World Applications: Providing opportunities for authentic, real-world problem-solving tasks that mirror the challenges learners may encounter outside the classroom.
- II. Interdisciplinary Connections: Integrating multiple disciplines or subject areas encourages learners to apply knowledge and skills across diverse contexts.
- III. Scaffold Learning: Gradually increasing the complexity and autonomy of tasks while providing support and guidance facilitates transfer by allowing learners to build on prior knowledge.
- IV. Metacognitive Strategies: Teaching learners metacognitive strategies such as self-monitoring, reflection, and goal setting promotes transfer by enhancing awareness of one's own learning processes.

THEORIES OF TRANSFER OF LEARNING:

Theories of transfer of learning provide frameworks for understanding how knowledge, skills, and concepts acquired in one context can be applied or adapted to new situations. In this essay, we explore prominent theories of transfer, including the identical elements theory, generalization theory, and cognitive theory of transfer, among others.



- 1) **Identical Elements Theory:** Identical elements theory, proposed by Thorndike in the early 20th century, suggests that transfer occurs when the elements of the original learning situation are identical or highly similar to those of the transfer situation. According to this theory, transfer is most likely to occur when there is overlap between the stimulus and response elements, as well as the cognitive processes involved in both situations. For example, a student who has learned to solve mathematical problems using a specific problem-solving strategy is more likely to transfer that strategy to similar problems in a different mathematical context. Similarly, skills acquired in one sport, such as hand-eye coordination in baseball, may transfer to another sport, such as tennis, if the motor skills and perceptual cues are similar.
- 2) **Generalization Theory:** Generalization theory, proposed by Hull and others, emphasizes the role of abstract knowledge and principles in facilitating transfer across different contexts. According to this theory, learners abstract general

principles or rules from specific instances and apply them to new situations. Generalization occurs when learners recognize similarities or patterns across contexts and infer that the same principles or rules are applicable. For instance, a student who has learned the rules of grammar in one language can generalize those rules to learn the grammar of a different language. Similarly, problem-solving strategies learned in mathematics can be generalized and applied to solve problems in science or engineering.

- 3) **Cognitive Theory of Transfer:** The cognitive theory of transfer, influenced by cognitive psychology and schema theory, posits that transfer occurs through the activation and adaptation of existing cognitive schemas or mental frameworks. According to this theory, individuals organize knowledge into schemas, which represent generalized patterns of information. Transfer occurs when learners retrieve relevant schemas from long-term memory and adapt them to fit the requirements of new situations. For example, a student who has learned to interpret and analyze literary texts develops a schema for understanding narrative structures, character development, and thematic elements. This schema can be activated and adapted when encountering new texts, allowing the student to apply similar analytical skills and strategies.
- 4) **Theories of Ideals:** It was propounded by W.C. Bagley. When ideas are stressed is perused then transfer of learning can be taken place. Ideas like honesty, truthfulness, love etc. can be transferred in this theory. Therefore, there is a need to make proper efforts for the development of values and ideals in children. Once the foundation of ideals is laid, they continue to be transferred to every area of life. For example, if a child tries to do a task in a hygienic manner, if it happens then whatever work he does, he does it clearly.
- 5) **Theories of Transposition:** It is advocated by Gestalt psychology. Transfer starts in understanding the fact and perception of similarity by the learner. It is known as pattern of relationship. It is not the specific skills or facts or even underlying principles which are important, but the understanding of relationship between facts, process and the principles are the real basis of transfer.
- 6) **Learning to Learn:** After practicing a series of related or similar tasks then learner learns the capacity to learn the same thing. It is found that whenever learner comes in contact with various learning materials then he learns efficiently and effectively. Learning to learn means when learning starts from one method then it goes to another method.

How to Achieve Maximum Positive Transfer:

Promoting transfer of learning often involves designing educational experiences that encourage learners to make connections between what they already know and new situations they encounter. Considering some point we can achieve maximum positive transfer of learning in new situation.

- In the acquisition of learning, the principle of correlation should always be followed by the learner.
- Efforts should be made to properly identify the common elements between the knowledge and skills given in any two situations and to properly understand the relationships between them.

- Rote memorization without thinking should be discouraged and use of intellectual powers should be encouraged.
- The tendency to learn should be promoted after careful consideration.
- To make learning more interesting, effective and lively, the help of verbal examples and audio-visual materials should be taken.
- As far as possible, the learner should try to learn through his own efforts. He himself efforts should be made so that we can discover the facts and solve our problems.
- Full emphasis should be laid on acquiring rules, generalizations and principles instead of scattered facts. As a result of one's experiences and learning, efforts should always be made to reach some general rules and conclusions and one should practice using these generalized ideas and rules as per the opportunity.
- The learner should be fully aware of positive transfer of learning and should also have a positive attitude about it so that he can be fully active in using whatever he learns in other situations.
- Practice the skill a lot in a wide variety of conditions. Ideally, change up all of the categories above.
- When facing a new challenge, reach back to your prior experiences. Try to think of principles that might be relevant.
- Examine two problems or examples that look different, but have the same kind of solution. Work out in your mind what makes them alike.
- Study up on the new subject to gain background knowledge about it. The more you know about the topic, the easier it is to transfer what you already know to problems in that area.
- Try to come up with principles as you encounter new problems or ideas. Keep a favourite in mind, and look for new opportunities to apply it.
- Make your learning social, so that you need to justify and explain what you are learning to another. Listen for the principles that pop out of the conversation.

If some such things are kept in mind, then a learner can take help of his determination and understanding.

Benifits of Transfer of Learning: If learning is effectively transferred into the workplace and used in classroom, there are lots of potential benefits to be had:

- ✓ **Efficiency:** It enables learners to apply knowledge and skills across different contexts, reducing the need to relearn or duplicate efforts.
- ✓ **Flexibility:** Learners can adapt to new situations and challenges more effectively by drawing on their existing knowledge and skills.
- ✓ **Problem-solving:** Transfer allows individuals to apply principles and strategies learned in one area to solve problems in unrelated areas, fostering creative thinking and innovation.
- ✓ **Retention:** Applying knowledge in diverse contexts strengthens memory and understanding, leading to better retention of information over the long term.
- ✓ **Adaptability:** Transferable skills empower individuals to navigate changing environments and industries, enhancing their employability and career prospects.
- ✓ **Depth of Understanding:** Applying knowledge in new contexts deepens comprehension and mastery, as learners gain insights into the underlying principles and connections between different domains.

- ✓ **Lifelong Learning:** Transferable skills promote a growth mindset and encourage continuous learning, as individuals recognize the value of their existing knowledge in acquiring new knowledge and skills.

Educational Implications:

The concept of transfer of learning has significant educational implications across various domains, including curriculum design, instruction, assessment, and lifelong learning. Here are some key educational implications of transfer of learning:

- **Curriculum Design:** Educators should design curricula that emphasize the development of transferable skills and concepts rather than rote memorization of facts or procedures. By focusing on fundamental principles and problem-solving strategies that can be applied across different contexts, students are better prepared to transfer their learning to real-world situations.
- **Instructional Strategies:** Teachers should employ instructional strategies that promote transfer of learning, such as explicit instruction, real-world applications, interdisciplinary connections, and metacognitive strategies. Providing opportunities for active engagement, problem-solving, and reflection encourages learners to make connections between prior knowledge and new situations.
- **Assessment Practices:** Assessments should measure not only students' mastery of content knowledge but also their ability to transfer that knowledge to novel contexts. Performance-based assessments, open-ended tasks, and real-world projects provide more authentic opportunities for demonstrating transfer of learning compared to traditional multiple-choice tests.
- **Metacognitive Development:** Educators should explicitly teach metacognitive skills, such as self-monitoring, self-regulation, and reflection, to help students become more aware of their own learning processes and strategies. By fostering metacognitive awareness, students are better equipped to transfer their learning to new situations and adapt their strategies as needed.
- **Interdisciplinary Learning:** Encouraging interdisciplinary learning fosters transfer of learning by helping students recognize connections between different subject areas and apply knowledge and skills across diverse contexts. Integrated curricula and collaborative projects that bridge multiple disciplines promote deeper understanding and transferability of learning.
- **Problem-Based Learning:** Problem-based learning (PBL) approaches engage students in authentic, real-world problems that require them to apply their knowledge and skills to find solutions. PBL encourages transfer of learning by providing opportunities for inquiry, critical thinking, and collaborative problem-solving.
- **Scaffold Learning:** Gradually increasing the complexity and autonomy of learning tasks while providing support and guidance facilitates transfer of learning. Scaffolding helps students build on their prior knowledge and develop transferable skills and strategies that they can apply independently in new situations.
- **Lifelong Learning Skills:** Recognizing the importance of transferable skills in an ever-changing world, educators should foster lifelong learning skills such as creativity, adaptability, communication, and collaboration. By equipping students

with these transferable skills, educators prepare them to navigate complex challenges and succeed in diverse personal, academic, and professional contexts.

Overall, understanding and promoting transfer of learning enhances the effectiveness and relevance of education by empowering students to apply their knowledge and skills in meaningful ways across various domains of life. By incorporating transfer-focused principles and practices into curriculum design, instruction, assessment, and metacognitive development, educators can better prepare students for success in an increasingly dynamic and interconnected world.

Conclusion:

In conclusion, transfer of learning is a dynamic and multifaceted process that underpins the acquisition, retention, and application of knowledge, skills, and concepts across diverse contexts. Understanding the mechanisms, types, and factors influencing transfer is essential for educators and learners alike to optimize learning outcomes and foster lifelong learning skills. By implementing effective strategies that promote transfer, educators can empower learners to transfer their knowledge and skills to new situations, thereby facilitating deeper understanding, problem-solving ability, and adaptability in an ever-changing world.

Theories of transfer of learning provide valuable insights into how knowledge, skills, and concepts acquired in one context can be applied or adapted to new situations. Identical elements theory emphasizes the role of stimulus-response similarity in facilitating transfer, while generalization theory underscores the importance of abstract knowledge and principles. The cognitive theory of transfer highlights the role of cognitive schemas and mental frameworks in mediating transfer processes. By understanding these theories and factors influencing transfer, educators can design instructional strategies that promote meaningful and effective transfer of learning, thereby empowering learners to apply their knowledge and skills across diverse contexts.

References:

1. Bransford, J. D., Brown, A. L., & Cocking, R. R. (Eds.). (2000). *How People Learn: Brain, Mind, Experience, and School: Expanded Edition*. National Academies Press.
2. Perkins, D. N., & Salomon, G. (1992). Transfer of learning. *International Encyclopedia of Education*, 2, 6452-6457.
3. Gick, M. L., & Holyoak, K. J. (1983). Schema induction and analogical transfer. *Cognitive Psychology*, 15(1), 1-38.
4. Detterman, D. K. (1993). The case for the prosecution: Transfer as an epiphenomenon. In D. K. Detterman & R. J. Sternberg (Eds.), *Transfer on Trial: Intelligence, Cognition, and Instruction* (pp. 1-24). Ablex Publishing.
5. Perkins, D. N., & Salomon, G. (1989). Are cognitive skills context-bound? *Educational Researcher*, 18(1), 16-25.
6. Salomon, G., & Perkins, D. N. (1989). Rocky roads to transfer: Rethinking mechanisms of a neglected phenomenon. *Educational Psychologist*, 24(2), 113-142.
7. Barnett, S. M., & Ceci, S. J. (2002). When and where do we apply what we learn? A taxonomy for far transfer. *Psychological Bulletin*, 128(4), 612-637.
8. Schneider, W. (1990). *The transfer of cognitive skills: Basic research and applications*. Praeger Publishers.
9. Singley, M. K., & Anderson, J. R. (1989). *Transfer of cognitive skill*. Harvard University Press.
10. Sweller, J. (1988). Cognitive load during problem solving: Effects on learning. *Cognitive Science*, 12(2), 257-285.

11. Scribd. (n.d.). *Transfer of learning*. Scribd.
<https://www.scribd.com/document/421785570/Transfer-of-Learning>



INTELLIGENCE

Mr. Ashish Srivastava
Assistant Professor
Department of Education
Mangalmai Institute of Management & Technology
Greater Noida

Though they are related, intelligence and knowledge are not the same thing. Knowledge is defined as an individual's store of ideas and mass of perception. Knowledge is not the same as intelligence; intelligence is the capacity to learn and apply knowledge when needed. The appropriate application of intelligence (and knowledge) combined with the ability to distinguish between good and evil is referred to as wisdom. It has moral ramifications.

There are several ways to describe intelligence: as the capacity to learn, as the ability to continue thinking abstractly, as the capacity for an individual to modify or adapt to his entire environment. Psychologists have provided approximately one hundred definitions of intelligence. These are two thorough definitions: Wechsler defined intelligence as the total or global capacity of a person to act with intention, reason logically, and interact with the environment in a productive way. His definition has the following ramifications: The three equally significant components of intelligence are: applying reasoning to thinking and then to acting (as opposed to emotionality); the ability to function well in society with a high degree of adjustment; and purposeful, goal-oriented, objective-oriented, and meaningful activity. Intelligence is an all-encompassing capacity. Stoddard defined intelligence as the capacity to engage in activities that are marked by complexity, difficulty, abstractness, economy, goal adaptation, social value, and originality, as well as the capacity to continue engaging in such activities in the face of stressors requiring emotional force resistance and energy concentration. It appears that this is the most thorough definition available. It means that: economy relates to the economy of time; it denotes the speed at which an individual completes an activity; intelligence is manifest in activity; not in any activity, but in complex and difficult activities (including multiple difficulties); intelligence is manifest in abstract activity; An intelligent activity must be goal-oriented, have a distinctive mark, have social implications (being socially valuable and valued), it must have a mark of originality; an intelligent activity requires concentration of energy and an ability to remain unemotional – cool, calm and collected. Psychologists made serious attempts to define intelligence. Each definition attempts to emphasize one or more aspects of intelligence which the psychologist thought to be prominent or of prime importance. This is applicable to even the comprehensive definitions discussed. A clear understanding of intelligence is likely to emerge if attempts are made to study the structure of intelligence and the types of intelligence.

Structure of Intelligence:

Mental ability is analyzed to determine its underlying factors. In other words, the purpose of this analysis is to discover the elements or components of intelligence.

According to multifactor theory of Thorndike, intelligence constitutes a multitude of separate factors or elements each one being a minute element of ability. A mental act involves a number of these minute elements operating together. If performance on any two tasks are positively correlated, the degree of relationship is due to the number

common elements involved in these two tasks (transfer of learning: theory of identical elements).

According to the Two factor theory of Spearman, all intellectual activity depends primarily upon and is an expression of a general factor denoted by the symbol G possessed by all individuals but in different degrees. Mental tasks differ in respect to their demands upon this general factor. Spearman characterized this general factor as mental energy. This general factor G is involved in all cognitive performances. In addition every intellectual activity is also found to involve one or more specific factors related to that activity, referred to as S. Different cognitive functions will require different 'G' loadings. Certain operations like arithmetic reasoning or even vocabulary require a high G loading. Musical appreciation may depend more on a special ability and less on G. G relates to one's ability for seeing relationships. Relations and correlates are the two basic operations depending on G. According to Spearman only tests, which are designed to test the ability to deduce relations and correlates will be able to measure G loading that an individual possesses.

Thurstone's Primary Mental Abilities

Intermediate between these two theories (Thorndike and Spearman) are the group factor theories. Prominent among them is that of Thurstone's. His work has resulted in the construction of a set of measures called tests of primary mental abilities. Intelligent activity is not an expression of innumerable highly specific factors as Thorndike conceived of nor is it an expression of primarily of a general factor that pervades all mental activity and is the essence of intelligence as Spearman held. Instead certain mental operations have, in common, a primary factor that gives them a psychological and functional unity that differentiates them from other mental operations. These mental operations constitute a group and are denoted by 7 letters – NVWMSPR.

N – Numerical ability – ability to perform fundamental operations (with integers, fractions and decimals) with ease and accuracy.

V – Verbal comprehension – ability to define and understand the meanings of words, phrases, sentences, thought contained in a paragraph.

W – Word fluency – ability to think and use words rapidly – word power – a rich vocabulary.

M – Memory – ability to register, recall and recognize materials.

S – Space factor – ability to deal with three dimensional figures – to draw a design from memory or to visualize relationships.

P – Perceptual factor – ability to grasp visual details and identify similarities and differences between objects.

R – Reasoning (inductive and deductive) – ability to find rules, principles, concepts for understanding and solving problems. No individual is equally proficient or equally deficient in all the seven primary mental abilities – factors of intelligence identified by Thurstone.

Types of Intelligence

Thorndike identified three types of intelligence – abstract concrete and social.

Abstract intelligence refers to the ability of the individual to understand and deal with verbal and mathematical symbols; to deal with thoughts and ideas (abstract concepts).

Concrete intelligence (practical, mechanical) refers to the ability of the individual to understand and deal with things as in skilled occupations and mechanical appliances.

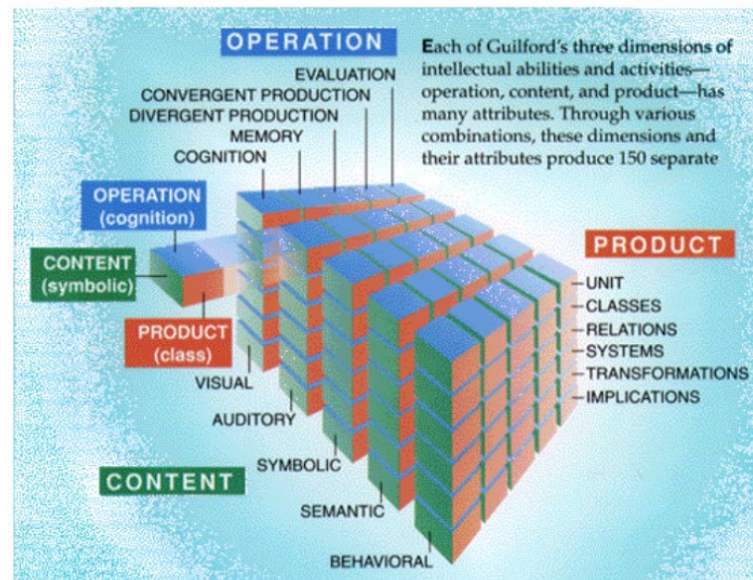
Social intelligence refers to the ability of the individual to understand and deal with people.

No individual is equally proficient or equally deficient in all the three types of intelligence identified by Thorndike.

Individuals who have a high degree of abstract intelligence shine in academic and intellectual pursuits. Individuals who have a high degree of concrete intelligence shine in mechanical work and practical fields.

Individuals who have a high degree of social intelligence shine in fields which require healthy interpersonal relations and ability to deal with people.

Guilford's Structure of Intellect – Three Faces of Intellect.



Cognition

Guilford conducted a series of studies and classified all intellectual abilities into a systematic framework called 'The Structure of Intellect' (the three faces of intellect). According to this model human intelligence can ultimately be broken into 120 factors; not all of them have been discovered as yet.

Guilford classified intellectual factors in three different ways: - Content, Operation, Product.

- (i) Content: It refers to the kind of information involved. Four different types have been identified.
 - Figural – involves concrete objects.
 - Symbolic – information represented by means of symbols, as in mathematics.
 - Semantic – meanings, verbal comprehension and general reasoning.
 - Behavioral – similar to social intelligence of Thorndike.
- (ii) Operation: Five types of operation that can be performed on a particular bit of information.
 - Cognition (understanding and comprehension)
 - Memory - Convergent production (ability to derive one right solution to a problem from the information provided)
 - Divergent production (Devising a number of possible solutions to the problem posed by a particular set of information. This is believed to be a vital factor in creative thinking). The result of convergent or divergent production is production of new information.
 - Evaluation (involving judgements as to accuracy, goodness, suitability or workability)
- (iii) Product: There are six different forms which each type of content may take – referred to as products.
 - unit – a single item of information
 - class – a group of units with common properties
 - relation – information may also come in this form

- system – between two things, or more complex involving a number of parts.
- transformation – information involving some form of change
- implication – involving possibilities offered by a piece of information.

Multiple Intelligence (MI)

Howard Gardner coined the term Multiple Intelligence (s), each relatively independent of others - word smart, number smart, music smart, space smart, body smart, self smart, people smart, and nature smart. Thus the eight forms of MI are Linguistic, Logical - Mathematical, Musical, Spatial, Bodily - Kinesthetic, Intrapersonal, Interpersonal, and Naturalistic. Gardner also speculates about a ninth possible intelligence – “existential intelligence” – “the ability to ponder large questions about life, death, existence”.

Emotional Intelligence (EI) Peter Salovey and John Mayer Coined the term Emotional Intelligence - the ability to perceive, express, understand and regulate emotions. According to them “Intelligence” can be classified into “Intellectual” (Thorndike’s Abstract) and “Emotional” (Thorndike’s ‘Social’). The five basic components of Emotional Intelligence are self - awareness, self - regulation, motivation, empathy and social skills. Self – appraisal inventories to assess one’s Emotional Intelligence and subsequently assess one’s E.Q. (Emotional Quotient).have been structured.

Stretching of the definition of Intelligence

Traditional Psychologists are not happy at the stretching of the conventional definition of Intelligence. They feel that Intelligence refers to mental abilities. According to them non - mental abilities need not be included in it since they may be included in (special) “talents” or “aptitude”. They are not happy over the attempts being made by several modern psychologists to include whatever ability they value (whether mental or non - mental) in “intelligence” since there is a prestige tag attached to it. They do agree that there are several non - mental abilities which facilitate success and happiness in life but this does not justify their inclusion in “Intelligence” However, inspite of their protests, “Intelligence” has, today, crossed its cognitive borders and has occupied the “affective” and psychomotor domains. For example today E.Q. (Emotional Quotient - an index of E.I.) is as important as I.Q. (“Intelligence” Quotient) and at times often more important than I.Q. for success and happiness in life.

Testing of Intelligence

Credit for construction of the first individual intelligence scale goes to Alfred Binet. With the assistance of Theodore Simon (a physician) he published the first edition of the now famous Binet-Simon Intelligence Scale in 1905. There were limitations in the original scale. Hence Binet and Simon revised and improved their scales in 1911. Binet arranged his tests in what is called age scale. Test items were assembled for different year levels and a child's intelligence was determined by the age level he could attain. Binet and Simon developed the concept of mental age. A mental age of 9 means that the child can do the tasks regarded as appropriate of 9 years. There have been a number of revisions of Binet's original scale. In 1917 Terman of Stanford University revised the scale (Stanford-Binet tests). A more extensive scale with two forms (equivalent) was developed by Terman with the assistance of Merrill in 1937 (Terman-Merrill scales). In 1960 another revision was done.

With Binet-Simon scales and later revisions as frames of reference, psychologists and educationists throughout the world have structured and validated a series of intelligence tests. Arnold Gesell constructed intelligence tests for children upto 3 years. Wechsler structured intelligence tests for adults (average adult and superior adult).

Intelligence Quotient

Intelligence quotient was originally defined as ratio of mental age with chronological age (as revealed from the date of birth of the child).

Intelligence Quotient = Mental Age / Chronological Age Later it was multiplied by 100 to arrive at whole numbers.

Intelligence Quotient (I.Q) – MA/CA X 100

In 1916 Binet-Simon revised format there are tests from 3 year level to 14 year level; in addition tests for average adult (CA = 16.5) and superior adult (CA = 19.5). Each year level consists of 6 subtests. If a child passes one test it is given a score of 2 months (towards his MA). There are no tests for age 11 and age 13. Hence at the 12 year level the child is given a score of 3 months for passing one subtest (there are 8 subtests for the 12 year level). Similarly a child is given a score of 4 months for passing one subtest at the 14 year level (there are 6 subtests for the 14 year level). The examiner goes down in the test until the level is reached where the subject passes all the items. This is called the basal year. The examiner then proceeds upward in the scale until the level is reached where the subject fails all the items. This level is called the terminal year. Each test carries specific credit, in terms of months, contributing to the mental age score. These credits are added to the age value of the basal year. The total is the mental age.

The psychologist makes the child feel at home and administers the tests in accordance with the established procedure. If the child is judged to be below normal the test begins with the items well below those designed for his chronological age level. Should the child appear average the first items administered are those meant for children just one year below his chronological age level. The objective is to give the child a taste of success in the initial stages of testing so that he will be motivated best.

Here is an illustration for calculation of I.Q.

Age of the child = 6 years (C.A.)

Mental Age

3 year level – all tests passed

4 year level - all tests passed

5 year level – all tests passed --- ---

(Basal year – full credit) 5 x 12 = 60

6 year level – 5 tests passed5 x 2 = 10

7 year level – 3 tests passed..... 3 x 2 = 6

8 year level – 1 test passed 1 x 2 = 2

9 year level – No test passed0 x 2 = 0

(Terminal year) 78

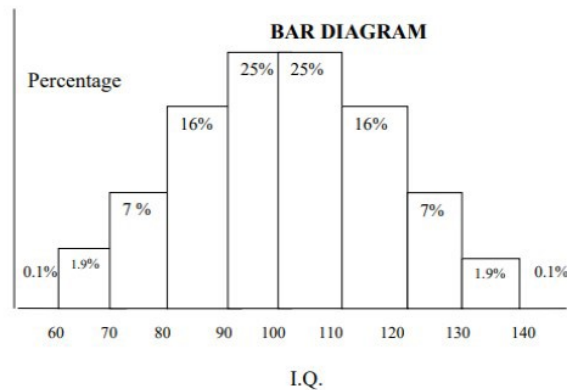
IQ = MA/CA x 100 = 78/72 x 100

Constancy of Intelligence Quotient

It is seen that the mental age is increasing with chronological age but not the intelligence quotient. This is known as the constancy of intelligence quotient. This concept has raised a number of problems – the limits of the mental age. Physical growth and development stops mostly by the time the individual reaches the later adolescent stage. Similarly the mental growth also stops somewhere between 16 and 20. This does not mean that the adult above 20 is intellectually the same as he was in his 16th year. His capacity may be the same but his actual achievement will naturally be different because of experience and learning. So as a practical device in computing the intelligence quotient of an adult, chronological age is always taken to be 16 or 18 or 20 depending upon the nature of the test used (average adult, superior adult). Measured I.Q. is constant because mental age increases in parallel with chronological age. Mental age reaches the maximum limit by the age of around 20 and it remains more or less the same for a period of 10-20 years. The degree of decline thereafter depends upon factors like health (physical), motivation, interest, attitude and the like.

Distribution of Intelligence Quotient in General Population: If we measure intelligence of a large number of people forming a good representative of the general population and plot the results in the form of a graph, we get one that assumes a definite shape. This is called the NPC (normal probability curve)

- bell shaped and symmetrical
- bell shaped and symmetrical. Or a Histogram / Bar Diagram



- Intelligence Quotient:**
- 90 – 110 - Normal (50% of the population)
 - 110-120 - Above Normal
 - 120-130 - Superior (Bright)
 - 140 above - very superior (Brilliant)
 - 80-90 - below normal
 - 70-80 - Dull
 - 60-70 - Borderline
 - Below 60 - Mentally Retarded

Only rarely one in one thousand we find either a genius (brilliant) or an extremely feeble minded person (mentally retarded). MR (the mentally retarded) can be classified into three categories – educable, trainable, custodial.

Educable MR are those dull children who will learn something if intensive and extensive instruction is offered by 1.9% 7 % 16% 25% 25% 16% 7% 1.9% teachers with patience through drill, review and repetition (recurring learning experiences). To that extent they are educable. We can make their heads function.

Trainable MR are not educable in the sense we cannot make their heads function. But their hands can be trained. We can make their hands function. They may be trained in some semiskilled or unskilled work which requires training in motor activities.

Custodial MR can neither be educated nor trained; they are permanent social liabilities; they must be in the safe custody of elders of the family or others. They cannot even protect themselves from danger or threats – infrahuman in behavior though human in physique.

Group Tests and Individual Tests Intelligence tests can be classified under categories of group tests and individual tests. These two types of tests have been constructed mostly to meet practical necessities. If a large number of subjects are to be tested, it would be more convenient to test them in large groups to save time. But under certain situations as in a guidance clinic each individual must be tested separately.

Verbal and Non-verbal Tests Non-verbal tests were developed when people of different languages or those not good at verbal ability had to be tested. Nonverbal tests are also called performance tests (paper and pencil tests) since in these tests one has to perform

some kind of motor activities for which directions are given. The test items involve the same factors of intelligence.

Limitations of Intelligence Tests Three main objections are levelled against Stanford-Binet revision. - A child who comes from a better environment will be in a more advantageous position than another from a comparatively ill equipped home. As against this objection tests are devised to

- measure the factors of intelligence or primary abilities rather than knowledge.
- Children who have a better vocabulary will have an undue advantage since all these tests are verbal. To meet this objection various types of non-verbal tests have been developed.
- The tests of Binet and Terman are, to a large extent, bound by cultural factors. As such they can only be used within a particular area. Some psychologists have attempted to construct tests avoiding influences of cultural factors calling them culture free tests (free from one particular culture) or culture fair tests (fair to all cultures).

Differential Studies Studies have indicated that there is no gender difference in intelligence. If a random sample of boys and girls is chosen and an intelligence test is administered to the sample, it will be found that the average Intelligence quotient of boys will be almost equal to average Intelligence quotient of girls. Male superiority in certain factors like N, S, R and female superiority in certain the factors like V, W, P as findings of earlier research studies have now been exploded. Teacher evaluation of the intelligence of an individual is not to be based on sex or gender but to be based on performance. Studies have further indicated that there is no particular race, community, culture or caste superior to others in intelligence.

Potential Intelligence and Functional Intelligence We come across a few students (boys and girls) who happen to be below average at the primary level in respect to their academic achievement. They become average students at the secondary school level. They become above average (some of them even superior) students at the higher education level. They are called 'late bloomers'. They seem to have become more intelligent gradually. But, intelligence quotient is constant. The apparent increase in their Intelligence quotient is definitely a fallacy. The fact is that they have been intelligent right from the beginning but unfortunately the classroom climate at the lower level has not been conducive for using their mental abilities. When the class room climate gradually becomes conducive it gradually unfolds their mental abilities. Their potential intelligence starts functioning. Garrison identifies two levels of operation of intelligence – potential and functional. If intelligence remains only as a potential but does not function it is of no use. Here is an illustration; there are two individuals A and B. A has an Intelligence quotient of 130 and B has an Intelligence quotient of 120. B is a success; A is not a success. How do you account for it? B makes the best use of his Intelligence (his potential functions) but A does not make the best use of his Intelligence (his potential does not function). Home climate, classroom climate, campus climate and social climate must be conducive for effective functioning of potential intelligence. Success in life depends upon one's ability to convert potential intelligence into functional one.

Uses of Intelligence Tests

- Educational guidance: Students may be assessed effectively and given appropriate quality of work. It can also be found whether a student's failure is due to lack of required mental ability or due to lack of application to work (lack of interest).
- Vocational guidance: Intelligence tests are used in any judgement of vocational guidance and proper vocational selection.

- Study of personality: There are psychologists who consider intelligence an important component of one's personality (Cattell). Without a knowledge one's intelligence quotient it is not possible to get a clear picture of one's personality.
- Explosion of misconceptions: Modern intelligence tests have also helped us to discard old misconceptions on the superiority of male gender and superiority of a particular race, community, culture, or caste over the others Intelligence is gender free, race free, community free, culture free, caste free.
- Nature and Nurture: We have been able to study the relative influence of heredity and environment on intelligence. Nature and nurture are interdependent on functional intelligence.
- Concept of Intelligence: The process of test construction has sharpened and made clear the very concept of intelligence
 - composite nature of this general mental ability.

Aptitude An aptitude is a combination of characteristics indicative of an individual's capacity to acquire (with training) some specific knowledge, skill or a set of organized responses such as ability to speak a language, to become a musician, to do mathematical work. An aptitude test, therefore, is one designed to measure a person's potential ability in an activity of a specialized kind and within a restricted range.

Aptitude tests are to be distinguished from those of general intelligence and from tests of skill or proficiency acquired after training or experience. They should be distinguished from educational achievement tests, which are designed to measure an individual's quantity, and quality of learning in a specified subject of study after a period of instruction.

Aptitude is different from skill or proficiency. Skill means ability to perform a given act with ease and precision. Proficiency has much the same meaning, except that it is more comprehensive, for it includes not only skills in certain types of motor and mental activities, but also other types of activities as shown by the extent of one's competence in language and in different academic disciplines. We may speak of one's proficiency in any type of performance. On the other hand when we speak of an individual's aptitude for a given type of activity we mean the capacity to acquire proficiency under appropriate conditions, that is, his potentialities at present as revealed by his performance.

The terms aptitude, ability or capacity mean more or less the same factor and are often used interchangeably. Aptitude is potential; it is revealed in performance; aptitude has future reference in that it sets limits of what a person will achieve when given opportunity and training. Achievement, on the other hand, is actual performance; it is what the person does regardless of his capacities. Aptitude is what one can do; achievement is what one does.

Intelligence tests (general mental ability tests) are usually employed in educational guidance and counselling.

They are limited in scope. For vocational guidance and counselling aptitude tests are largely being used. According to one school of thought, intelligence tests are only academic aptitude tests. DAT (Differential Aptitude Test) is being used today. Aptitude tests have been structured and validated to test aptitudes related to verbal, numerical, spatial, perceptual, artistic, aesthetic, musical, mechanical, social, scientific, clerical, managerial, practical and the like.

References:

- Mangal S.K., (2003), "Advanced Educational Psychology", Prentice-Hall, New Delhi, India.
- Dandpani S.(2006) A text book advanced educational psychology: Bangalore ,Anmol publication private limited.

- Khan M.A.(2007),Fundamentals of educational psychology, Himalaya publishing House.
- kundu C.L., Tutoo D.N (2004),Educational psychology, New Delhi, sterling publishers private limited.
- Nanda S.K.,(2008),Philosophical And Sociological Foundations Of Education, Delhi, Doaba Book House.
- Nayak N.K. & Rao V.K. (2004) Educational psychology, New Delhi, APH Publishing Corporation.
- walia J.S. (2002) , Foundation Of Education Psychology , Jalandhar: Paul publishers.
- Chauhan s.s.: (1999) Advanced Educational Psychology. Vikas Publishing House, New Delhi
- Dr. Mathur S.S.: (2000) Educational Psychology. Vinod Pustak Mandir, Agra
- Walia J.S.: (1999) Foundation of Educational Psychology. Paul Publishers, Jalandhar

Weblinks

1. <http://www.indiana.edu/~intell/anastasi.shtml>
2. <http://www.chiron.valdosta.edu/whuitt/col/cogsys/intell.html>
3. <http://www.humandimensions.org/emotion.htm>
4. <http://www.emotionaliq.com/Gdefault.htm>
5. <http://edweb.gsn.org/edref.mi.intro.html>
6. <http://www.talentsmart.com>
7. <http://www.kent.ac.uk/career/psychotestS.com>
8. general-psychology.weebly.com/how-do-we-measure-intelligence.html



व्यक्तित्व

डॉ.सुनील कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर

बैकुंठ शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय

अम्लोरी सिवान, बिहार

प्रस्तावना

व्यक्तित्व शब्द भी सामान्य धाराओं में अनेक प्रकार से समझा जाता है प्रायः शारीरिक गठन चरित्र सामान्य व्यवहार तथा नित्य पढ़ने वाला प्रभाव जो किसी अमुक व्यक्ति से जोड़ लिया जाता है व्यक्तित्व के अर्थ में लिए जाते हैं इस प्रकार यह शब्द अनेक तथा व्यापक अर्थ रखता है और विभिन्न व्यक्ति उसे विभिन्न मतानुसार अनुसार स्पष्ट करते हैं

इन कर्म से इसकी व्याख्या तथा अर्थ निश्चित करने में कठिनाई आना स्वाभाविक है संतोष की बात यह है कि बुद्धि के समान व्यक्तित्व के क्षेत्र में भी मनोविज्ञान में बड़ा लाभप्रद एवं महत्वपूर्ण कार्य किया गया है तथा तथा आधुनिक मनोविज्ञान में व्यक्तित्व से संबंधित अनेकों प्रयोग परीक्षण तथा अध्ययन के फल स्वरूप आज तक जो जानकारी उपलब्ध है उसे इस जटिल शब्द को समझने में बहुत सहायता मिल रही है व्यक्तित्व को समझने की चेष्टा के उद्देश्य से मानव सभ्यता के प्रारंभिक चरणों से आधुनिक काल तक सतत होता रहा है। फलस्वरूप विश्व के अनेक धर्म के अतिरिक्त व्यक्तित्व के संबंध में रुचि साहित्य कला एवं प्राचीन धाराओं आदि में स्पष्ट देखी जा सकती है। प्राचीन भारत के चिकित्सा विज्ञान में तो विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व का विश्लेषण गन लक्षण चरित्र एवं स्वभाव के आधार पर बड़े ही तर्क पूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है और इस विश्लेषण के आधार पर व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए उपचार की दिशा निश्चित की गई है इसी प्रकार का कार्य प्राचीन यूनान में भी हुआ है जिसके फल स्वरूप यूनान के चिंतकों ने व्यक्तित्व के अनेक प्रकार मानते हुए न केवल चिकित्सा विज्ञान में वरन साहित्य तक में अपने मूल्यवान विचार व्यक्त किए हैं आधुनिक मनोविज्ञान इन प्राचीन धारणाओं से सर्वथा अछूता रहा हो।

व्यक्तित्व का अर्थ (Meaning of Personality)

व्यक्तित्व को बताने का सबसे पहले प्रयास जीने फ्राँड आदि ने किया था। व्यक्तित्व शब्द अंग्रेजी के Personality का हिंदी रूपांतरण है जो लैटिन भाषा क परसोना(Persona) शब्द से बना है परसोना का अर्थ नकाब या मुखौटा होता है जिसे नायक या नायिकाएं नाटक (Play) करते समय अपने चेहरे पर लगाते हैं यूनान में नाटक करते समय अभिनेता भी ऐसे ही मुखौटे पहना करते थे और उन्हें ही परसोना कहा जाता था यहीं परसोना शब्द बदलते बदलते पर्सनैलिटी Personality बन गया

अन्य शब्दों में व्यक्तित्व का तात्पर्य वह है जो दूसरों को दिखाई देता है जिस व्यक्तित्व का बाहरी दिखावा भड़कीला वह आकर्षित करने वाला होता है उसे अच्छे व्यक्तित्व का तथा जिसका बाहरी दिखावा साधारण होता है उसे काम अच्छे व्यक्तित्व वाला समझा जाता है लेकिन साधारण दृष्टि में ना तो व्यक्तित्व वाही है जो ऊपर से दिखाई देता है और न केवल उसके आंतरिक गुण ही उसके व्यक्तित्व के अंग है अपित व्यक्तित्व इन दोनों का मिला-जुला रूप होता है

परिभाषा (Definition)-

गिलफोर्ड के अनुसार- "व्यक्तित्व सील गुणों का एक समन्वित पैटर्न है

मन के अनुसार- " व्यक्तित्व व्यक्ति की संरचनाओं व क्रियो का सबसे विशिष्ट समन्वय है

आलपोर्ट के अनुसार- " व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते हैं

आईजेक के अनुसार- " व्यक्तिगत व्यक्ति के चरित्र चित प्रकृति ज्ञान शक्ति तथा शरीर गठन का करीब करीब एक अस्थाई एवं टिकाऊ संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है

वॉटर मिस केल के अनुसार- " प्रयाग व्यक्तित्व से तात्पर्य व्यवहार के उसे विशिष्ट पैटर्न (जिसमें चिंतन एवं संवेग भी सम्मिलित हैं) से होता है जो प्रत्येक व्यक्ति की जिंदगी की परिस्थितियों के साथ होने वाले समायोजन का निर्धारण करता है

बोरिंग के अनुसार- " व्यक्तित्व व्यक्ति का अपने वातावरण के साथ अपूर्व और स्थाई समायोजन है।

व्यक्तित्व की विशेषताएं

- 1 व्यक्तित्व मूल प्रवृत्तियां और अनुभव के द्वारा अर्जित संस्कारों का योग है
- 2 व्यक्तित्व में वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों प्रकार के घटकों का योग होता है
- 3 व्यक्तित्व में विभिन्न गुणों का एकीकरण होता है
- 4 व्यक्तित्व का अपने वातावरण के साथ अपूर्व तथा स्थाई समायोजन है
- 5 व्यक्तित्व एक गतिशील प्रक्रिया है
- 6 व्यक्तित्व जन्मजात और अर्जित प्रवृत्तियों का योग है
- 7 व्यक्तित्व का आकलन समाज के संदर्भ में ही संभव होता है
- 8 मनुष्य की आदतों लक्षणों तथा दृष्टिकोण की व्यवस्था प्रणाली है
- 9 व्यक्तित्व से विशिष्टीकरण होता है
- 10 जीवन विस्तार व्यक्तित्व के आयाम को निर्धारित करता है
- 11 स्वभाव एवं चारित्रिक गुणों का अद्भुत मिश्रण है
- 12 व्यक्ति के अपने निजी गुणों तथा जीवन शैली को व्यक्तित्व कहते हैं

व्यक्तित्व के प्रकार-

प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है यह भेद होते हुए भी व्यक्तियों में उसकी प्रकृति के अनुसार कुछ ना कुछ समानता पाई जाती है इस समानता के आधार पर ही व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया जाता है आधुनिक मनोविज्ञान के आधार पर हम व्यक्तित्व को इस प्रकार तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं -

- भाव प्रधान व्यक्तित्व
- क्रिया प्रधान व्यक्तित्व
- विचार प्रधान व्यक्तित्व

1 **भाव प्रधान व्यक्तित्व-** भाव प्रधान व्यक्तित्व वाले व्यक्ति वे कहे जाते हैं जो भावना के प्रेरणा के आवेश में आकर किसी काम को कर जाते हैं

भाव प्रधान व्यक्तित्व को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं

- 1 प्रफुल्ल
- 2 चिड़चिड़ी
- 3 अस्थिरता
- 4 उदास

1 **प्रफुल्ल** – ऐसे व्यक्ति की प्रकृति आशावादी हुआ करती है

2 **चिड़चिड़ी** – ऐसे व्यक्ति थोड़ी सी बात पर झगडा कर बैठते हैं

3 **अस्थिरता** – इस प्रकार के व्यक्ति का मिजाज परखना मुश्किल हो जाता है क्योंकि वे थोड़ी देर में तो प्रसन्न हो जाते हैं और थोड़ी देर में दुखी इस प्रकार के व्यक्ति अपने को नियंत्रित नहीं कर पाते

4 **उदास** – यह व्यक्ति हमेशा दुख में रहा करते हैं यह प्राय निराशावादी प्रकृति के हुआ करते हैं

2 क्रिया प्रधान व्यक्तित्व - इस प्रकार के व्यक्तियों की यह विशेषता होती है कि वह हर समय कुछ ना कुछ रचनात्मक कार्य करते रहने की प्रबल इच्छा रखते हैं मस्तिष्क के काम को कुशलता से नहीं कर पाते लेकिन शारीरिक परिणाम से किए जाने वाले कार्यों को यह कुशलता पूर्वक ढंग से कर लेते हैं इनकी ऐसे कार्यों में विशेष रुचि होती है ऐसे व्यक्तित्व प्रायः मैनेजर सलाहकार सैनिक पहलवान खिलाड़ी आदि होते हैं

3 विचार प्रधान व्यक्तित्व - विचार प्रधान व्यक्तियों का वर्गीकरण निम्नलिखित मनोवैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया गया है

जुग का वर्गीकरण -

व्यक्तित्व-

1 अंतर्मुखी

2 बहिर्मुखी

3 उभय मुखी

1 अंतर्मुखी - अंतर्मुखी व्यक्तित्व के लक्षण स्वभाव आदतें अभिवृत्तियां और अन्य चालक वह रूप से प्रकट नहीं होते हैं इसलिए ऐसे व्यक्तियों को अंतर्मुखी कहा जाता है इनका विकास वह रूप से न होकर आंतरिक रूप से होता है

ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपने आप में अधिक रुचि रखते हैं उनमें आंतरिक विश्लेषण की मात्रा बहुत अधिक होती है वे संकोची होने के कारण शर्मिले होते हैं वे कल्पना के संसार में उड़ान लेते हैं और कभी-कभी आदर्शवादी भी बन जाते हैं उनकी मानसिक शक्ति का विकास विशेष रूप से होता है उनकी मानसिक शक्ति का विकास विशेष रूप से होता है संक्षिप्त रूप से अंतर्मुखी वर्ग में उन व्यक्तियों को रखा जाता है जो आत्म केंद्रित आत्मचिंतक एकांत प्रिय और संकोची होते हैं और साथ ही साथ संवेदनशील कर्तव्य निष्ठ और मितव्ययी होते हैं ऐसे व्यक्ति लोक व्यवहार में प्रायः कम कुशल होते हैं

2 बहिर्मुखी - बहिर्मुखी व्यक्तित्व के मनुष्य अतः मुखी व्यक्तित्व वाले मनुष्यों से विपरीत स्वभाव के होते हैं इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों का झुकाव वह तत्वों की ओर होता है यह संसार के भौतिक और सामाजिक लक्ष्मी में विशेष रुचि रखते हैं वे विचारों और भावनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकते हैं वे वह सामंजस्य के प्रति सदैव सचेत रहते हैं और कार्यों एवं कथनों में अधिक विश्वास रखते हैं इस व्यक्तित्व के मनुष्य अधिकांश रूप से सामाजिक राजनीतिक या व्यापारिक नेता होते हैं यद्यपि उनका अपना आंतरिक जीवन होता है पर वे वह पक्ष की ओर अधिक आकर्षित रहते हैं

संक्षिप्त रूप से इस वर्ग में ऐसे व्यक्तियों को रखा जाता है जो समाज केंद्रित व्यवहारिक साहसिक चिंता मुक्त और आशावादी होते हैं ऐसे व्यक्ति सामाजिक कार्यों में रुचि लेते हैं और लोकप्रियता प्राप्त करते हैं

3 उभयमुखी - जिन व्यक्तियों में अंतर्मुखी व्यक्तित्व के अधिक लक्षण होते हैं उन्हें अंतर्मुखी वर्ग में रखते हैं और उनमें बहिर्मुखी व्यक्तित्व के अधिक लक्षण होते हैं उन्हें बहिर्मुखी वर्ग में रखते हैं और जिन व्यक्तियों में अंतर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों व्यक्तियों के लक्षण विद्यमान होते हैं उन्हें उभय मुखी वर्ग में रखा जाता है

निष्कर्ष -

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व के द्वारा किसी व्यक्ति की वाहा और आंतरिक मनोदशा को समझने का एक सशक्त माध्यम है इसके द्वारा ही व्यक्ति अपने समाज में समायोजन करना सीखना है साथ ही नित नए-नए अनुभव को ग्रहण करते हुए अपने व्यवहार को संतुलित बनाने का भी प्रयास करता है।

अतः यह सत्य है कि व्यक्ति की कार्य प्रणाली पर उसके व्यक्तित्व का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है जिसके द्वारा हम उसे व्यक्ति विशेष की कार्य क्षमता और उसके दृष्टिकोण का सही-सही अवलोकन और मूल्यांकन किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

- 1 शिक्षा मनोविज्ञान सुरेश भटनागर डॉक्टर महिमा गुप्ता डॉक्टर केपी सिंह आर लाल बुक डिपो मेरठ
- 2 शिक्षा मनोविज्ञान की मूल तत्व डॉ आर ए शर्मा डॉ श्रीमती शिखा चतुर्वेदी आर लाल बुक डिपो मेरठ
- 3 शिक्षा मनोविज्ञान डॉ राम सकल पांडे आर लाल बुक डिपो मेरठ
- 4 अधिगम के लिए आकलन विपिनअस्थाना अग्रवाल पब्लिकेशंस आगरा
- 5 शिक्षा मनोविज्ञान अरुण कुमार सिंह भारतीय भवन तृतीय संस्करण 2
- 6 आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान आर• एन• सिंह , अंजुम• एन • कुरैशी , शुभ्रा एस भारद्वाज अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा सेकंड एडिशन 2012
- 7 आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान डॉ प्रीति वर्मा, डॉ• डी• एन• श्रीवास्तव अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा 17वां संस्करण 2010
- 8 आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन डॉ महेश भार्गव एचपी भार्गव बुक हाउस आगरा



Measurement of Personality

Dr. Vinay Kumar Singh

Assistant Professr (Education)

Dr. Ram Manohar Lohia P.G. College
Bhairav Talab, Varanasi.

1.1 Introduction:

This book chapter delves into the intricate domain of personality measurement, exploring its significance, methodologies, and applications. Personality, a complex amalgamation of traits and characteristics, plays a pivotal character in affecting individual behavior, cognition, and emotions. Various methods to personality measurement, along with self-report records, projective techniques, and behavioral observations, are examined, alongside their strengths, limitations, and controversies. Additionally, advancements in psychometric theory and technology-driven assessments are discussed, highlighting emerging trends and future directions in the field of personality measurement.

1.1.1 Personality

Personality is a multifaceted construct encompassing an individual's unique pattern of thoughts, emotions, and behaviors. It reflects enduring traits and characteristic patterns of interaction with the environment, shaped by biological, psychological, and social factors. Personality encompasses dimensions such as extraversion, agreeableness, conscientiousness, neuroticism, and openness to experience, as proposed by trait theory. Additionally, psychodynamic perspectives emphasize unconscious drives and conflicts, while humanistic approaches focus on self-actualization and personal growth. Overall, personality is a dynamic and complex interplay of genetic predispositions, environmental influences, and developmental experiences, contributing to the richness and diversity of human behavior.

1.1.2 Significance of Personality Measurement:

Personality measurement holds significant importance in various domains, including psychology, sociology, and organizational behavior. Understanding individual differences in personality aids in predicting and explaining behavior, facilitating effective interpersonal relationships, and guiding personal and professional development. In clinical settings, it informs diagnosis and treatment planning, while in organizational contexts, it guides personnel selection, team composition, and leadership development. Moreover, personality assessment contributes to research endeavors by providing insights into human nature, enhancing our understanding of psychological phenomena, and informing theoretical frameworks. Overall, personality measurement serves as a foundational tool for comprehending and navigating the complexities of human behavior and interaction.

1.2 Historical Perspectives:

1.2.1 Early Approaches to Personality Assessment:

Early approaches to personality assessment were rooted in subjective observations and philosophical speculation. Ancient civilizations, such as the Greeks and Egyptians, proposed typologies based on bodily fluids or humors. During the Middle Ages, personality was linked to astrological beliefs. The Renaissance era witnessed the emergence of characterology, emphasizing the categorization of personality traits. However, it was not until the late 19th and early 20th centuries that systematic efforts to measure personality began, with pioneers like Francis Galton exploring hereditary

influences and Sigmund Freud introducing psychoanalytic theory. These early endeavors laid the foundation for modern personality assessment techniques.

1.2.2 Evolution of Psychometric Methods:

The evolution of psychometric methods spans from early efforts in the late 19th century, focusing on intelligence testing by pioneers like Alfred Binet, to the refinement of statistical techniques in the 20th century. Notable advancements include the development of factor analysis by Charles Spearman, paving the way for trait-based approaches. The mid-20th century saw the rise of self-report inventories, such as the Minnesota Multiphasic Personality Inventory (MMPI), revolutionizing personality assessment. Modern psychometrics integrates advanced statistical models, computerized adaptive testing, and item response theory, facilitating precise measurement and interpretation of psychological constructs across diverse populations.

1.3 Theoretical Frameworks:

1.3.1 Trait Theory:

Trait theory, epitomized by the Big Five model, proposes that personality consists of five broad dimensions: openness, conscientiousness, extraversion, agreeableness, and neuroticism. Developed through factor analysis, this framework provides a comprehensive yet parsimonious model of individual differences. Beyond the Big Five, trait theorists explore facets within each dimension and propose additional traits to capture nuances of personality. This theory revolutionized personality psychology by offering a structured and empirically validated framework for understanding and measuring personality traits, influencing research, assessment, and practical applications across various fields.

1.3.2 Psychodynamic Approaches:

Psychodynamic approaches, pioneered by Sigmund Freud, emphasize the role of unconscious processes and early childhood experiences in shaping personality. Freud's psychoanalytic theory posited three structures of personality: the id, ego, and superego and the dynamic interplay between them. Neo-Freudian theorists, like Carl Jung and Alfred Adler, expanded upon Freud's ideas, introducing concepts such as collective unconscious and inferiority complex. These theories underscored the significance of unconscious conflicts, defense mechanisms, and intrapsychic dynamics in understanding personality development and behavior, profoundly influencing psychotherapy and laying the groundwork for subsequent psychological theories.

1.3.3 Humanistic and Existential Perspectives:

Humanistic and existential perspectives center on the subjective experiences and inherent potential for personal growth and self-actualization. Humanistic psychology, championed by Carl Rogers and Abraham Maslow, emphasizes the importance of self-awareness, self-acceptance, and authentic living. It highlights the concept of unconditional positive regard and the client-centered approach in therapy. Existential psychology, influenced by philosophers like Søren Kierkegaard and Jean-Paul Sartre, focuses on individual freedom, responsibility, and the search for meaning in life. These perspectives reject determinism and emphasize the unique experiences and choices that shape individuals, offering alternative frameworks for understanding human nature and psychological well-being.

1.3.4 Biological and Evolutionary Influences on Personality:

Biological and evolutionary influences on personality posit that genetic predispositions and adaptive behaviors shaped by evolution contribute to individual differences. Biological factors such as neurotransmitter levels, brain structures, and hormonal regulation influence temperament and predispose individuals to certain personality traits. Evolutionary psychology suggests that personality traits, such as extraversion or agreeableness, may have evolved as adaptive strategies to enhance survival and

reproductive success. These perspectives highlight the interplay between biology, genetics, and environment in shaping personality, offering insights into the biological underpinnings of human behavior and the evolution of personality traits over time.

1.4 Methods of Personality Measurement:

1.4.1 Self-Report Inventories:

Self-report inventories are widely used tools for personality assessment, allowing individuals to describe their own traits, attitudes, and behaviors. The Minnesota Multiphasic Personality Inventory (MMPI) assesses psychopathology and personality characteristics, aiding in clinical diagnosis and treatment planning. The NEO Personality Inventory-Revised (NEO-PI-R) measures the Big Five personality traits openness, conscientiousness, extraversion, agreeableness, and neuroticism providing a comprehensive profile of an individual's personality. The Myers-Briggs Type Indicator (MBTI) categorizes individuals into personality types based on preferences in four dichotomous dimensions extraversion/introversion, sensing/intuition, thinking/feeling, and judging/perceiving facilitating self-awareness and interpersonal understanding. These inventories offer structured and standardized methods for personality assessment in various settings.

1.4.2 Projective Techniques:

Projective techniques aim to reveal unconscious aspects of personality by presenting ambiguous stimuli for interpretation. The Rorschach Inkblot Test involves showing individuals symmetrical inkblots and asking them to describe what they see, providing insights into their thought processes and emotions. Similarly, the Thematic Apperception Test (TAT) presents individuals with ambiguous pictures and prompts them to create stories, illuminating their underlying motives, conflicts, and desires. While these techniques offer rich qualitative data, their subjective interpretation and reliability have been subjects of debate, yet they remain valuable tools in clinical assessment and psychoanalytic research.

1.4.3 Behavioral Observations and Ratings:

Behavioral observations and ratings involve systematic assessment of an individual's behavior in natural or controlled settings. Observers record specific behaviors, such as social interactions or task performance, using predefined criteria or rating scales. This method provides objective data on observable behaviors, allowing for direct assessment of skills, competencies, and interpersonal dynamics. Behavioral observations are utilized in clinical, educational, and organizational contexts for diagnosis, intervention planning, and performance evaluation. While prone to observer bias and context-specific limitations, behavioral assessments offer valuable insights into an individual's functioning and can complement other methods of personality assessment.

1.4.4 Implicit Measures:

Implicit measures, exemplified by the Implicit Association Test (IAT), assess unconscious attitudes and biases by examining reaction times to stimuli pairs. The IAT measures the strength of associations between concepts (e.g., race, gender) and evaluations (e.g., positive or negative) by assessing participants' response speed to categorize stimuli. Faster response times suggest stronger associations. Widely used in social psychology, the IAT offers insights into implicit attitudes and stereotypes that individuals may be unaware of or unwilling to report. Despite its utility, the IAT has faced criticisms regarding its reliability, validity, and susceptibility to situational factors, necessitating cautious interpretation of results.

1.4.5 Neuroscientific Approaches:

Neuroscientific approaches, including EEG (electroencephalography), fMRI (functional magnetic resonance imaging), and PET scans (positron emission tomography), examine

brain activity to understand the neural correlates of personality traits and behaviors. EEG records electrical activity in the brain, offering insights into cognitive processes and emotional responses with high temporal resolution. fMRI measures changes in blood flow, indicating neural activation in specific brain regions, providing detailed spatial information. PET scans track metabolic activity using radioactive tracers, highlighting brain regions involved in various tasks and mental states. These techniques illuminate the neural underpinnings of personality, enhancing our understanding of human behavior and cognition.

1.5 Assessment Challenges and Controversies:

1.5.1 Response Biases and Social Desirability:

Response biases and social desirability refer to tendencies for individuals to distort their self-reports in a favorable manner, either consciously or unconsciously. Response biases may include acquiescence (tendency to agree with statements), extreme responding (selecting extreme options), or social desirability (presenting oneself in a socially acceptable light). These biases can compromise the validity of personality assessments by distorting true personality traits and behaviors. Strategies to mitigate response biases include using anonymous surveys, incorporating validity scales, and emphasizing confidentiality to encourage honest self-disclosure, ensuring more accurate and reliable personality assessment results.

1.5.2 Cultural Bias in Personality Assessment:

Cultural bias in personality assessment refers to the tendency for assessment tools to favor certain cultural groups over others, leading to inaccurate interpretations of personality traits. Factors such as language, values, and norms vary across cultures, impacting individuals' responses to assessment items. Western-centric constructs may not adequately capture the diversity of personality expression in non-Western cultures, leading to misinterpretations or underestimations of personality traits. To address cultural bias, assessment tools should undergo rigorous cross-cultural validation, consider cultural context in item development, and employ culturally sensitive scoring and interpretation methods, ensuring fair and accurate assessment across diverse cultural groups.

1.5.3 Reliability and Validity Concerns:

Reliability and validity are paramount in personality assessment, ensuring accuracy and consistency of measurement. Reliability concerns the consistency of results over time or across different administrations of the assessment. Test-retest reliability and internal consistency measures (e.g., Cronbach's alpha) assess reliability. Validity refers to the extent to which an assessment tool measures what it intends to measure. Content validity, criterion validity, and construct validity assess different aspects of validity. Concerns arise when assessments lack reliability or validity, leading to inaccurate conclusions about individuals' personality traits or behaviors. Rigorous psychometric testing and validation procedures are essential to ensure the trustworthiness and usefulness of personality assessments.

1.5.4 Ethical Considerations in Personality Measurement:

Ethical considerations in personality measurement involve safeguarding participants' rights, privacy, and well-being throughout the assessment process. Informed consent ensures individuals understand the purpose, procedures, and potential risks of the assessment. Confidentiality protects participants' sensitive information from unauthorized disclosure. Additionally, assessments should be culturally sensitive and free from biases to avoid harm or misrepresentation. Practitioners must adhere to professional standards and guidelines, including obtaining ethical approval for research involving human participants. Transparent communication, respect for autonomy, and ensuring the welfare of participants are fundamental ethical principles in personality measurement, fostering

trust and integrity in psychological research and practice.

1.6 Advancements and Innovations:

1.6.1 Computerized Adaptive Testing (CAT):

Computerized Adaptive Testing (CAT) is an advanced assessment method that tailors test questions to individual test-takers based on their responses. Adaptive algorithms adjust the difficulty level of subsequent items in real-time, optimizing measurement precision and efficiency. CAT reduces test length and minimizes respondent burden by administering only relevant items, while maintaining measurement accuracy. By dynamically adapting to each test-taker's ability level, CAT provides more precise and reliable estimates of personality traits or abilities compared to traditional fixed-item tests. This technology-driven approach enhances assessment flexibility, scalability, and accessibility, revolutionizing the field of personality measurement in research, clinical, and educational settings.

1.6.2 Mobile Applications and Digital Platforms:

Mobile applications and digital platforms have transformed personality assessment, offering convenient and accessible tools for self-discovery and personal development. These apps provide users with a wide range of assessments, including personality tests, mood trackers, and mindfulness exercises, empowering individuals to gain insights into their behaviors, emotions, and thought patterns. With user-friendly interfaces and interactive features, mobile apps engage users in the assessment process, fostering self-awareness and facilitating behavior change. Digital platforms also facilitate data collection and analysis on a large scale, enabling researchers to explore trends in personality traits and mental health outcomes across diverse populations.

1.6.3 Machine Learning and Artificial Intelligence in Personality Assessment:

Machine learning and artificial intelligence (AI) revolutionize personality assessment by analyzing vast datasets to identify patterns and predict individual traits or behaviors. These techniques utilize sophisticated algorithms to extract meaningful insights from diverse sources, including social media posts, online interactions, and physiological data. By integrating multiple data modalities, machine learning models offer more comprehensive and nuanced assessments of personality traits, enhancing predictive accuracy and personalized recommendations. Moreover, AI-driven systems continuously learn and adapt from new information, improving over time and enabling real-time feedback and interventions for individuals. These advancements mark a paradigm shift in personalized and data-driven approaches to personality assessment.

1.6.4 Multi-Method Assessment Approaches:

Multi-method assessment approaches combine various techniques, such as self-report inventories, behavioral observations, and physiological measures, to provide a comprehensive understanding of personality. By triangulating data from multiple sources, these approaches mitigate the limitations of individual methods and enhance the validity and reliability of assessments. Integrating quantitative and qualitative data allows for a more holistic evaluation of personality traits, behaviors, and underlying psychological processes. Moreover, multi-method assessments enable researchers and practitioners to cross-validate findings, identify converging patterns, and gain deeper insights into the complexities of individual differences. This integrative approach enhances the accuracy and richness of personality assessment outcomes.

1.7 Applications of Personality Measurement:

1.7.1 Clinical Psychology and Mental Health Assessment:

Clinical Psychology focuses on understanding, diagnosing, and treating mental health disorders. Mental Health Assessment is a fundamental aspect of clinical practice, involving systematic evaluation of an individual's psychological functioning, symptoms,

and life circumstances to inform diagnosis and treatment planning. Utilizing various assessment tools, including interviews, questionnaires, and standardized tests, clinicians gather information to formulate an accurate understanding of the client's psychological state and needs. This process guides personalized interventions aimed at alleviating distress, promoting well-being, and fostering resilience.

1.7.2 Organizational Psychology and Personnel Selection:

Organizational Psychology explores the dynamics between individuals and their work environments. Personnel Selection, a vital domain within this field, involves identifying and hiring candidates best suited for specific roles. Through rigorous assessments, including interviews, aptitude tests, and job simulations, Organizational Psychologists evaluate applicants' skills, personality traits, and values. This data-driven approach aims to predict job performance and organizational fit, minimizing turnover and enhancing productivity. By aligning individuals' abilities and motivations with organizational objectives, effective personnel selection fosters employee satisfaction, engagement, and overall success.

1.7.3 Educational Settings:

Educational Settings encompass Student Placement and Career Counseling, pivotal in guiding students toward academic and professional success. Student Placement involves assessing individual strengths, preferences, and needs to determine appropriate educational programs or learning environments. Career Counseling aids in exploring career options, setting goals, and developing strategies for achieving them. Utilizing assessments, counseling sessions, and personalized guidance, educators and counselors support students in making informed decisions about their academic paths and future careers. By fostering self-awareness, skill development, and goal alignment, these practices empower students to maximize their potential and pursue fulfilling educational and vocational endeavors.

1.7.4 Forensic Psychology and Legal Proceedings:

Forensic Psychology intersects with legal proceedings, applying psychological principles to criminal justice contexts. Forensic psychologists assess individuals involved in legal cases, offering insights into mental health, competency, and risk assessment. They testify in court as expert witnesses, aiding judges and juries in understanding complex psychological issues. Through evaluations, interviews, and research, they inform legal decision-making regarding criminal responsibility, sentencing, and treatment recommendations. By bridging the gap between psychology and the law, Forensic Psychology ensures fair and just outcomes, promoting public safety and individual rights within the legal system.

1.8 Future Directions and Emerging Trends:

1.8.1 Integration of Biopsychosocial Models:

The integration of Biopsychosocial Models acknowledges the interconnectedness of biological, psychological, and social factors in understanding human health and behavior. This holistic approach considers the complex interactions between genetics, brain function, cognition, emotions, social environment, and cultural context. By synthesizing insights from various disciplines, including biology, psychology, sociology, and medicine, it provides a comprehensive framework for assessing and treating individuals. Recognizing the interplay of these factors allows for more nuanced and effective interventions in healthcare, psychology, and social services, ultimately enhancing overall well-being and quality of life.

1.8.2 Personalized and Contextualized Assessment Approaches:

Personalized and Contextualized Assessment Approaches tailor evaluations to individuals' unique characteristics and environmental contexts. These methods recognize

that one size does not fit all and aim to capture the intricacies of each person's experiences, preferences, and needs. By integrating personal history, cultural background, and situational factors into assessments, they offer a more accurate and meaningful understanding of behavior and functioning. Utilizing flexible and responsive techniques, such as interviews, observations, and self-report measures, personalized and contextualized approaches enhance the relevance and effectiveness of assessment practices across diverse populations and settings, fostering greater insight and empathy in understanding human behavior.

1.8.3 Cross-Cultural Adaptation of Assessment Tools:

Cross-Cultural Adaptation of Assessment Tools involves modifying instruments to ensure their validity and reliability across diverse cultural contexts. This process encompasses linguistic translation, cultural adaptation, and validation to account for language nuances, cultural norms, and worldview differences. By incorporating input from local experts and community members, adapted assessments become more culturally sensitive and relevant, minimizing biases and enhancing their effectiveness. Through rigorous testing and validation procedures, these tools maintain their psychometric properties while accurately capturing the experiences and perspectives of individuals from different cultural backgrounds. This ensures fair and accurate assessment practices across diverse populations, promoting inclusivity and cultural competence in psychological evaluation.

1.8.4 Ethical Guidelines and Standards in Personality Assessment:

Ethical guidelines in Personality Assessment emphasize confidentiality, informed consent, and competence. Practitioners must ensure that assessment methods are culturally sensitive, reliable, and valid. They should provide clear feedback and interpretations to clients, protecting their rights and dignity. Transparency about assessment purposes, limitations, and potential consequences is paramount. Practitioners should avoid bias, adhere to professional standards, and prioritize client welfare. Continuous training and supervision uphold ethical conduct, fostering trust and integrity in personality assessment practices.

Conclusion:

Synthesis of Key Findings:

The measurement of personality is a multifaceted endeavor crucial for understanding individuals' unique traits, behaviors, and psychological functioning. Through an overview and critical analysis, it becomes evident that various assessment tools and methodologies contribute to this complex field. From self-report inventories to projective techniques, each approach offers insights into different aspects of personality. However, the synthesis of key findings underscores the importance of considering context, cultural factors, and ethical guidelines in personality assessment. While advancements in psychometrics enhance reliability and validity, ongoing research and critical reflection are essential for refining assessment practices. Ultimately, a nuanced understanding of personality measurement requires a holistic approach that integrates diverse perspectives and methodologies, ensuring comprehensive and ethically sound assessment processes.

Implications for Practice and Research:

The comprehensive overview and critical analysis of personality measurement reveal significant implications for both practice and research. In practice, it's imperative for clinicians to employ a diverse array of assessment tools that align with the unique needs and circumstances of their clients. Understanding the limitations and strengths of each method ensures accurate and ethical evaluation. Moreover, practitioners must remain vigilant in addressing cultural considerations and upholding ethical standards throughout the assessment process.

For research, there's a pressing need to continue refining and validating personality

assessment tools. This includes exploring innovative methodologies that integrate multiple perspectives and leverage advancements in technology. Additionally, research should focus on developing culturally sensitive measures and examining the impact of cultural factors on personality assessment outcomes.

Ultimately, bridging the gap between practice and research requires collaboration among clinicians, researchers, and cultural experts. By integrating insights from diverse disciplines and perspectives, we can advance the field of personality measurement, ensuring that assessment practices remain relevant, valid, and ethical in an increasingly diverse and dynamic world.

References:

1. Costa, P. T., & McCrae, R. R. (1992). Revised NEO Personality Inventory (NEO-PI-R) and NEO Five-Factor Inventory (NEO-FFI) professional manual. Psychological Assessment Resources.
2. Goldberg, L. R. (1992). The development of markers for the Big-Five factor structure. *Psychological Assessment*, 4(1), 26–42.
<https://doi.org/10.1037/1040-3590.4.1.26>
3. Hogan, J., & Hogan, R. (2007). Hogan Personality Inventory manual. Hogan Assessment Systems.
4. John, O. P., & Srivastava, S. (1999). The Big Five trait taxonomy: History, measurement, and theoretical perspectives. In L. A. Pervin & O. P. John (Eds.), *Handbook of personality: Theory and research* (2nd ed., pp. 102–138). Guilford Press.
5. Meyer, G. J., Finn, S. E., Eyde, L. D., Kay, G. G., Moreland, K. L., Dies, R. R., Eisman, E. J., Kubiszyn, T. W., Reed, G. M., & Stillwell, L. C. (2001). Psychological testing and psychological assessment: A review of evidence and issues. *American Psychologist*, 56(2), 128–165.
<https://doi.org/10.1037/0003-066X.56.2.128>
6. Revelle, W. (2018). *psych: Procedures for Personality and Psychological Research*. Northwestern University. Retrieved from
<https://cran.rproject.org/web/packages/psych/index.html>
7. Schneider, W. J., & Lichtenberger, E. O. (2019). *Essentials of assessment report writing* (2nd ed.). Wiley.
8. Watson, D., Clark, L. A., & Tellegen, A. (1988). Development and validation of brief measures of positive and negative affect: The PANAS scales. *Journal of Personality and Social Psychology*, 54(6), 1063–1070.
<https://doi.org/10.1037/0022-3514.54.6.1063>



Measurement of Motivation

Dr. Kumari Sunita Singh

Principal

Mundeshwari College For Teacher Education

Patna

Introduction:

Motivation and Learning are interconnected concepts in the field of Psychology and Education. Motivation refers to the internal processes that energize, direct, and sustain behaviour towards achieving specific goals. In the context of education, motivation influences students' willingness to engage in learning activities, persist in the face of challenges, and strive for academic success. Measurement is the process of quantifying or qualifying attributes, abilities, or behaviours, such as intelligence, personality, attitudes, or academic achievement. Measurement tools include tests, scales, surveys, and observations. It is a driving force that initiates and sustains behaviour, such as interest, desire, or need. Motivation can be intrinsic (e.g., personal satisfaction) or extrinsic (e.g., rewards). Learning is the process of acquiring new knowledge, skills, or attitudes through experience, practice, or instruction. Learning theories include behavioural, cognitive, and constructivist approaches.

Motivation and learning are connected to each other. Motivation can impact learning, as a motivated individual is more likely to engage in the learning process and persist in the face of challenges. Understanding these interconnected concepts is essential in fields like education, training, and development, as well as in organizational settings, where the goal is to promote learning, motivation, and growth.

Motivation:

Motivation can be defined as the driving force that energizes, directs, and sustains behaviour towards achieving specific goals or fulfilling needs. It plays a crucial role in influencing individuals' decisions, actions, and persistence in pursuing desired outcomes. Understanding and measuring motivation is essential in various contexts, such as education, work, sports, and personal development.

According to W.G.Scott -

"Motivation means a process of stimulating people to action to desired goals"

According to E.F.L. Brech-

"Motivation is a general inspiration process which gets the members of the team to pull their loyalty to the group to carry out properly the task that they accepted and generally to play an effective part in the job that the group has undertaken."

According to Michal, j. Jucius-

"Motivation is the act of stimulating someone or oneself to get a desired course of action or to push the right button to get a desired reaction."

There are several theories of motivation that provide insights into the different factors that influence and shape individuals' motivation levels. Some of the key theories include:

- ✓ Maslow's Hierarchy of Needs: Abraham Maslow proposed a hierarchy of needs theory, suggesting that individuals are motivated by a hierarchical sequence of needs, starting from basic physiological needs (e.g., food, water) to higher-order needs such as self-esteem and self-actualization.

- ✓ Self-Determination Theory (SDT): SDT emphasizes the importance of autonomy, competence, and relatedness in driving intrinsic motivation. It posits that individuals have innate psychological needs for autonomy, competence, and social connection, which support motivation and well-being.
- ✓ Expectancy Theory: Expectancy theory suggests that individuals are motivated by their beliefs about the likelihood of achieving desired outcomes based on effort and performance expectations. The theory emphasizes the importance of perceived effort-performance relationships, performance-outcome expectations, and outcome valence in motivating individuals.
- ✓ Goal-Setting Theory: Goal-setting theory posits that setting specific, challenging, and achievable goals can enhance motivation and performance. Goals provide a clear direction for action, enhance focus and persistence, and foster a sense of accomplishment when achieved.

A common area where we see the need to apply motivation is in the work place. In the work place, we can see motivation play a key role, for example in leadership success. A person unable to grasp motivation or apply it in the work situation will not become a leader or stay as a leader for much time. Salary, benefits, working situations, supervision, coverage, safety, protection, affiliation, and relationships are all externally prompted desires. Achievement, advancement, reputation, growth, obligation, and activity nature are inner motivators. They occur when the individual motivates themselves after external motivation desires are met.

Another place motivation plays a key function is in education. A teacher who implements motivational techniques will see an increased participation, effort, and higher grades. Part of the teacher's job is to provide an environment that is motivationally charged. This environment accounts for students who lack their own internal motivation. One of the first places people begin to set goals for themselves is in school. School is where we are most likely to learn the correlation between goals, and the definition of motivation. That relationship between these factors leads to success.

Characteristics of Motivation:

Following are the characteristics of motivation-

- **Direction:** Motivation provides a sense of direction or purpose towards a specific goal, task, or outcome. It directs behaviour and effort towards achieving desired objectives.
- **Intensity:** Motivation varies in intensity, reflecting the level of effort, energy, and persistence individuals invest in pursuing their goals. Higher motivation often results in greater effort and determination.
- **Persistence:** Motivation influences the duration and consistency of effort towards a goal. Individuals with high motivation are more likely to persevere in the face of challenges, setbacks, or obstacles.
- **Variability:** Motivation can fluctuate over time and across different situations or contexts. External factors, personal experiences, and individual differences can influence the level and nature of motivation.
- **Intrinsic and Extrinsic Factors:** Motivation can be driven by internal factors such as personal interests, values, and enjoyment (intrinsic motivation), as well as

external factors such as rewards, recognition, or social approval (extrinsic motivation).

- **Individual Differences:** Motivation varies among individuals based on factors such as personality traits, beliefs, past experiences, and cultural background. What motivates one person may not necessarily motivate another.
- **Self-Regulation:** Motivation involves self-regulatory processes that enable individuals to set goals, monitor progress, and adjust their behaviour to achieve desired outcomes. Self-regulation includes aspects such as goal-setting, planning, self-monitoring, and self-control.
- **Positive and Negative Motivation:** Motivation can be driven by the pursuit of positive outcomes (e.g., rewards, success) or the avoidance of negative outcomes (e.g., punishment, failure). Both types of motivation influence behaviour and decision-making.
- **Dynamic Nature:** Motivation is dynamic and can change over time in response to shifting goals, priorities, and circumstances. It requires ongoing attention and nurturing to maintain and enhance.

Types of Motivation

Motivation is mainly are of two types:

1. Intrinsic motivation:

Intrinsic motivation refers to engaging in an activity for its inherent satisfaction rather than for external rewards or pressures. It's the drive that comes from within, curiosity, or a sense of fulfilment. It is the motivation which comes from the self of an individual through our own thoughts, our beliefs in our own abilities, intensity of our need and our attitude towards goal achievement.

Those people who are self motivated/ self geared that don't require any push or accelerator from outside. People driven by intrinsic motivation are more likely to persist in their efforts, take on challenges, and experience a deeper sense of satisfaction with their accomplishments. This type of motivation fosters creativity, innovation, and a genuine passion for learning. It's often associated with activities that align with personal interests, values, or long-term goals.

Nurturing intrinsic motivation involves providing opportunities for autonomy, mastery, and purpose. Allowing individuals to have a sense of control over their tasks, encouraging skill development, and connecting activities to meaningful outcomes can enhance intrinsic motivation.

2. Extrinsic Motivation:

Extrinsic motivation involves engaging in an activity for external rewards or to avoid punishment, rather than for the inherent enjoyment or satisfaction it brings. This type of motivation relies on incentives such as money, praise, grades, or recognition from others to drive behaviour.

While extrinsic motivation can be effective in prompting action, especially for tasks that might otherwise lack inherent appeal, it may not foster genuine interest or long-term commitment. Individuals motivated primarily by external rewards may experience fluctuations in motivation when the rewards are removed or when they become less compelling over time.

Extrinsic motivation can sometimes undermine intrinsic motivation, particularly if the external rewards overshadow the inherent satisfaction of the activity itself. This can lead to a decrease in creativity, autonomy, and overall enjoyment. However, extrinsic motivation isn't inherently negative. It can be a useful tool in

certain contexts, such as encouraging initial engagement or shaping behaviour in specific situations. For example, offering bonuses for meeting sales targets or giving students grades for completing assignments can provide tangible incentives to drive performance.

Balancing extrinsic and intrinsic motivators is essential for fostering sustainable motivation and promoting both short-term compliance and long-term commitment to goals and activities.

How to Motivate Ourselves:

In today's fierce competition era, nobody has time to push other person. One has to be self motivated on one needs to be intrinsically motivated. In an organization if you are not performing you will be fired from the job.

Lucky are the students or employees who have their teachers, parents, siblings or bosses who motivate them otherwise motivational talks and motivational speeches have price tagged with them. In business world, motivational speakers charge huge money to motivate us. Anyhow this is profession now because this is need of the hour as everybody is in mad race of minting money and cannot spare time to their employees and in personal lives to their kids etc.

Therefore, instead of relying on somebody else one should read good books, should talk to good and successful people and follow their foot prints, observe their positive behaviours and try to adapt those things in their own life and should have a firm belief on one's abilities, skills, and law of nature that hard work never goes waste, it will always fetch rich dividends sooner or later. Besides it, positive auto signal is a very powerful technique to stay motivated. Positive auto signals means doing positive self talk e.g.

- I can do this.
- I am very intelligent
- I will definitely achieve my goal I am responsible

That means no negative statements and not even positive statements in negative forms e.g. I am Intelligent (Correct for self talk) I am not dull (Incorrect for self talk)

Psychologists are of the view that with this positive self talks your mind start accepting those positive aspects and start behaving in that way only. To prove this concept, many years back in USA an experiment was carried out where the whole class was divided into two groups of students with LOW IQ level students and another with high IQ level students. Students with High IQ level were being told that they have low IQ and vice versa and this thing was constantly reinforced to those group of students. To the amazement of all, at the end of year their results got reversed.

Low IQ students who were being labelled as High IQ students actually outperformed High IQ students who were being labelled as Low IQ students. This is the impact of positive talks and reinforcement

Need of Motivation:

- **Goal Achievement:** Motivation provides the drive and energy necessary to set and pursue goals effectively. It helps individuals overcome obstacles, persevere through challenges, and ultimately achieve desired outcomes.
- **Productivity and Performance:** Motivated individuals tend to be more productive and perform better in their tasks and responsibilities. Motivation enhances focus, concentration, and effort, leading to higher levels of performance and success.

- **Personal Growth and Development:** Motivation fuels continuous learning, improvement, and personal development. It encourages individuals to seek new experiences, acquire new skills, and expand their knowledge and capabilities.
- **Resilience and Adaptability:** Motivation strengthens resilience and adaptability in the face of adversity or setbacks. It helps individuals bounce back from failures, learn from mistakes, and remain determined in the pursuit of their goals.
- **Positive Attitude and Well-being:** Motivation contributes to a positive attitude, sense of purpose, and overall well-being. It fosters feelings of fulfillment, satisfaction, and happiness by aligning actions with personal values and aspirations.
- **Effective Leadership and Management:** Motivation is essential for effective leadership and management in organizations. Motivated leaders inspire and empower their teams, fostering a culture of engagement, innovation, and high performance.
- **Healthy Relationships:** Motivation enhances interpersonal relationships by promoting collaboration, cooperation, and mutual support. Motivated individuals are more likely to contribute positively to their relationships and communities.
- **Overcoming Procrastination:** Motivation helps individuals overcome procrastination and take action towards their goals. It provides the momentum needed to initiate tasks, maintain momentum, and avoid unnecessary delays.
- **Adopting Healthy Habits:** Motivation plays a key role in adopting and maintaining healthy lifestyle habits. Whether it's exercising regularly, eating nutritious food, getting enough sleep, or managing stress, motivation provides the incentive to prioritize health and well-being.
- **Overcoming Fear and Doubt:** Motivation helps individuals confront and overcome fears, doubts, and insecurities that may hold them back from pursuing their goals. It instills confidence, courage, and belief in one's abilities to overcome challenges and achieve success.
- **Inspiring Others:** Motivated individuals serve as role models and sources of inspiration for others. Their enthusiasm, determination, and achievements can motivate and uplift those around them, fostering a supportive and empowering environment.
- **Creating Positive Change:** Motivation drives individuals to make positive changes in themselves, their communities, and the world at large. Whether it's advocating for social justice, volunteering for a cause, or leading initiatives for environmental sustainability, motivation fuels action towards creating a better future.
- **Enhancing Creativity and Innovation:** Motivation stimulates creativity and innovation by encouraging individuals to explore new ideas, take risks, and think outside the box. Motivated individuals are more likely to seek novel solutions, experiment with different approaches, and push the boundaries of what's possible.
- **Fulfilling Potential:** Motivation empowers individuals to strive for excellence and reach their full potential. It encourages them to pursue their passions, follow their dreams, and make the most of their talents and abilities, leading to a sense of fulfillment and satisfaction in life.

- **Building Resilient Communities:** Motivation fosters resilience and empowerment at the community level, enabling individuals to come together, support each other, and overcome shared challenges. Motivated communities are better equipped to adapt, thrive, and create positive change collectively.
- **Measuring motivation in psychology** is a multifaceted endeavor that involves various theories, assessment methods, and research techniques aimed at understanding the underlying factors that drive behaviour. In this comprehensive exploration, we will delve into the theoretical frameworks, assessment tools, and empirical approaches used in the measurement of motivation within the field of psychology.

Theoretical frameworks of Motivation:

✓ Drive Theory:

Drive theory, proposed by psychologists such as Clark Hull and Kenneth Spence, suggests that motivation arises from the need to satisfy biological drives, such as hunger, thirst, and sex. According to this theory, motivation is influenced by internal physiological states and the drive to reduce tension or discomfort.

✓ Incentive Theory:

In contrast to drive theory, incentive theory emphasizes the role of external stimuli or rewards in motivating behavior. Psychologists like B.F. Skinner and Edward Thorndike proposed that behavior is driven by the anticipation of positive rewards or the avoidance of negative consequences.

✓ Cognitive Theories:

Cognitive theories of motivation, including expectancy-value theory and achievement motivation theory, emphasize the role of cognitive processes such as beliefs, expectations, and goals in driving behavior. Expectancy-value theory, developed by psychologists like Atkinson and McClelland, posits that motivation is influenced by the expectation of success and the subjective value of the outcome. Achievement motivation theory, proposed by researchers like David McClelland, focuses on individuals' need for achievement, affiliation, and power as motivational factors.

✓ Self-Determination Theory (SDT):

Self-Determination Theory, developed by Edward Deci and Richard Ryan, proposes that motivation can be categorized into different types: intrinsic motivation, extrinsic motivation, and a motivation. Intrinsic motivation involves engaging in an activity for its own sake, driven by internal satisfaction or enjoyment, while extrinsic motivation involves engaging in an activity for external rewards or to avoid punishment. A motivation reflects a lack of motivation or interest in an activity.

Assessment tools for Measuring Motivation:

Measuring motivation involves assessing both intrinsic and extrinsic factors that influence individuals' drive to pursue goals and take action. Some common methods of measuring motivation include-

✓ Self-Report Scales:

Self-report scales are commonly used to measure motivation in psychological research. These scales typically consist of a series of questions or statements designed to assess individuals' motivation levels, preferences, and attitudes towards specific tasks or activities. Examples of self-report scales include the Self-Determination Scale (SDS) for assessing autonomy, competence, and relatedness, and the Academic Motivation Scale (AMS) for measuring motivation in academic contexts.

✓ Behavioural Observations:

Behavioural measures of motivation involve observing individuals' actions, choices, and performance in tasks or situations. Researchers may assess factors such as persistence, effort, and goal-directed behaviour to infer motivational states. Behavioural observation techniques can provide valuable insights into individuals' motivation in real-world settings.

✓ **Goal-Setting Scales:**

Goal-setting theory highlights the importance of setting specific, challenging goals in motivating individuals to perform at their best. Goal-setting scales assess individuals' goal orientation, goal commitment, and goal progress, providing a quantitative measure of motivation in goal-directed activities. These scales help researchers understand how individuals' goals influence their motivation and behaviour.

✓ **Neuro-scientific Techniques:**

Neuroscience research has contributed to our understanding of the neural mechanisms underlying motivation. Neuro-imaging techniques such as functional magnetic resonance imaging (fMRI) allow researchers to examine brain activity associated with motivation, including the activation of reward-related regions like the ventral striatum and prefrontal cortex. Physiological measures such as heart rate variability and skin conductance can also provide insights into individuals' motivational states.

✓ **Empirical Approaches to Studying Motivation:**

1. **Experimental Studies:**

Experimental studies involve manipulating variables related to motivation and observing their effects on behaviour. Researchers may conduct laboratory experiments to investigate how factors such as rewards, goals, and feedback influence individuals' motivation and performance in tasks. Experimental designs allow researchers to establish causal relationships between motivational variables and behaviour.

2. **Co-relational Studies:**

Co-relational studies examine the relationship between different variables related to motivation. Researchers may use surveys or questionnaires to assess individuals' motivational traits and behaviours, and then analyze the correlations between these variables. Co-relational research provides valuable insights into the associations between motivational factors and outcomes, although it cannot establish causality.

3. **Longitudinal Studies:**

Longitudinal studies follow individuals over an extended period to examine changes in motivation and behaviour over time. By collecting data at multiple time points, researchers can track the development of motivation from childhood to adulthood or investigate how life events and experiences shape individuals' motivational trajectories. Longitudinal research provides a dynamic view of motivation and its impact on various life outcomes.

✓ **Self-report measures:** Surveys, questionnaires, and scales can be used to assess individuals' self-reported levels of motivation, goal orientation, and intrinsic/extrinsic motivation.

✓ **Behavioural observations:** Observing and tracking individuals' behavior, engagement, and persistence in goal-directed activities can provide insights into their motivation levels and patterns of response.

✓ **Achievement assessments:** Evaluating individuals' performance, goal attainment, and task completion can serve as an indicator of their motivation and commitment to achieving desired outcomes.

- ✓ Motivational inventories: Standardized tools and inventories, such as the Motivation Assessment Scale or the Self-Regulation Questionnaire, can help assess different aspects of motivation, such as self-determination, goal orientation, and persistence.

By utilizing these measurement methods and theories of motivation, educators, employers, and individuals themselves can gain valuable insights into understanding, enhancing, and sustaining motivation towards achieving their goals and fulfilling their needs.

Conclusion:

Motivation, defined as the energizing of behaviour in pursuit of a goal, is a fundamental element of our interaction with the world and with each other. Many different factors influence motivation, including the individual's internal physiological states, the current environmental conditions, as well as the individual's past history and experiences.

People need motivation to pursue their dreams and ambitions in life, whether they are related to their careers or their personal lives. As an added bonus, it may also play a significant role in deciding how much time and energy individuals invest in a certain endeavor. Motivated people are more likely to act in ways that benefit themselves and others, including putting in extra effort at work or studying for an exam. A lack of motivation, on the other hand, might result in disinterest, procrastination, and poor performance.

The measurement of motivation is a complex and multifaceted endeavour that involves assessing various psychological constructs, employing diverse methods, and considering the context of educational settings. By incorporating theoretical frameworks, assessment methods, and implications for educational practice, educators and researchers can gain a deeper understanding of students' motivation and learning processes and implement evidence-based strategies to support their academic success.

References:

- Deci, E. L., & Ryan, R. M. (2000). The "what" and "why" of goal pursuits: Human needs and the self-determination of behavior. *Psychological Inquiry*, 11(4), 227-268.
- Eccles, J. S., & Wigfield, A. (2002). Motivational beliefs, values, and goals. *Annual Review of Psychology*, 53(1), 109-132.
- Bandura, A. (1997). *Self-efficacy: The exercise of control*. W. H. Freeman and Company.
- Pellegrino, J. W., Chudowsky, N., & Glaser, R. (Eds.). (2001). *Knowing what students know: The science and design of educational assessment*. National Academies Press.
- Brookhart, S. M. (2013). *How to create and use rubrics for formative assessment and grading*. ASCD.
- Black, P., & Wiliam, D. (1998). Inside the black box: Raising standards through classroom assessment. *Phi Delta Kappan*, 80(2), 139-148.



समावेशी शिक्षा का तात्पर्य यह है कि 'विद्यालय के पुर्ननिर्माण की वह प्रक्रिया जिसका लक्ष्य सभी बच्चों को शैक्षणिक और सामाजिक अवसरों की उपलब्धता से है।

यूनेस्को के अनुसार 'समावेशी शिक्षा यह विश्वास करती है कि सभी बच्चे सीख सकते हैं और सभी बच्चों की अलग-अलग प्रकार की विशेष आवश्यकता होती है। इसका लक्ष्य सीखने की कठिनाई की पहचान और उनका प्रभाव न्यूनतम करना है। अभिवृत्तियों, व्यवहारों, शिक्षण विधि, पाठ्यक्रम एवं वातावरण परिवर्तित करने की वकालत करता है।'

यह एक स्थिर गति से चलने वाली गतिशील प्रक्रिया है और समावेशी समुदाय को प्रोन्नत करने के लिए प्रयुक्त विभिन्न तरीकों का एक भाग है। समावेशी शिक्षा एक व्यक्ति अथवा छात्र के लिए नहीं अपितु उन सभी छात्रों के लिए भी है जो सामान्य वातावरण में कार्य नहीं कर पाते हैं। इनमें से कुछ शारीरिक रूप से अक्षम एवं अन्य प्रकार के भी हो सकते हैं। इसलिए सभी स्थितियों में छात्रों को शैक्षिक समावेशन की आवश्यकता होती है। विकलांगों को भारत सरकार 37. का आरक्षण प्रदान करती है।

समावेशी शिक्षा कक्षा में विविधताओं को स्वीकार करने की एक मनोवृत्ति है जिसके अन्तर्गत विविध क्षमताओं वाले बालक सामान्य शिक्षा प्रणाली में एक साथ अध्ययन करते हैं। समावेशित शिक्षा के दर्शन के अंतर्गत प्रत्येक बालक अद्वितीय है और उसे अपने सहपाठियों की भाँति विकसित करने के लिए कक्षा में विविध प्रकार के शिक्षण की आवश्यकता हो सकती है। बालक के पीछे रह जाने के लिए उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। बल्कि उन्हें कक्षा में भली प्रकार समाहित न कर पाने का जिम्मेदार अध्यापक को स्वयं समझना चाहिए। जिस प्रकार हमारा संविधान किसी भी आधार पर किये जाने वाले भेदभाव को निषेध करता है उसी प्रकार समावेशी शिक्षा विभिन्न ज्ञानेन्द्रिय, शारीरिक, बौद्धिक सामाजिक, आर्थिक आदि कारणों से उत्पन्न किन्ही बालकों की विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं के बावजूद उन बालकों को भिन्न देखे जाने को बजाय स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में देखती है।

समावेशी शिक्षा सही मायनों में शिक्षा का अधिकार जैसे शब्दों का रूपान्तरित रूप है जिसके कई उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है। विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बालकों को एक समतामूलक शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षा प्राप्त कराने के अवसर प्रदान करना। समावेशी शिक्षा समाजों के सभी बालकों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने का समर्थन करती है। समावेशी शिक्षा की कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित हैं।

1. स्टीन और ब्लैकहर्ट के अनुसार :-

"शिक्षा की मुख्य धारा का अर्थ बाधित बालकों की सामान्य कक्षाओं के शिक्षण की व्यवस्था करना है। यह समान अवसर मनोवैज्ञानिक सोच पर आधारित है जो व्यं

2. यरशेल के अनुसार:-

समावेशी शिक्षा के कुछ कारण योग्यता लिंग, प्रजाति, जाति, भाषा, चिंता का स्तर, सामाजिक और आर्थिक स्तर, विकलांगता, व्यवहार और धर्म से सम्बन्धित होते हैं।"

3. शिक्षा शास्त्रियों के अनुसार:-

“समावेशी शिक्षा अधिगम के ही नहीं बल्कि विशिष्ट अधिगम के नए आयाम खोलती है।”

4. अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ के अनुसार:-

समावेशी शिक्षा के आशय उस शिक्षा प्रणाली से है जिसमें एक सामान्य छात्र, एक दिव्यांग छात्र के साथ विद्यालय में अधिकतर समय व्यतीत करता है। दूसरे शब्दों में समावेशी शिक्षा विशिष्ट आवश्यकता वाले बालको को सामान्य बालको से अलग शिक्षा देने की विरोधी है।

5. लवलेश कुमार विश्वकर्मा के अनुसार:-

समावेशी शिक्षा एक ऐसी शिक्षा प्रणाली है जिसके अन्तर्गत शारीरिक रूप से बाधित बालक सामान्य बालको के साथ-साथ सामान्य कक्षा में शिक्षा ग्रहण करते हैं। यह प्रणाली सामान्य कक्षा में विविधता का उत्सव बनाती है।

6. शिक्षा शास्त्रियों के अनुसार:-

“यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत शारीरिक रूप से बाधित बालक भी सामान्य बालको के समान महत्वपूर्ण समझे जाते हैं।”

7. अन्य शिक्षा शास्त्रियों के अनुसार:-

“समावेशी शिक्षा वह शिक्षा होती है जिसमें सामान्य बालक-बालिकाएँ तथा विशिष्ट बालक-बालिकाएँ एक ही विद्यालय में बिना किसी भेदभाव के एक साथ शिक्षा ग्रहण करते हैं।”

➤ समावेशी शिक्षा की चार मुख्य प्रक्रियायें :-

समावेशी शिक्षा की शुरुआत कनाडा से हुयी है। असमर्थ बच्चों के लिए विशेष विद्यालयों की शुरुआत 18 वीं शताब्दी में हुयी थी। 1975 में अमेरिकन कांग्रेस के ‘प्रत्येक अक्षम बच्चो को शिक्षा’ का कानून पास किया था। इस कानून का मुख्य उद्देश्य असमर्थ बच्चो को देश की मुख्य धारा से जोड़ना था। एकीकृत शिक्षा मुख्यतः अमेरिका की मुख्य धारा आन्दोलन का ही परिणाम है। भारत में समावेशी शिक्षा की शुरुआत हुयी थी। समावेशी शिक्षा एक सतही प्रक्रिया नहीं है। शिक्षा की मुख्य धारा का श्रेय “सैम्यूल ग्रिडले होवे को जाता है जो एक अमेरिकन विद्वान थे। इन्होंने शिक्षा की मुख्य धारा का सम्प्रत्यय 1975 AD में किया था। समावेशी शिक्षा की चार मुख्य प्रक्रियायें निम्नलिखित हैं।

1. मानकीकरण (Normalization)

मानकीकरण वह प्रक्रिया है जो प्रतिभाशाली बालको तथा युवको को जहाँ तक सम्भव हो कार्य सीखने के लिए सामान्य सामाजिक वातावरण पैदा करें।

2. संस्था रहित शिक्षा (Deinstitutionalization)

संस्था रहित शिक्षा ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अधिक से अधिक प्रतिभाशाली बालको तथा युवक छात्रों की सीमाओं को समाप्त करती है। जो आवासीय विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करते हैं। उन्हें जन साधारण के मध्य शिक्षा ग्रहण करने के अवसर प्रदान करते हैं।

3. शिक्षा की मुख्य धारा (Main Stream of Education)

शिक्षा का मुख्य धारा वह प्रक्रिया है जिसमें प्रतिभाशाली बालको सामान्य बालको के साथ दिन प्रतिदिन शिक्षा के माध्यम से आपसी सम्बन्ध रखते हैं।

4. समावेशन (Inclusion)

समावेशन वह प्रक्रिया है जो प्रतिभाशाली बालको को प्रत्येक दशा में सामान्य शिक्षा कक्ष में उनकी शिक्षा के लिये लाती है। यह प्रक्रिया व्यक्तियों के पास-पास आने व एक-दूसरे से दूरी कम करने से प्रारम्भ होती है। यह प्रक्रिया सामाजिक दूरी कम

करने तथा आपसी सहयोग को बढ़ावा देती है इससे सामाजिक समावेशन को बल मिलता है।

➤ **शैक्षिक समावेशन के उद्देश्य :-**

समावेशी शिक्षा एक सतही प्रक्रिया नहीं है यह निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। शैक्षिक समावेशन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

- i. इसके माध्यम में शिक्षक या शिक्षार्थी विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति संवेदनशील हो सकेंगे।
- ii. सामान्य विद्यालय में अध्यापक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े बालको की पहचान कर उनकी उचित देख रेख का निर्देशन दे सकेंगे।
- iii. शैक्षिक समावेशन द्वारा विशेष आवश्यकता वाले बालको की शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक समस्याओं की विवेचना कर समाधान कर सकेंगे।
- iv. शैक्षिक समावेशन की अवधारणा को समझकर विद्यालय में समावेशित वातावरण का सृजन कर सकेंगे।
- v. विशिष्ट बालको के लिए कार्य योजना का निर्माण कर उसका क्रियान्वयन कर सकेंगे।
- vi. विशिष्ट बालको की योग्यताओं की पहचान कर विशेष शिक्षण योजना तैयार कर सकेंगे।
- vii. विशिष्ट बालको की योग्यताओं की पहचान कर विशेष शिक्षण योजना तैयार कर सकेंगे।
- viii. शैक्षिक समावेशन द्वारा शिक्षा की मुख्य धारा से वंचित वर्ग के बालक-बालिकाओं को शिक्षा प्रदान कर सकेंगे।
- ix. शैक्षिक समावेशन द्वारा देश के अतिपिछड़े क्षेत्रों में जहाँ शिक्षा के पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं हैं। ऐसे पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षा की समुचित व्यवस्था कर सकेंगे।
- x. शैक्षिक रूप से कमजोर तथा साधन विहीन लोगों को शिक्षा के संसाधन उपलब्ध करा सकेंगे।
- xi. शैक्षिक समावेशन द्वारा शारीरिक रूप से अक्षम जैसे मानसिक मंदित, अन्धे, बहरे, लंगड़े तथा अन्य अक्षम बालको को उपकरण उपलब्ध कराकर शिक्षा की समुचित व्यवस्था करा सकेंगे।

➤ **समावेशी शिक्षा की अवस्थायें Phases of inclusive education :-**

कुछ बालक ऐसे होते हैं जो सुविधाओं के क्षेत्र में सामान्य बालको से कम होते हैं। ये बालक विभिन्न प्रकार की सुविधाओं जैसे आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आदि से वंचित रह जाते हैं। इन सुविधाओं के अभाव में उनका विकास सामान्य बालको की तरह नहीं हो पाता है। उसमें गतिरोध आ जाता है परिणामस्वरूप क्षमतावान होने पर भी वे वातावरणात्मक सुविधाओं के अभाव में विकास नहीं कर पाते हैं। शैक्षिक समावेशन का कार्य सभी प्रकार से इन वंचित बालको की शिक्षा का प्रबन्ध करना है। समावेशी शिक्षा की प्रमुख अवस्थायें निम्नलिखित हैं।

i. प्रथम श्रेणी:-

एकीकरण की प्रथम श्रेणी सामान्य शिक्षा संस्था पूर्ण कालिक एकीकरण है। सम्पूर्ण दिन शिक्षक सामान्य कक्षा में अपंग बालको को शिक्षा देता है। छात्र आवश्यकता के समय शिक्षा विदो की सहायता प्राप्त करते हैं।

ii. द्वितीय श्रेणी:-

छात्र कक्षाओं में नियमित रूप से उपस्थित रहते हैं लेकिन कुछ कक्षायें विशिष्ट कक्षाओं की व्यवस्था के कारण निलंबित कर दी जाती हैं।

iii. तृतीय श्रेणी:-

यह विशिष्ट कक्षा में अपंग बालको की शिक्षा को समलित करती है लेकिन छात्रों को सामान्य कक्षाओं में अपनी उपस्थिति देनी चाहिए।

iv. चतुर्थ श्रेणी:—

यह आवासीय शिक्षण संस्थाओं को समलित करती है जिसमें पास के सामान्य विद्यालय के कुछ पाठ भी होते हैं।

v. पंचम श्रेणी:—

यह स्तर एकीकरण को सम्मिलित करता है। इस स्थिति में सामान्य बालको को काफी अधिक संख्या में अपंग बालको के साथ रखा जाता है। परिणाम स्वरूप उन सभी का शैक्षणिक तथा अन्य प्रकार के कार्यक्षेत्र में आपसी सामंजस्य तथा सहयोग सुनिश्चित किया जा सके।

vi. षष्ठम श्रेणी:—

सामान्य कक्षाओं में शिक्षण के साथ आवासीय स्थान पर शिक्षण तथा घरेलू कार्यक्रम को एकीकरण करना।

vii. सातवीं श्रेणी:—

इसके अन्तर्गत चिकित्सालय या अन्य कार्यस्थल आदि में लघुकालिक शिक्षण की व्यवस्था करना है।

➤ **समावेशी शिक्षा की विशेषतायें Features of inclusive education**

समावेशी शिक्षा की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

- i. यह समाज में अपंग तथा सामान्य बालको के मध्य स्वस्थ सामाजिक वातावरण तथा सम्बन्ध बनाने में समाज के प्रत्येक स्तर पर सहायक है यह समाज में एक-दूसरे के मध्य दूरी को कम करती है तथा आपसी सहयोग की भावना प्रदान करती है।
- ii. अपंग बालको के जीवन यापन के स्तर को ऊँचा उठाने तथा उनके नागरिक अधिकार को यह सुनिश्चित करती है।
- iii. शारीरिक अपंग बालको को समावेशी शिक्षा व्यवस्था, विशिष्ट शिक्षण के मध्य अपंग बालको के द्वारा मानसिक समस्याओं का सामना करने से छुटकारा दिलाती है।
- iv. समावेशी शिक्षा, अध्यापको, शिक्षा विदो तथा माता-पिता के सामूहिक प्रयासों पर आधारित है।
- v. समावेशी शिक्षा में जीवन के सभी क्षेत्रों में सभी प्रकार
- vi. समावेशी शिक्षा के अन्तर्गत विभिन्न विद्वानों, विशेषज्ञों, शिक्षा विदो, मनोवैज्ञानिकों चिकित्सको को आमंत्रित कर उनके बहुमूल्य विचारों से इन दिशा में अपेक्षित परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।
- vii. समावेशी शिक्षा समानता के सिद्धान्त पर आधारित है। यह सभी बालको को समान रूप से शिक्षा का अधिकार प्रदान करती है।
- viii. समावेशी शिक्षा के माध्यम से चयनित स्थानापन्न (Solective Placement) किया जा सकता है।
- ix. समावेशी शिक्षा एकीकरण की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाती है।
- x. समावेशी शिक्षा, विशिष्ट शिक्षा का एक नवीन प्रगतिशील स्वरूप है।

➤ **समावेशी शिक्षा का कार्य क्षेत्र Scope of inclusive education**

- i. अस्थि बाधित बालको का अध्ययन करना।
- ii. श्रवण बाधित बालको का अध्ययन करना।
- iii. दृष्टि बाधित या एक आंख वाले बालको का अध्ययन करना।
- iv. मानसिक रूप से मन्दित बालको का अध्ययन करना।
- v. अधिगम असमर्थी बालको का अध्ययन करना।
- vi. समस्यात्मक बालको का अध्ययन करना।
- vii. पिछड़े बालको का अध्ययन करना।

- viii. विभिन्न प्रकार से अपंग बालक जिन्हे बहु बाधित बालक कहते हैं, का अध्ययन करना।
- ix. अन्धे छात्र जिन्होंने ब्रेल में पढ़ने और लिखने का प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है तथा उन्हें विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है।
- x. बधिर बालक जिन्होंने सम्प्रेषण में निपूणता और पढ़ना-लिखना सीख लिया है।
समावेशी शिक्षा क्षेत्र में सामान्य स्कूल जाने से पहले अपंग बालको प्रशिक्षण, माता-पिता को समझाना, प्रारम्भिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा भी सम्मिलित है।

1. "अस्थि बाधित बालक" Bone impaired child

मानव के लिए सबसे बड़ा सुख उसके शरीर का स्वस्थ होना है क्योंकि जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए शरीर का स्वस्थ होना अत्यन्त अनविर्य है।

'अस्थिबाधित बालक वे बालक होते हैं जिनकी हड्डी डर्राँ, हड्डीडर्राँ के जोड़ अथवा शरीर की विभिन्न मांस पेशियाँ सुचारु रूप से कार्य नहीं कर पाती हैं।

➤ प्रमुख लक्षण :-

- i. हॉथ-पैर का पतला या मोटा होना।
- ii. शरीर के किसी अन्य अंग का दबा या उठा हुआ होना।
- iii. शरीर का कोई भी अंग न होना।
- iv. शरीर के अंगों में हड्डीडर्राँ की संख्या अधिक होना।
- v. शरीर के अंगों में हड्डीडर्राँ की संख्या कम होना।

➤ पहचान :-

- i. चलते-चलते गिर जाना।
- ii. शारीरिक अंगों पर समुचित नियंत्रण न होना।
- iii. लड़खड़ाकर चलना।
- iv. जोड़ों में दर्द रहना।
- v. चलने, उठने, बैठने में कठिनाई महसूस करना।
- vi. नकली अंगों का प्रयोग करना।
- vii. अंगों का असामान्य होना।
- viii. वस्तुओं का उठाने तथा रखने में कठिनाई होना।

➤ उपकरण :-

- i. भारत सरकार के द्वारा अस्थि बाधित बालको को चलने के लिए वैशाखी तथा व्हील साईकिल प्रदान की जाती है।
- ii. भारत सरकार के समाज कल्याण विभाग के द्वारा कृत्रिम अंग जैसे पैर, हाथ, कमर बेल्ट इत्यादि अन्य अंग प्रदान किये जाते हैं।

➤ प्रमुख विशेषतायें:-

अस्थि बाधित बालको की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

- i. भाषा का विकास सामान्य बालको की तरह ही होता है।
- ii. मानसिक विकास सामान्य बालको की तरह ही होता है। मानसिक विकास में अस्थिबाधिता का कोई प्रभाव नहीं होता है।
- iii. अमूर्त चिन्तन व सम्प्रत्यय निर्माण में कोई कठिनाई नहीं होती है।
- iv. बौद्धिक क्षमता उच्च तथा शैक्षिक लब्धि भी सामान्य होती है।
- v. सम्प्रेषण, शाब्दिक अन्तः क्रिया, व्यक्तित्व, लुब्धि लब्धि तथा भावनात्मक व्यवहार भी सामान्य होते हैं।

2. श्रवण बाधित बालक —: Hearing impaired child.

आँख की भाँति कान भी मानव की महत्वपूर्ण ज्ञानेन्द्रिय है। यदि किसी व्यक्ति को सुनने, ध्वनियों को पहचानने तथा उनका सही अर्थ समझने में असुविधा का सामना करना पड़ना है अतः वे श्रवण दोषों से मुक्त असमर्थता का शिकार माने जाते हैं। भारत सरकार के सर्वेक्षण 1991 के अनुसार 5% स्कूली बच्चे श्रवण बाधित हैं तथा 0 से 14 वर्ष आयु वर्ग के 3.24 मिलियन बच्चे श्रवण बाधित हैं। भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या का 1% हिस्सा आंशिक श्रवण बाधिता से ग्रसित है।

➤ प्रमुख लक्षण :-

- i. वाणी दोष होना है तथा हमेशा भ्रम की स्थिति में रहते हैं।
- ii. अक्सर कान में दर्द होना।
- iii. शाब्दिक सम्प्रेषण में कठिनाई होती है।
- iv. सीमित शब्दावली का प्रयोग करते हैं।
- v. वाद-विवाद कार्यक्रम में संकोच करते हैं।
- vi. कान का लगातार बहते रहना।
- vii. वक्ता के होठों पर ध्यान होता है।
- viii. शिक्षक से पुनरावृत्ति करने को कहते हैं।

➤ श्रवण बाधिता के प्रमुख कारण:-

- i. **कम श्रवण बाधिता (Mild Hearing Loss)** — इसके अन्तर्गत 27 से 40 db श्रवण बाधिता होती है। इसमें बालक सामान्य स्तर की बातचीत आसानी से सुन लेते हैं।
- ii. **मन्द श्रवण बाधिता (Moderate Hearing Loss)** — इसके अन्तर्गत 40 से 55 db तक की श्रवण बाधिता होती है। इसमें बालक को सामान्य वार्तालाप सुनने में कठिनाई होती है। इसके अन्तर्गत बालक यन्त्रों का प्रयोग करके सुन सकते हैं।
- iii. **गम्भीर श्रवण बाधिता (Severe Hearing Loss)** — इसके अन्तर्गत 50 से 70 db तक की श्रवण बाधिता होती है। इसके अन्तर्गत बालक ऊँचा बोलने पर सुन पाता है। इसके अन्तर्गत विशेष प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है।
- iv. **पूर्णतया श्रवण बाधिता (Profound Hearing Loss)** — इसके अन्तर्गत 70 से 90 db तक की श्रवण बाधिता होती है। इसमें बालक को श्रवण यंत्र के साथ भी सुनने में कठिनाई होती है।

➤ उपकरण:-

श्रवण बाधित बालको को भारत सरकार के समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा टेप रिकार्डर, आडियोफोन तथा लिग्वाफोन इत्यादि अन्य उपकरण उपलब्ध कराये जाते हैं जिसका प्रयोग करके बालक आसानी से सुन सकता है।

➤ श्रवण बाधित बालको की विशेषतायें:-

श्रवण बाधित बालको की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

- i. भाषा का विकास सामान्य बालको से कम होता है।
- ii. मानसिक विकास भी सामान्य बालको से कम होता है।
- iii. अमूर्त चिंतन व सम्प्रत्यय निर्माण में कठिनाई महसूस करते हैं।
- iv. अशाब्दिक परीक्षा में इनकी बुद्धि लब्धि उच्च स्तर की होती है।
- v. सीमित शब्दावली तथा भाषायी विकास भी निम्न स्तर का होता है।
- vi. आवाज ऊँचे स्तर की होती है तथा शब्दों के उच्चारण में अधिक दोष होता है।
- vii. बौद्धिक क्षमता उच्च होती है लेकिन शैक्षिक लब्धि कमजोर होती है।
- viii. सम्प्रेषण की समस्या तथा शाब्दिक अन्तः क्रिया नहीं होती है तथा भावनात्मक व्यवहार भी असामान्य होते हैं।

- ix. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सामान्य भावो को समझने के लिए चिन्ह भाषा का प्रयोग किया जाता है।
- x. अत्यधिक बहरे बच्चो को अधिगम करवाने हेतु चिन्ह भाषा, फिंगर स्पेलिंग पर अधिक बल दिया जाता है।

3. दृष्टि बाधित या एक आँख वाले बालक :- Visually impaired

मनुष्य द्वारा प्रयोग की जाने वाली सबसे महत्वपूर्ण इन्द्रिय आँख है। दृष्टि बाधित बालक वे बालक होते हैं जो ठीक प्रकार से देख नहीं पाते हैं ऐसे बालक जिनमें ऐसे दृष्टि दोष पाये जाते हैं जिनकी वजह से उन्हें कुछ भी दिखायी नहीं देता है। आँखों की दृष्टि योग्यता से तात्पर्य दूर की वस्तुओं को स्पष्ट रूप में देखना है।

National Sample Survery 1991 के अनुसार 'स्कूल जाने वाले बच्चों में दृष्टि बाधित बच्चों का प्रतिशत 3% है। अमेरिका में दृष्टि बाधिता निम्न स्तर पर है। 1000 बच्चों पर एक दृष्टि बाधित पाया जाता है।

अमेरिकी मेडिकल संघ 1934 के अनुसार 'कानूनी दृष्टि से पूर्ण बाधित उन्हें मानते हैं जिनकी दृष्टि क्षमता 20/200 तथा इससे कम हो, उनकी आँखें सुधार के बाद उत्तम हो, जिनका दृष्टि का क्षेत्र सीमित हो और 20 का कोण बनाती हो उनकी आँखें सुधार के बाद उत्तम हो।' दृष्टि बाधिता का दूसरा घटक है 'देखने का क्षेत्र'। यदि एक व्यक्ति 20 f की दूरी एक समय में देख पाता है तो उसे दृष्टि बाधित कहा जायेगा।

परीक्षण:-

1. दृष्टि बाधिता का परीक्षण 'स्नैलन चार्ट' द्वारा किया जाता है इसका विकास फ्राँसीसी डॉक्टर 'हरबर्ट स्नैलन' ने किया था। इस चार्ट का प्रारम्भ अंग्रेजी वर्णमाला के E अक्षर से होता है। स्नैलन चार्ट कोलेंस के माध्यम से देखने पर सामान्य दृष्टि वाला बालक 200 f की दूरी से देख पाता है। समस्या ग्रस्त बालक 200 f की दूरी से देख पाता है तब उसे बैधानिक रूप से दृष्टि बाधित बालक कहते हैं।
2. चिकित्सीय दृष्टि से समस्या ग्रस्त बालक दृष्टि तीक्ष्णता के आधार पर 20f की दूरी को नहीं देख पाता है जबकि सामान्य व्यक्ति 200 f की दूरी को नहीं देख पाता है इसे 20/200 के रूप में व्यक्त करते हैं। नेत्र के आधार पर व्यक्ति के देखने का व्यास 20 डिग्री से अधिक नहीं होना चाहिए तथा उसकी दृष्टि तीक्ष्णता 20/200 से अधिक अच्छी न हो।

➤ दृष्टि बाधित बालको के प्रकार :-

दृष्टि बाधित बालको का प्रकार निम्नलिखित है।

i. आंशिक दृष्टि बाधित बालक :-

ऐसे बालको की आँखें उत्तम होती हैं। इनकी दृष्टि क्षमता 20 से 70 f तक होती है। यह 20f की दूरी तक देख सकते हैं जबकि सामान्य बालक 70 F की दूरी तक देख सकते हैं। यह मुद्रित अक्षरों को उत्तल दर्पण की सहायता से देख सकता है। इन्हें मेडिकल परीक्षण द्वारा पहचाना जाता है। यह चार प्रकार के होते हैं जो निम्नलिखित हैं। ?

- A. दृष्टि एक्युटी 20/70 तथा 20/200 तक होती है।
- B. गम्भीर तथा बढ़ने वाली दृष्टि समस्या से पीड़ित होते हैं।
- C. गम्भीर नेत्र रोगी होते हैं।
- D. औसत मस्तिष्क वाले होते हैं।

ii. गम्भीर/पूर्ण बाधित बालक:-

ऐसे बालको की आँखें कमजोर होती हैं। इनकी दृष्टि क्षमता 2 से 20 F तक होती है। श्रव्य तथा दृश्य यंत्रों का प्रयोग करते हैं। चलने में छड़ी का सहारा लेते हैं। इनकी दृष्टि एक्युटी 20/200 तक होती है। ये बालक पढ़ने के लिए ब्रेल

लिपि का प्रयोग करते हैं। ये बालक शैक्षिक कार्य हेतु नेत्रहीन तब समझे जाते हैं जब उनकी दृष्टि एक्युटी 20/200 होती है।

दृष्टि बाधित बालको में निकट दृष्टि दोष को मायोपिया तथा दूर दृष्टि दोष को हाइपर पिया कहते हैं।

iii. दृष्टि दोष वाले बालको की पहचान :-

- i. बालक आंखों को बार-बार मलता हो।
- ii. पलकों के बाल नोचता हो तथा आंखें लाल व गन्दी रहती हो।
- iii. छोटी वस्तुओं को बड़े ध्यान से देखता हो।
- iv. पुस्तक अत्यंत निकट से पढ़ता हो।
- v. रंगों की पहचान न कर पाता हो।
- vi. एक वस्तु के दो प्रतिबिम्ब दिखायी देते हो।
- vii. लगातार सिर में दर्द, आंखें सूझी हुयी, लाल होना तथा पानी बहते रहना इत्यादि।

➤ दृष्टि बाधिता के कारण :-

- i. वंशानुगत कारणों, रक्त की कमी तथा विटामिन A की कमी से भी दृष्टि बाधिता पायी जाती है।
- ii. आवासीय समस्या जिसके कारण मायोपिया तथा हाइपर पिया नामक बीमारियाँ होती हैं।
- iii. संक्रमण के कारण आंखों की रोशनी में समस्या होती है जिससे साइफिलिस तथा रुबेला जैसी बीमारियाँ होती हैं। संक्रमण के कारण ट्रैकोमा तथा ग्लूकोमा जैसी बीमारियाँ होती हैं।
- iv. सुगर, कैंसर, थायरॉइड, मलेरिया व गुर्दे सम्बन्धी बीमारियाँ भी दृष्टि दोष पैदा कर सकती हैं।
- v. समय से पूर्व प्रसव, दवाइयों को प्रयोग तथा प्रसव के समय प्रयुक्त होने वाले औजार भी दृष्टि दोष पैदा कर सकते हैं।
- vi. पढ़ने का गलत ढंग, चोट, दुर्घटना, अनुचित खाद्य सामग्री, पेष्ट, शीशा जहर, नीला थोथा खा लेने से दृष्टि दोष का कारण बन जाता है।

➤ विशेषतायें

- i. कम उपलब्धि, अभिप्रेरणा, कम प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा कम आत्म सम्मन होता है।
- ii. ऐसे बालको में कुसमायोजन पाया जाता है।
- iii. इनका ज्ञान श्रवण इन्द्रियों पर आधारित होता है।
- iv. इनमें सम्प्रेषण सक्षमता होती है तथा इनके अनुभव पूर्ण नहीं होते हैं।
- v. अमूर्त प्रत्ययों को समझने में कठिनाई महसूस करते हैं।
- vi. अन्य बालको के प्रति नकारात्मक व्यवहार होता है तथा संगीत की क्षमता होती है।
- vii. स्थान व रंग को समझने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। स्थान का अनुभव समय के आधार पर करते हैं। आवाजों से दिशा व दूरी का अनुभव प्राप्त करते हैं।

➤ दृष्टि बाधित बालकों का वर्गीकरण :-

वर्ग स्तर	उत्तम आँखे	क्षतिपूर्ति आँखे	बधिता का प्रतिशत
वर्ग द	6/9 से 6/18	6/24 से 6/36	20%
i.	6/18 से 6/36	6/60 से शुन्य	40%
ii.	6/36 से 6/60	3/60 से शुन्य	75%
iii.	1 से शुन्य	दृष्टि क्षेत्र 100	100%

➤ उपकरण:-

1. ब्रेल लिपि:- यह अन्धों के पढ़ने-लिखने की मूल प्रणाली है। इसका प्रतिपादन फ्रांसीसी संगीतकार लुई ब्रेल ने 1829 AD में किया था। यह 6 डाट की बनी होती है। जो 60 भिन्न-भिन्न चरित्रों बतलाती है 26 बिन्दुओं (Dots) का प्रयोग 26 अक्षरों के लिये तथा शेष अन्य बिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्रेल प्रणाली में प्रायः लिखने के दो तरीके हैं।

A. परकिनस ब्रेलर (Perkins Brailleur) &

इसमें 6 चाबियाँ होती हैं पिंजरे की हर एक डाँट के लिए इन बिन्दुओं पर 1 से 6 तक नम्बर दिये जाते हैं तथा उन नम्बरों पर 6 अक्षरों का प्रयोग किया जाता है।

B. स्लेट और स्टाइलस प्रणाली (State & Styles)&

यह प्रणाली अधिक कठिन होती है। इसमें स्पर्श करके ब्रेल लिपि का प्रयोग किया जाता है।

आज कल ब्रेल लिपि को विकसित करने के लिए Computer Braille Printers का प्रयोग किया जाता है।

2. मुद्रित सामग्री को बड़ा करने के लिए मैग्नीफाइंग शीशा का प्रयोग किया जाता है। आंशिक या पूर्ण अन्धों के लिए बोलने हेतु कैलक्यूलेटर का प्रयोग किया जाता है। इनमें संख्यात्मक प्रविष्टियों को ईयर प्लग द्वारा ऊँचा बोला जाता है।

3. उत्तल दर्पण, दृष्टि कैमरा, चलायमान टेलीस्कोप तथा ओप्टिकॉन मशीन का भी प्रयोग किया जाता है। ओप्टिकॉन एक छोटी मशीन है जिससे हम हर एक अक्षर को व्यवहार मत हावभाव में आसानी से बदल सकते हैं।

4. आंशिक रूप से असमर्थ बच्चों के लिए रोशनी की पर्याप्त मात्रा में व्यवस्था होनी चाहिए। विद्यालय में कक्षाओं की छतें सफेद तथा दीवारें हल्के रंग की होनी चाहिए तथा उनमें चमक नहीं होनी चाहिए।

5. आंशिक या पूर्ण रूप से अंधे बालक चलने के इलेक्ट्रॉनिक स्टिक का प्रयोग करते हैं। इस स्टिक में कंपन होता है। सड़क पर चलते समय कठोर जगह में स्टिक पड़ने पर अधिक कंपन होता है तथा मिट्टी या मुलायम जगह में स्टिक पड़ने पर कम कंपन होता है। जिससे सड़क का अन्दाजा लगाया जाता है।

6. आंशिक या पूर्ण रूप से अन्धे बालक स्पीकिंग वाच (Speaking Watch) का प्रयोग समय देखने के लिए करते हैं।

4. मानसिक मंदित बालक :- (Mentally Retarded child)

मानसिक रूप से विकलांग अथवा मन्द बुद्धि बच्चों की बौद्धिक क्षमता सामान्य बच्चों की अपेक्षा कम होती है। मन्द बुद्धि बच्चों को अपनी दिनचर्या के कार्य करने में भी बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। मानसिक मंदता औसत से निम्न मानसिक कार्य क्षमता का उल्लेख करती है। अतः मानसिक मंदता से

अभिप्राय मानसिक बुद्धि एवं विकास गति की न्यूनता से है। मानसिक मंदिता वाले बच्चों की IQ, साधारण बालकों की IQ से कम होती है। विभिन्न विद्वानों तथा समूहों द्वारा मानसिक मंदता की परिभाषायें निम्नलिखित हैं।

1. क्रो & क्रो के अनुसार:-

जिन बालकों की बुद्धि लब्धि 70 से कम होती है उन्हें मानसिक मंदित बालक कहते हैं।

2. अमेरिकल एसोसियेशन ऑफ मेण्टल डैफिशिएन्सी:-

मानसिक मंदिता से व्यक्ति की प्रकार्यात्मक क्षमता एवं समायोजन व्यवहार से सम्बन्धित वर्तमान स्थिति का बोध होता है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति किसी समय मानसिक मंदिता के मानदण्डों पर सही उतर सकता है। जबकि किसी अन्य समय नहीं भी। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, दशाओं में परिवर्तन तथा बौद्धिक प्रकार्यात्मकता में कुशलता आने से उसकी सामान्य स्थिति बदल सकती है।

3. अमेरिकन एसोसियेशन के अनुसार:-

मानसिक मंदिता से तात्पर्य उस असामान्य साधारण बौद्धिक कार्य क्षमता से है जो व्यक्ति की विकासात्मक अवस्थाओं में प्रकट होती है तथा उसके अनुकूलित व्यवहार में ह्रास से सम्बन्धित होती है।

4. ब्रिटीश मेण्टल डैफिशियेन्सी एक्ट:-

मानसिक मंदन 18 वर्ष से पहले आन्तरिक कारणों की वजह से अथवा बीमारी या चोट के कारण पैदा हुयी एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति के मस्तिष्क का विकास पा तो रुक जाता है या उसमें पूर्णता नहीं आ पाती है।

➤ मानसिक मंदिता का वर्गीकरण :-

मानसिक मंदिता का वर्गीकरण मुख्यतः तीन प्रकार का होता है जो निम्नवत है।

A. मनोविज्ञान वर्गीकरण

- i. EMR (Education Mentally Retarded)- IQ- 50-70 शिक्षा दी जाती है।
- ii. TMR (Trained Mentally Retarded)- IQ 25-50 प्रशिक्षित किया जा सकता है।
- iii. CMR (Care Mentally Retarded) IQ- 0-25 केवल देखभाल की जा सकती है।

3. शैक्षणिक वर्गीकरण:-

इसे अमेरिकी शिक्षा विदों द्वारा मौलिकता प्रदान की गयी है तथा NCERT नयी दिल्ली द्वारा मान्यता प्रदान की गयी है जो निम्नवत है। जो निम्नवत है।

- i. शिक्षित किये जाने वाले बालक : IQ 50:75/70
- ii. प्रशिक्षित किये जाने वाले बालक : IQ 25:50
- iii. प्रशिक्षित न किये जाने वाले बालक: IQ 0:25

4. चिकित्सय वर्गीकरण:-

मानसिक मंदिता सम्बन्धित चिकित्सीय वर्गीकरण निम्नलिखित है।

- i. संक्रमण या उत्तेजना, पोषण
- ii. ट्रोमा या सद्या
- iii. भयंकर दिमागी बीमारी
- iv. जन्म से पहले के प्रभाव
- v. क्रोमोसोम की असामान्यता

➤ मानसिक मंदता के लक्षण/पहचान:-

- i. ओठ मोट तथा लटके हुये होते हैं।

- ii. मुंह से हमेशा लार बहती रहती है।
 - iii. शारीरिक रूप से हस्त-पुष्ट होता है।
 - iv. सामाजिक मानदंड जैसी अभिवादन, नैतिकता तथा सम्बन्धों की समझ नहीं होती है।
 - v. कार्यों के प्रति लापरवाह तथा निष्क्रिय होता है।
- प्रमुख विशेषतायें:-
- i. ऐसे बालको की शैक्षिक निष्पत्ति कमजोर होती हैं
 - ii. ऐसे बालको की अवधान क्षमता तथा स्मृति स्तर निम्न होता है।
 - iii. ऐसे बालको में चिन्तन तथा आत्मविश्वास की कमी होती है।
 - iv. ऐसे बालक संवेगात्मक रूप से अस्थिर तथा एकाग्रता की कमी होती है।
 - v. ऐसे बालको में सीमित भाषायी कौशल तथा सामाजिक रूप से कुशल नहीं होते हैं।
- मानसिक मंदता के प्रमुख कारण
- i. **दोषपूर्ण गुणसूत्रों का विभाजन:-**
मानसिक मंदता का प्रमुख कारण प्रजनन के समय दोषपूर्ण गुणसूत्रों को विभाजन है। बालकों में 23+23=46 के बजाय 45 या 47 गुणसूत्र पाये जाते हैं जिसके फलस्वरूप बालको में मानसिक मंदता पायी जाती है।
 - ii. **डाउन्स सिण्ड्रोम:-**
इसमें 46 गुणसूत्रों के बजाय 47 गुणसू. होते हैं। फ्रांस के वैज्ञानिकों के मुताबिक 21 वें जोड़े में एक अतिरिक्त गुणसूत्र होता है। ऐसे बालको का चेहरा गोल, नाम छोटी व चपटी, आँखें धूसी हुयी, हाँथ छोटे, और मोटे तथा जीभ में दरार होती है। यह मंगोलिज्म होता है।
 - iii. **टर्नर सिण्ड्रोम:-**
इसमें 44 गुणसूत्र होते हैं। यह केवल बालिकाओं में पायी जाती है। आँखों में X क्रोमोसोम की कमी से यह दुर्बलता होती है।
 - iv. **क्लाइनफैल्टर सिण्ड्रोम:-**
इसमें 46 के बजाय 47 गुणसूत्र होते हैं। एक अतिरिक्त गुणसूत्र होने पुरुषों में महिलाओं के लक्षण विकसित होने लगती है। यह केवल पुरुषों में होता है।
 - v. **सीसा जहर:-**
सीसा जहर मानसिक मंदता का प्रमुख कारण है। सीसा जहर का प्रमुख स्रोत पेन्ट, फर्नीचर, खिलौनों, बैटरी के खोल, तथा पेंसिल का सिक्का खाने से होता है।
 - vi. **थायराइड हार्मोन:-**
थायराइड हार्मोन की कमी या अधिकता के कारण भी मानसिक मंदता होती है। कम आयु में गर्भधारण करने से भी मानसिक मंदता होती है।
 - vii. **फेनिलकीटो न्युरिया:-**
इसकी खोज 1934 AD में की गयी थी। इसका सम्बन्ध प्रोटीन मेटाबोलिज्म से है जो मानसिक मंदता का प्रमुख कारण है। ?

5. अपराधी बालक/समस्याग्रस्त बालक:-

ऐसे बालको को जो संविधान के विरुद्ध आचरण करने पर भारतीय संविधान की दण्ड संहिता के आधार पर उनके खिलाफ अभियोग दायर किया जाता है। उन्हें अपराधी बालक या समस्याग्रस्त बालक कहते हैं। 18 वर्ष से कम उम्र होने पर इन्हें बाल सुधार ग्रह में रखा जाता है तथा भारत सरकार इनकी शिक्षा की व्यवस्था अनु0 21A के आधार पर करती है।

6. पिछले बालक:-

ऐसे बालक जो समाज की मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित हैं। इनके शैक्षिक उत्थान के लिए भारत सरकार के द्वारा विशेष छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं तथा समय-समय पर अनेकों योजनायें संचालित करके लाभ प्रदान किया जाता है।

7. अधिगम असमर्थी बालक:-

ऐसे बालक जो किन्हीं कारणों से अधिगम करने पर असमर्थ हैं। वे विद्यालय में नामांकन करवाने के पश्चात् विद्यालय छोड़ देते हैं। इनके शैक्षिक उत्थान के लिए भी भारत सरकार के द्वारा विभिन्न योजनाओं का संचालन किया जाता है।



Exceptional Children

Dr. Reena Rai

Former Research Scholar

School of Education and Skill Development

Dr. B. R. Ambedkar University of Social sciences

Mhow, Madhya Pradesh

Introduction :

Exceptional children refers to children who deviate from the norm to such an extent that they require special educational services and support. This term encompasses children with disabilities, gifted children, and those with special learning needs due to factors like environmental, cultural, or economic disadvantage. Each of these groups may require unique educational strategies to meet their specific needs and help them reach their full potential.

Types of exceptionalities :

Exceptionalities can be categorized into several types based on the nature of the challenges or differences a child may have. Here are some common types of exceptionalities:

Intellectual Disabilities: Children with intellectual disabilities have limitations in intellectual functioning and adaptive behavior.

Learning Disabilities: These are specific disorders that affect a child's ability to acquire, organize, or use information effectively. This includes disorders like dyslexia, dyscalculia, and dysgraphia.

Attention-Deficit/Hyperactivity Disorder (ADHD): ADHD is a neurodevelopmental disorder characterized by inattention, hyperactivity, and impulsivity.

Autism Spectrum Disorder (ASD): ASD encompasses a range of conditions characterized by challenges with social skills, repetitive behaviors, and communication.

Physical Disabilities: These include conditions that affect mobility or physical functioning, such as cerebral palsy, muscular dystrophy, or spina bifida.

Sensory Impairments: This category includes visual impairments (like blindness or low vision) and hearing impairments (like deafness or hearing loss).

Emotional or Behavioral Disorders: Children with these disorders may exhibit difficulties in managing their emotions, behaviors, or relationships with others.

Giftedness: Gifted children demonstrate exceptional abilities or talents in areas such as academics, creativity, leadership, or the arts.

Speech and Language Disorders: These disorders affect a child's ability to produce or understand speech and may include conditions like stuttering or language delays.

Multiple Disabilities: Some children may have more than one disability, requiring specialized support that addresses multiple areas of need.

Understanding these different types of exceptionalities is crucial for educators and professionals to provide appropriate support and interventions tailored to each child's unique needs.

Inclusion vs segregation :

Inclusion and segregation represent two different approaches to educating exceptional children:

Inclusion:

Definition: Inclusion involves integrating exceptional children into mainstream educational settings alongside their peers without disabilities.

Benefits: Promotes acceptance, understanding, and social interaction among all students. Exceptional children have access to the same curriculum and educational opportunities as their peers.

Challenges: Requires sufficient resources, training for educators, and support to meet the diverse needs of all students. Some exceptional children may still require specialized instruction or support within the inclusive environment.

Segregation:

Definition: Segregation involves placing exceptional children in separate educational settings or special schools specifically designed for students with disabilities.

Benefits: May provide more specialized support and services tailored to the unique needs of exceptional children. Some parents and educators believe that segregation can offer a more focused and supportive learning environment.

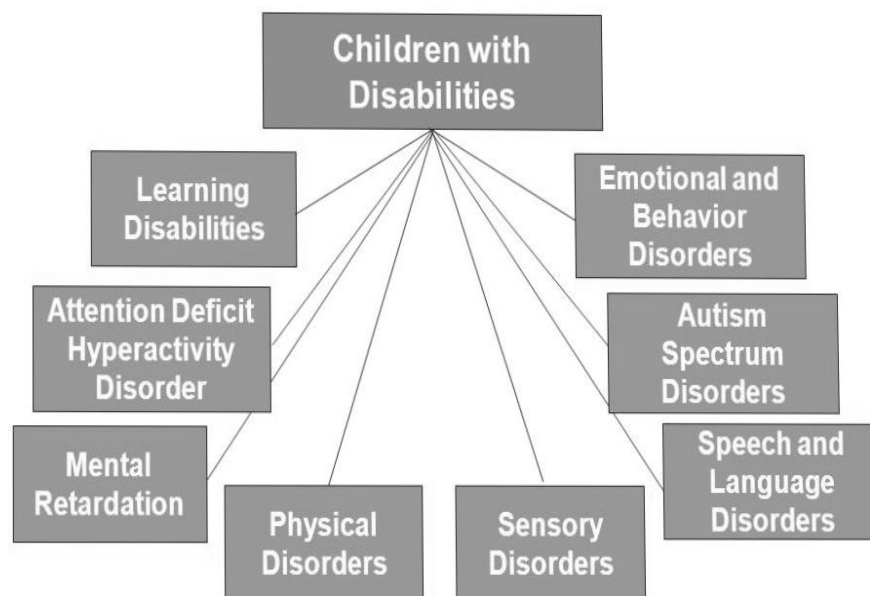
Challenges: Can lead to social isolation and limited interaction with peers without disabilities. May perpetuate stigma and stereotypes associated with disabilities. Exceptional children may not have access to the same educational opportunities or curriculum as their peers in mainstream settings.

Comparison:

Philosophy: Inclusion is rooted in the belief that all students, regardless of their abilities or disabilities, should have equal access to education and opportunities for social interaction. Segregation, on the other hand, is based on the idea that exceptional children require specialized settings or instruction.

Outcomes: Inclusion aims to foster acceptance, promote diversity, and prepare students for life in an inclusive society. Segregation may unintentionally reinforce barriers between students with and without disabilities.

Over the years, there has been a shift towards inclusion in many educational systems worldwide, recognizing the benefits of diverse classrooms and the importance of equity in education. However, the debate continues, and the best approach often depends on individual needs, resources, and the support available within each educational setting.



Learners who are Exceptional

Individualized education plan :

An Individualized Education Plan (IEP) is a personalized document designed to outline the specific educational goals and support services for a student with special needs.

The development of an IEP involves a collaborative process that includes educators, parents, and often other professionals like therapists or counselors. The goal is to create a comprehensive plan that addresses the student's unique needs, ensures access to the general education curriculum, and promotes their educational success.

An Individualized Education Plan (IEP) for exceptional children is a tailored educational plan designed to meet the unique needs of a student with special needs. Here's a more detailed breakdown of what an IEP typically includes for exceptional children:

Student Information:

Name, grade, and relevant background information.

Description of the exceptionalities or disabilities affecting the student.

Present Levels of Academic Achievement and Functional Performance:

Evaluation results and observations that describe the student's current abilities, strengths, and areas of need.

Annual Goals:

Specific, measurable goals tailored to the student's needs, such as improving reading comprehension, developing social skills, or mastering specific academic subjects.

Special Education and Related Services:

Description of specialized instruction, therapies, or services the student will receive, such as speech therapy, occupational therapy, or counseling.

Accommodations and Modifications:

Adjustments to the curriculum, teaching methods, or environment to support the student's access to the general education curriculum.

Examples include extended time on tests, use of assistive technology, or modified assignments.

Transition Services (for older students):

Goals and services to help the student prepare for post-secondary education, employment, or independent living.

Participation in General Education Classes:

Explanation of how and when the student will participate in general education classes and activities, and any supports or modifications needed.

Progress Monitoring and Reporting:

Methods for tracking the student's progress towards goals, including benchmarks or objectives to be met.

Frequency of progress reports and how parents will be informed of progress.

Special Considerations:

Any additional considerations or supports needed for the student, such as behavior intervention plans, transportation services, or assistive technology devices.

Transition Plan:

Steps and services to support the student's transition between grade levels, schools, or post-school activities.

Parent and Student Participation:

Opportunities for parents and, where appropriate, the student to participate in IEP meetings, provide input on goals and services, and collaborate with educators and professionals.

The IEP is developed collaboratively by a team that often includes parents, educators, special education professionals, and sometimes the student. It is reviewed and updated at least annually to ensure it remains relevant and effective in meeting the student's

evolving needs and goals. The goal of an IEP is to provide a comprehensive, individualized plan that supports the exceptional child's academic, social, and emotional development while ensuring access to a free and appropriate public education.

Family and community involvement :

Family and community involvement plays a crucial role in supporting the growth, development, and well-being of exceptional children. Here's how family and community can be involved:

Family Involvement:

Collaborative Planning: Parents and caregivers can actively participate in the development and review of the child's Individualized Education Plan (IEP), sharing insights about the child's strengths, needs, and goals.

Support at Home: Families can reinforce skills learned at school, assist with homework, and provide a nurturing environment that encourages learning and development.

Communication with Educators: Maintaining open and regular communication with teachers and school staff can help parents stay informed about their child's progress and address any concerns or challenges.

Advocacy: Parents can advocate for their child's needs within the school system, ensuring they receive the necessary support, accommodations, and services to succeed academically and socially.

Emotional Support: Providing emotional support, encouragement, and understanding can help exceptional children build confidence, resilience, and a positive self-image.

Community Involvement:

Community Programs and Resources: Connecting with community organizations, support groups, or recreational programs that cater to exceptional children can provide additional opportunities for learning, socialization, and skill development.

Volunteer Opportunities: Encouraging community members to volunteer or mentor exceptional children can provide valuable support and positive role modeling.

Awareness and Education: Raising awareness about exceptionalities within the community can help reduce stigma, promote acceptance, and foster a more inclusive environment for all children.

Collaboration with Schools: Building partnerships between schools and community organizations can create opportunities for shared resources, expertise, and support services for exceptional children and their families.

Community Events and Activities: Participating in community events, workshops, or activities that promote inclusion and celebrate diversity can help exceptional children feel valued and connected to their community.

Involvement from both family and community members creates a supportive network around exceptional children, enhancing their educational experiences, promoting their overall development, and contributing to their success in school and life.

Legal rights for exceptional children's :

Exceptional children have specific legal rights to ensure they receive appropriate educational services and support. Here are some key legal rights and protections in the context of education for exceptional children:

Individuals with Disabilities Education Act (IDEA):

Free Appropriate Public Education (FAPE): Ensures that all children with disabilities are entitled to a free and appropriate public education tailored to their unique needs.

Individualized Education Plan (IEP): Requires schools to develop and implement an IEP for each child with a disability, outlining specific educational goals and services.

Section 504 of the Rehabilitation Act:

Non-Discrimination: Prohibits discrimination against individuals with disabilities in any program or activity receiving federal financial assistance.

504 Plan: Provides accommodations and supports to students with disabilities who do not qualify for special education services under IDEA but still require assistance to access the general education curriculum.

Americans with Disabilities Act (ADA):

Accessibility: Requires schools and public entities to provide reasonable accommodations and ensure accessibility for individuals with disabilities.

Non-Discrimination: Prohibits discrimination based on disability in all public and private entities, including schools.

Family Educational Rights and Privacy Act (FERPA):

Privacy: Protects the privacy of student education records and gives parents and eligible students the right to access and request corrections to their records.

Parent and Student Participation:

Informed Consent: Parents must give informed consent for evaluations, services, and placements related to special education.

Due Process Rights: Provides parents and students with the right to challenge decisions related to identification, evaluation, or placement through due process hearings.

Transition Services:

Transition Planning: Requires schools to provide transition services to help students with disabilities prepare for post-secondary education, employment, and independent living.

Procedural Safeguards:

Notice and Consent: Schools must provide parents with written notice before making significant changes to the child's educational placement or services and obtain parental consent when necessary.

Mediation and Due Process Hearings: Provides mechanisms for resolving disputes between parents and schools, including mediation and formal due process hearings.

Least Restrictive Environment (LRE):

Inclusion: Requires schools to educate students with disabilities in the least restrictive environment appropriate to their needs, promoting inclusion and access to general education settings to the maximum extent possible.

It's Important for parents and caregivers to be aware of these legal rights and protections to advocate effectively for their child's educational needs. Schools are obligated to comply with these laws and work collaboratively with parents to develop and implement appropriate educational plans for exceptional children. If parents believe their child's rights are being violated, they have the right to seek assistance, mediation, or legal counsel to address their concerns.

Assistive technology :

Assistive technology (AT) plays a vital role in supporting exceptional children by helping them access the curriculum, communicate, and participate more fully in educational and daily activities. Here are some types of assistive technology commonly used for exceptional children:

Communication Devices:

Augmentative and Alternative Communication (AAC) Devices: Helps nonverbal or minimally verbal children communicate using symbols, pictures, or speech-generating devices.

Speech-to-Text Software: Converts spoken language into written text, assisting children with speech or language impairments.

Learning and Literacy Tools:

Text-to-Speech Software: Reads aloud digital text, helping children with reading difficulties or visual impairments access written information.

Word Prediction Software: Assists students with writing by predicting and suggesting words as they type, improving writing speed and accuracy.

Math and Science Software: Provides interactive tools and visual aids to help students understand and solve complex mathematical and scientific concepts.

Mobility and Physical Access Devices:

Adaptive Keyboards and Mice: Customizable keyboards and mice designed for children with motor impairments or physical disabilities.

Switch Access: Allows children to control devices using switches, sip-and-puff devices, or other alternative input methods.

Mobility Aids: Includes walkers, wheelchairs, or mobility scooters tailored to the individual needs of children with physical disabilities.

Sensory Aids:

Visual Aids: Includes magnifiers, screen readers, or high-contrast displays to assist children with visual impairments or low vision.

Auditory Aids: Includes hearing aids, FM systems, or sound amplification devices to support children with hearing impairments or auditory processing disorders.

Organization and Time Management Tools:

Visual Schedules and Timers: Helps children with organizational difficulties, ADHD, or autism manage their time, routines, and transitions effectively.

Task Management Apps: Digital apps or software to help students organize assignments, schedules, and reminders.

Assistive Software and Apps:

Educational Apps: Interactive learning apps tailored to specific academic subjects or skills, offering personalized learning experiences.

Assistive Writing Tools: Software with features like word prediction, spell check, and grammar check to support students with writing difficulties.

Environmental Control Systems:

Smart Home Technology: Allows children with physical disabilities to control lights, appliances, or other devices using voice commands, switches, or remote controls.

When selecting assistive technology for exceptional children, it's essential to consider the individual needs, preferences, and abilities of the child. Collaborating with educators, therapists, and AT specialists can help identify the most appropriate and effective tools to support the child's learning and independence. Training and ongoing support are also crucial to ensure successful implementation and use of assistive technology in various settings, including home, school, and community environments.

Social and emotional development :

The social and emotional development of exceptional children is a critical aspect of their overall well-being and success. Here's how social and emotional development can be impacted in various exceptionalities and ways to support them:

Autism Spectrum Disorder (ASD):

Social Skills: Children with ASD may struggle with social interactions, understanding social cues, and forming friendships.

Emotional Regulation: Difficulties in managing emotions, sensory sensitivities, and coping with changes or transitions.

Support: Social skills training, structured playgroups, and visual supports can help improve social understanding and emotional regulation.

Attention-Deficit/Hyperactivity Disorder (ADHD):

Attention and Impulsivity: Children with ADHD may have trouble paying attention, controlling impulses, and staying organized.

Emotional Regulation: Challenges in managing emotions, frustration, and impulsivity.

Support: Behavior management strategies, mindfulness practices, and organizational tools can help improve attention and emotional control.

Learning Disabilities:

Self-esteem: Struggles with academic tasks can impact self-confidence and self-perception.

Emotional Regulation: Frustration, anxiety, or avoidance related to learning challenges.

Support: Individualized instruction, positive reinforcement, and self-advocacy skills can boost self-esteem and resilience.

Intellectual Disabilities:

Social Skills: Delays or challenges in social understanding, communication, and interaction.

Emotional Development: Varied emotional maturity and understanding of social situations.

Support: Social skills training, peer mentoring, and inclusive environments can foster social growth and emotional well-being.

Sensory Processing Disorders:

Sensory Sensitivities: Overwhelm or discomfort related to sensory inputs (e.g., lights, sounds, textures).

Emotional Responses: Anxiety, avoidance, or meltdowns due to sensory overload.

Support: Sensory integration therapy, environmental modifications, and sensory tools (e.g., weighted blankets, headphones) can help manage sensory sensitivities and emotional reactions.

Supporting Social and Emotional Development:

Positive Relationships: Building trusting relationships with caregivers, peers, and educators can provide a supportive and nurturing environment for social and emotional growth.

Social Skills Training: Structured activities, role-playing, and group interactions can help teach and practice social skills and communication strategies.

Emotional Literacy: Teaching children to identify, express, and manage their emotions can improve emotional regulation and interpersonal relationships.

Inclusive Environments: Encouraging inclusive classrooms and community settings promotes acceptance, understanding, and positive social interactions among all children.

Counseling and Therapy: Individual or group counseling, play therapy, or cognitive-behavioral therapy can help children process emotions, develop coping strategies, and improve social skills.

Parent and Educator Collaboration: Working collaboratively with parents, caregivers, and educators to understand the child's needs, strengths, and challenges ensures consistent support and intervention across different settings.

Self-Advocacy: Empowering children to communicate their needs, preferences, and feelings fosters independence, self-awareness, and resilience.

Supporting the social and emotional development of exceptional children requires understanding, patience, and individualized approaches tailored to each child's unique needs and strengths. By providing a supportive environment, appropriate interventions, and opportunities for growth and learning, we can help exceptional children thrive socially and emotionally, enhancing their overall well-being and quality of life.

Transition planning :

Transition planning for exceptional children is a crucial process that helps prepare them for the next stage of their life, whether it's transitioning from early childhood to school, from elementary to middle school, from middle to high school, or from high school to post-secondary education, employment, or independent living. Here's a guide to transition planning for exceptional children:

Early Planning:

Start Early: Begin transition planning as early as possible, ideally by middle school or earlier, to allow sufficient time to identify goals, supports, and services.

Assessment: Conduct assessments to identify the child's strengths, interests, abilities, and areas of need related to transition goals.

Transition Goals:

Educational Goals: Identify academic goals, such as completing high school coursework, obtaining certifications, or pursuing post-secondary education.

Career Goals: Explore career interests, skills, and vocational training opportunities aligned with the child's abilities and interests.

Independent Living Goals: Develop skills for daily living, such as managing finances, cooking, transportation, or self-care.

Transition Services and Supports:

Educational Supports: Access to special education services, accommodations, and modifications to support academic and functional skills development.

Career and Vocational Training: Opportunities for vocational assessments, job training, internships, or work-based learning experiences.

Community Services: Connection to community resources, agencies, or programs that provide support and services related to employment, housing, transportation, or healthcare.

Independent Living Skills Training: Instruction and support in developing skills for independent living, such as personal care, household management, and community navigation.

Collaboration and Coordination:

Interagency Collaboration: Foster collaboration between schools, vocational rehabilitation agencies, community organizations, and other service providers to coordinate transition services and supports.

Family Involvement: Engage parents, caregivers, and families in the transition planning process to ensure a collaborative and informed approach.

Student Involvement: Encourage the student's active participation in decision-making, goal-setting, and planning to promote self-determination and independence.

Transition Plan Development:

Individualized Transition Plan (ITP): Develop an Individualized Transition Plan that outlines specific goals, services, supports, and timelines tailored to the child's needs and aspirations.

Progress Monitoring: Regularly review and update the transition plan to track progress, adjust goals, and ensure alignment with the child's evolving needs and post-secondary aspirations.

Documentation and Record-Keeping: Maintain thorough documentation of transition planning activities, assessments, services, and outcomes to facilitate communication, accountability, and continuity of support.

Post-Secondary Transition:

Post-Secondary Education: Explore opportunities for higher education, such as community college, vocational training programs, or specialized post-secondary programs for students with disabilities.

Employment: Connect with vocational rehabilitation services, job placement agencies, or supported employment programs to assist with job search, job placement, and ongoing support in the workplace.

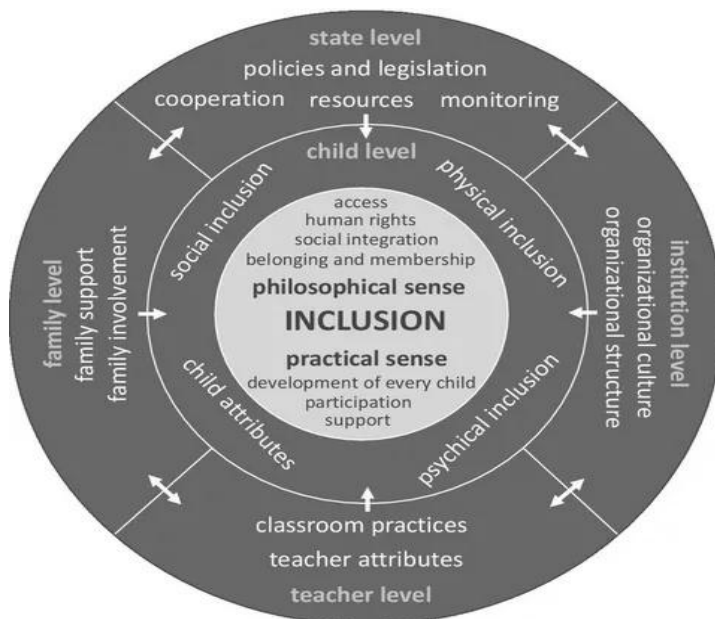
Independent Living: Identify housing options, transportation solutions, healthcare resources, and community supports to promote independence and community integration.

Transition Resources and Tools:

Transition Planning Tools: Utilize transition planning tools, resources, and templates provided by educational agencies, advocacy organizations, and government agencies to guide the transition planning process.

Supportive Technology: Explore assistive technology, apps, and tools that can support the child’s transition planning, skill development, and daily living activities.

Transition planning for exceptional children is a collaborative, ongoing process that requires coordination, communication, and individualized planning to ensure a successful transition to adulthood and post-secondary life. By engaging families, students, educators, and community partners in the transition planning process and providing comprehensive supports and resources, we can help exceptional children achieve their goals, maximize their potential, and thrive in their future endeavors.



The model for the implementation of inclusive education in early childhood education (based on Nelis and Pedaste, 2020).

Conclusion :

Exceptional children bring unique strengths, challenges, and perspectives to our communities, enriching our lives in countless ways. While they may face various obstacles, with the right support, understanding, and opportunities, exceptional children can achieve remarkable growth, success, and fulfillment.

Education and support for exceptional children have evolved significantly over the years, emphasizing inclusivity, individualized approaches, and collaboration among families, educators, and community partners. Legal protections and rights ensure that exceptional children have access to appropriate educational services, accommodations, and opportunities to thrive academically, socially, and emotionally.

Transition planning plays a pivotal role in preparing exceptional children for the future, equipping them with the skills, resources, and confidence to navigate post-secondary

education, employment, and independent living successfully. Early intervention, personalized interventions, and ongoing support are key components in fostering the social, emotional, and academic development of exceptional children.

As we continue to learn, adapt, and innovate in our approaches to supporting exceptional children, it's essential to recognize and celebrate their unique abilities, contributions, and potential. By embracing diversity, promoting inclusion, and advocating for the rights and well-being of exceptional children, we can create more compassionate, inclusive, and supportive communities where all children have the opportunity to thrive and reach their full potential.

In conclusion, exceptional children deserve our understanding, respect, and unwavering support. By working together, we can ensure that every exceptional child has the chance to shine, succeed, and make a positive difference in the world.

References :

- Education Overview: Development news, research, data. World Bank. (2022). Retrieved January 6, 2023, from <https://www.worldbank.org/en/topic/education/overview#:~:text=For%20individuals%2C%20education%20promotes%20employment,institutions%2C%20and%20fosters%20social%20cohesion.>
- World Health Organization. (2022, December 2). Disability. World Health Organization <https://www.who.int/en/news-room/fact-sheets/detail/disability-and-health> [3]n. Retrieved January 6, 2023, from
- Dee, T. S., & Sievertsen, H. H. (2015, October 5). The gift of time? School starting age and mental health. NBER. Retrieved January 6, 2023, from <https://www.nber.org/papers/w21610>
- Face the facts: Disability rights. The Australian Human Rights Commission. (2022). Retrieved January 6, 2023, from <https://humanrights.gov.au/our-work/education/face-facts-disability-rights> [5]
- Nina. (2022, January). Seen, counted, included: Using data to shed light on the well-being of children with disabilities. UNICEF DATA. Retrieved December 27, 2022, from <https://data.unicef.org/resources/children-with-disabilities-report-2021/>
- Idea. NCLD. (2022, June 22). Retrieved December 9, 2022, from <https://www.nclد.org/get-involved/learn-the-law/idea/>
- National Coalition on Personnel Shortages in Special Education and Related Services. (2016). Retrieved from <https://specialedshortages.org/>
- Carver-Thomas, D., & Darling-Hammond, L. The trouble with teacher turnover: How teacher attrition affects students and schools. Education Policy Analysis Archives, 2019, 27(36).
- Gilmour, A. F., By, Gilmour, A. F., Bio, A. F. G. A., & Bio, A. (2022, January 25). Has inclusion gone too far? Education Next. Retrieved December 9, 2022, from <https://www.educationnext.org/has-inclusion-gone-too-far-weighing-effects-students-with-disabilities-peers-teachers/>
- Ramos, T.-M. (2022, March 8). Challenges for teachers in special-needs-inclusive classrooms. We Have Kids. Retrieved December 8, 2022, from <https://wehavekids.com/education/Top-Challenges-Teacher-Face-in-Special-Needs-Inclusive-Classrooms> [11]
- Social, emotional and behavioral challenges. NCLD. (2019, November 21). Retrieved December 8, 2022, from <https://www.nclد.org/research/state-of-learning-disabilities/social-emotional-and-behavioral-challenges/#:~:text=1.,also%20be%20a%20significant%20factor.>

- The importance of inclusion classrooms. Alvernia Online. (2019, June 5). Retrieved December 9, 2022, from <https://online.alvernia.edu/articles/inclusion-classroom/#:~:text=Improved%20Academic%20Success&text=Research%20has%20shown%20that%20when,classes%2C%20their%20academic%20success%20improves.>
- Florian, L. On the necessary co-existence of special and inclusive education. *International Journal of Inclusive Education*, 2019, 23(7-8), 691-704.
- Minghui, L., Lei, H., Xiaomeng, C., & Potměšilc, M. Teacher efficacy, work engagement, and social support among Chinese special education school teachers. *Frontiers in Psychology*, 2018, 9, 648.
- Pit-ten Cate, I. M., Markova, M., Krischler, M., & Krolak-Schwerdt, S. Promoting Inclusive Education: The Role of Teachers' Competence and Attitudes. *Insights into Learning Disabilities*, 2018, 15(1), 49-63.
- Gurney, P. W. *Self-esteem in children with special educational needs*. Routledge. 2018.



डॉ. अरुण कुमार मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर
एपेक्स प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी
पासीघाट , अरुणांचल प्रदेश

मनुष्य को जैव वैज्ञानिकों द्वारा सर्वोच्च पशु माना गया है । परंतु मनुष्य में मस्तिष्क का विकास अन्य पशुओं के अपेक्षाकृत विकसित अवस्था में पाया जाता है। इसलिए यह समस्त पशुओं में सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

जैसा कि पूर्व में हमने स्वीकार किया है, कि मानव एक सर्वोच्च पशु है, परंतु मस्तिष्क इसका विकसित अवस्था में है, और इसे हम प्रशिक्षित कर सकते हैं, या शिक्षित कर सकते हैं। जिससे यह जंगली पशु से एक सामाजिक मानव बन सकता है, जो समाज के अनुकूल आचार व व्यवहार करता है।

अरस्तु का कथन है कि "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण ही शिक्षा है"। इस परिभाषा के दो पहलू मुख्य हैं, प्रथम 'स्वस्थ शरीर, द्वितीय 'स्वस्थ मस्तिष्क'। तो इस परिभाषा के अनुसार यदि आपका शरीर स्वस्थ है तो आपका मस्तिष्क भी स्वस्थ होगा और वह मस्तिष्क शिक्षित या प्रशिक्षित भी हो सकता है। तो कुल मिलाकर मानव के विकास हेतु या सर्वांगीण विकास हेतु शरीर के साथ-साथ मस्तिष्क का भी स्वस्थ होना जरूरी है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि मस्तिष्क स्वस्थ नहीं है, या रहा तो इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, या यह किस स्थिति को उत्पन्न करेगा। यहीं से हमें मानसिक स्वास्थ्य के महत्व के विषय में पता चलता है, अर्थात् मानसिक अस्वस्थता मानव के सर्वांगीण विकास में एक बाधक के रूप में आता है।

मानसिक स्वास्थ्य

मानसिक स्वास्थ्य को अध्ययन के विषय वस्तु के रूप में प्रतिस्थापित करने में विलफोर्ड बीयर्स का प्रमुख योगदान रहा है। इन महोदय ने 24 वर्ष की अवस्था में आत्महत्या का प्रयास किया था। इसके बाद स्वस्थ होने पर इन्होंने अपनी आत्मकथा 'ए माइण्ड दैट फाउंड इटसेल्फ' (। उपदक जीज विनदक पजेमसा) पुस्तक लिखी, जिसने मानसिक स्वास्थ्य पर लोगों को सोचने पर विवश किया, जिससे यह एक विषय वस्तु के रूप में प्रतिस्थापित हुआ।

मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ

जैसा कि हम लोगों ने पूर्व में समझा कि शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य दोनों मानव के महत्वपूर्ण पहलू हैं, परंतु यदि नजदीकी रूप से देखें तो शारीरिक स्वास्थ्य का प्रभाव केवल व्यक्ति विशेष पर पड़ता है। परंतु मानसिक स्वास्थ्य का प्रभाव व्यक्ति विशेष से अधिक समाज पर पड़ता है। अतः यह एक सबसे महत्वपूर्ण पहलू अध्ययन हेतु होगा। क्योंकि यदि व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ है तो समाज पर धनात्मक प्रभाव ज्यादा पड़ेगा और यदि अस्वस्थ है तो समाज पर ऋणात्मक प्रभाव ज्यादा पड़ेगा।

परिभाषाएं

क्रो एंड क्रो – "मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान वह विज्ञान है जिसका संबंध मानव कल्याण से है और जो मानव संबंधों के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता है"।

डमदजंस मंसजी पे बपमदबम जीज कमसे पूजी जीम ीनउंद मसतिम चमतअंकमे सस पिमसके पि ीनउंद तमसंजपवदीपच वृ बतवू – बतवू

हैडफील्ड—"सामान्य भाषा में हम कह सकते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य संपूर्ण व्यक्तित्व की क्रियाशीलता है"।

पद हमदमतंस जमतउे म उंल ल जीज उमदजंस मंसजी पे जीम ीतउवदपवने निदबजपवदपदह वी जीम ीवसम चमतेवदंसपजलण ; भ्मंकपिमसकद्ध

कार्ल मेंनिंगर—“मानसिक स्वास्थ्य अधिकतम खुशी तथा प्रभावशीलता के साथ वातावरण एवं उसके प्रत्येक दूसरे व्यक्ति के साथ मानव समायोजन है—यह एक संतुलित मनोदशा, सतर्क बुद्धि, सामाजिक रूप से मान्य व्यवहार तथा एक खुशमिजाज बनाए रखने की क्षमता है”।

शडमदजंस नीमसजी पे जीम करनेजउमदज वीनउंद इमपदह जव जीम वूतसक दक जव मंबी वजीमत पूजी उंगपउनउ मभिबजपअमदमे दक चिचपदमेण प्ज पे इपसपजल जव उंपदजंपद दक मअमद जव जमउचमत द समतजए पदजमससपहमदबमए वबपंससल बवदेपकमतंजम इमीअपवनत दक चिचल कपेचवेपजपवदश्ण ; बंस उमदपदहमतद्ध

उपर्युक्त परिभाषाओं के अवलोकन से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि मानसिक स्वास्थ्य से अभिप्राय मस्तिष्क की उस अवस्था से है, जिसमें वह और उसका कार्य समाज के अनुकूल हो जिससे उसकी स्व की प्रगति के साथ—साथ मानव समाज भी लाभान्वित हो सके।

अच्छे मानसिक स्वास्थ्य की विशेषताएं

1—समंजनशीलता—

समंजनशीलता से अभिप्राय यहां पर यह है कि क्या व्यक्ति आने वाली समस्याओं से लड़ पाता है या नहीं, क्या वह परिस्थितियों के साथ अपने आप को बदल पाता है या नहीं, यदि वह परिस्थितियों के साथ—साथ अपने आप को बदलने में समर्थ है तो वह एक अच्छा मानसिक स्वास्थ्य वाला व्यक्ति कहा जाएगा अन्यथा नहीं। अतः हम कह सकते हैं कि समंजनशीलता एक ऐसा मानक है जिसके आधार पर हम मानव के मानसिक स्वास्थ्य का मूल्यांकन कर सकते हैं।

2—स्व का विकास—

स्व से अभिप्राय व्यक्ति का खुद के ऊपर विश्वास से है। यदि व्यक्ति का स्वयं के ऊपर पूर्ण विश्वास है तो उसका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा समझा जाएगा अन्यथा नहीं।

3—दूसरे के प्रति धनात्मक दृष्टिकोण

मानसिक स्वास्थ्य के मापन में अगला पैमाना यह है कि व्यक्ति का दूसरों के प्रति दृष्टिकोण कैसा है, यदि व्यक्ति का दृष्टिकोण दूसरों के प्रति अच्छा, सकारात्मक या धनात्मक है तो वह एक अच्छे मानसिक स्वास्थ्य वाला समझा जाएगा। इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति यदि दूसरों में अच्छी चीजों को खोजेगा तो उसका भी व्यक्तित्व अच्छा बनेगा।

4—समाज के प्रति दृष्टिकोण

एक स्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति समाज के प्रति धनात्मक दृष्टिकोण रखता है, वह समाज से अपेक्षा से ज्यादा उसके लिए कुछ कर गुजरने की क्षमता रखने का प्रयास करता है, वह यह नहीं सोचता कि समाज से हमें क्या मिला है बल्कि यह सोचता है कि हम समाज को क्या दे सकते हैं यदि ऐसा व्यक्तित्व वाला व्यक्ति है तो वह अच्छे मानसिक स्वास्थ्य का व्यक्ति है।

5—व्यक्तित्व में लोचशीलता

लोचशीलता से अभिप्राय यह है कि एक अच्छे मानसिक स्वास्थ्य वाला व्यक्ति समय और परिस्थिति के साथ अपने आप को समंजित कर लेता है, वह किसी भी वातावरण में अपने आप को ढालने की क्षमता रखता है यदि ऐसा मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति का है तो वह अच्छे मानसिक स्वास्थ्य वाला कहा जाता है।

6—संवेगों पर नियंत्रण

एक अच्छे मानसिक स्वास्थ्य वाला व्यक्ति अपने संवेगों पर अच्छा नियंत्रण स्थापित रखता है, अर्थात् जैसे क्रोध, भय, घृणा, दुःख आदि से प्रभावित न होकर स्वयं समय के अनुसार निर्णय लेने की क्षमता रखता है अर्थात् किसी भी समस्या के समाधान में वह अपने अच्छे मानसिक स्थिति का प्रदर्शन करता है।

7—अपने कार्य के प्रति निष्ठा

अच्छे मानसिक स्वास्थ्य वाला व्यक्ति अपने कार्य को ईमानदारी, लगन से करने का प्रयास करता है, उसे निश्चित समय पर भी पूरा करने का प्रयास करता है, उस कार्य को करने में आने वाली समस्याओं का भी निदान स्वयं करता है।

8—विवेकशीलता

अच्छे मानसिक स्वास्थ्य वाला व्यक्ति विवेकशील होता है, वह देश काल समय परिस्थिति के अनुसार निर्णय लेता है ना की अपने संवेगों के अनुसार, अतः अच्छे मानसिक स्वास्थ्य वाला व्यक्ति अपने विवेक से कार्य करने के कारण समाज में एक अच्छा स्थान भी प्राप्त करता है।

9—समस्याओं से जूझने की क्षमता

अच्छे व्यक्तित्व वाला व्यक्ति आने वाली समस्याओं से अपने विवेक और अपने आत्मविश्वास की सहायता से उसे हल करने का प्रयास करता है, और यदि समस्याएं नहीं सुलझ पा रही हैं तो अन्य किसी की सहायता भी लेकर समस्याओं का निदान करने का प्रयास करता है।

10—जिंदा दिल

अच्छे मानसिक स्वास्थ्य वाला व्यक्ति सदैव जिंदा दिल होता है जो सभी के साथ समान व्यवहार करता है, किसी के प्रति मन में कोई घृणा नहीं रखता है और सबका सहयोग भी करने का प्रयास करता है, और सभी को खुश भी रखने का प्रयास करता है।

11—शारीरिक रूप से स्वस्थ

एक अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लिए व्यक्ति को पहले शारीरिक रूप से स्वस्थ होना एक आवश्यक कड़ी है, जब व्यक्ति शरीर से स्वस्थ रहेगा तभी वह मानसिक रूप से भी स्वस्थ हो सकेगा, अर्थात् मानसिक स्वस्थता से पहले शारीरिक रूप से स्वस्थता आवश्यक है।

अस्वस्थ मानसिक स्वास्थ्य के लक्षण

1—आत्मविश्वास में कमी

यदि किसी व्यक्ति में किसी कार्य के प्रति उसके पूर्ण होने में संशय हो, और वह व्यक्ति किसी कार्य के लिए अपने आप को अनुपयुक्त समझता हो, अर्थात् उसके आत्मविश्वास में अपने प्रति स्वयं विश्वास ना हो तो यह एक अस्वस्थ मानसिकता का लक्षण है।

2—समस्याओं से भागना

अस्वस्थ मानसिकता के लक्षण वाला व्यक्ति के सामने किसी भी प्रकार की समस्या आने पर वह आत्मविश्वास की कमी के कारण हाथ खड़े कर देता है अर्थात् समस्याओं से स्वयं भागने लगता है, या यूं कहें कि समस्याओं से लड़ने की उसमें स्वयं कोई क्षमता नहीं होती यह भी अस्वस्थ मानसिकता का लक्षण है।

3— कुसमायोजित

अस्वस्थ मानसिकता वाला व्यक्ति किसी भी पर्यावरण के प्रति अपने आप को अनुकूल नहीं बना पाता, अर्थात् नई परिस्थितियों में अपने आप को समायोजित करने में असमर्थ पाता है, तो यह भी एक अस्वस्थ मानसिकता का लक्षण है।

4— अविवेकी

किसी कार्य को किया जाए, तो किस प्रकार कुशलता पूर्वक उसे संपन्न किया जाए, यदि कोई कार्य करने लायक ना हो, तो उसे ना किया जाए, इस प्रकार के निर्णय लेने की क्षमता विवेक कहलाती है। अर्थात् अविवेकी व्यक्ति में ऐसे निर्णय लेने की क्षमता नहीं पाई जाती, उसे यह ज्ञान नहीं होता है कि कौन सा कार्य करने लायक है और कौन सा नहीं।

5—नकारात्मक दृष्टिकोण

अस्वस्थ मानसिकता वाला व्यक्ति प्रत्येक समस्याओं को नकारात्मक दृष्टि से ही देखता है, उसे समस्त सृष्टि में सर्वत्र नकारात्मकता ही दिखती है। वह हर स्थान पर नकारात्मकता की खोज में ही अपनी ऊर्जा को नष्ट करता है। ऐसी प्रवृत्ति वाला व्यक्ति अस्वस्थ मानसिकता वाला कहलाता है।

6— लोचशीलता का अभाव

अस्वस्थ मानसिकता वाला व्यक्ति अपने जीवन में, अपने विचारों से कोई समझौता नहीं करता है। अर्थात् वह देश काल समय परिस्थिति के अनुसार स्वयं में कोई परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं होता है जबकि स्वस्थ मानसिकता का लक्षण है कि वह देश काल समय परिस्थिति के अनुसार अपने आप में परिवर्तन कर ले।

7—अस्वस्थता

ऐसा व्यक्ति शारीरिक रूप से अक्सर अस्वस्थ रहता है। शारीरिक अस्वस्थता के कारण वह स्वयं मानसिक अस्वस्थता से भी घिर जाता है।

8—भावनात्मक रूप से अस्थिर

अस्वस्थ मानसिकता वाला व्यक्ति अपने संवेगों पर नियंत्रण स्थापित करने में असमर्थ होता है, जिसके कारण वह समय-समय पर अपने कार्यों के प्रति सही निर्णय लेने में असमर्थ होता है।

9— निर्बल निर्णय शक्ति

अस्वस्थ मानसिकता वाला व्यक्ति आवश्यकता पड़ने पर कठोर निर्णय या त्वरित निर्णय नहीं ले पाता है। क्योंकि वह अविवेकी और अपने संवेगों पर नियंत्रण स्थापित करने वाला नहीं होता है।

10— कल्पनाशील

अस्वस्थ मानसिकता वाला व्यक्ति सदैव आभासी दुनिया या कल्पना की दुनिया में विचरण करता है, क्योंकि उसमें खुद की आत्म शक्ति नहीं होती इसलिए वह अपने मानसिक संवेगों की पूर्ति अपने कल्पना की दुनिया में करने का प्रयास करता है।

मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के उपाय

मनुष्य रूपी पशु को शिक्षा के द्वारा ही उसे सामाजिक प्राणी बनाया जाता है, और यह शिक्षा ही उसके व्यवहार में परिवर्तन लाती है, जिससे वह सामाजिक प्राणी बनता है। यह शिक्षा परिवर्तन तीन माध्यम से लाती है। प्रथम परिवार, द्वितीय समाज और तृतीय विद्यालय। अब हम यह देखेंगे की यह तीनों अवयव किस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायता प्रदान करते हैं।

अ— परिवार

बच्चों का जन्म के पश्चात प्रथम संपर्क परिवार से ही होता है और इसी परिवार में बच्चों का मानसिक विकास और स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जाता है, और इसी परिवार के वातावरण का प्रभाव बालक के मानसिक विकास पर पड़ता है, अतएव परिवार ही वह माध्यम है, जो प्रथम रूप में बालक के मानसिक विकास हेतु जिम्मेदार है। यह निम्न प्रकार से बालक के मानसिक विकास में सहायता प्रदान करता है—

- 1— आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के द्वारा
- 2— सरस पारिवारिक वातावरण के द्वारा
- 3— एक दूसरे के प्रति सद्भवहार के द्वारा
- 4— परिवार में अनुशासनिक व्यवहार के द्वारा

1—आवश्यक आवश्यकता की पूर्ति द्वारा

आवश्यक आवश्यकता से अर्थ है कि मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति जैसे रोटी कपड़ा और मकान अर्थात् बालक की मूलभूत आवश्यकताओं के साथ-साथ भौतिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति, लेकिन यहां पर भौतिक आवश्यकताओं से अभिप्राय है कि वही भौतिक आवश्यकताएं जिनकी आवश्यकता उस बालक के मानसिक विकास हेतु आवश्यक है। ऐसा ना हो कि यह मूलभूत आवश्यकताओं या भौतिक आवश्यकताओं की कमी से बच्चों की मानसिक अवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़े।

2—सरस पारिवारिक वातावरण

सरस पारिवारिक वातावरण से अभिप्राय है कि उस परिवार में उस बच्चे के मानसिक विकास हेतु सद्भाव पूर्ण वातावरण का होना। उस परिवार में सभी लोग एक दूसरे के विचार और भावनाओं का सम्मान करने वाले हों। उस परिवार में आंतरिक कलह, आपसी द्वंद्व और एक दूसरे से विद्वेष की भावना ना हो। ऐसी विचारधारा वाला परिवार सरस पारिवारिक वातावरण वाला परिवार कहलाता है।

3—एक दूसरे के प्रति सद्भवहार

एक दूसरे के प्रति सद्भवहार से अभिप्राय यह है कि उस परिवार में एक ऐसा आचरण होता हो जो अनुकरणशील हो। जो समाज द्वारा भी समर्थित हो सके जिसे सीखने के पश्चात वह बालक मानसिक रूप से दृढ़ और समायोजन शील बन सके।

4— परिवार में अनुशासनिक व्यवहार के द्वारा

बच्चा अनुशासन सर्वप्रथम अपने परिवार में ही सीखता है। यह पारिवारिक अनुशासन ही बालक का जीवन संवार देता है। अनुशासित व्यवहार ही उसके मस्तिष्क को एक सही दिशा और दिशा प्रदान करता है, जिससे बालक सही दिशा में अपना सर्वांगीण विकास करने में सफल होता है।

ब— समाज

बच्चा बड़ा होने के क्रम में परिवार से जब बाहर निकलता है तो वह पास-पड़ोस, समुदाय व समाज के संपर्क में आता है। तो पास-पड़ोस, समुदाय व समाज का वातावरण भी बालक के

मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है। जैसा पास –पड़ोस, समुदाय व समाज का वातावरण होगा वैसा ही बच्चे का मानसिक विकास भी होगा। अतः हम कह सकते हैं कि समाज का भी बच्चों के मानसिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। यह निम्न प्रकार से सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है—

- 1— समरसतापूर्ण वातावरण
- 2— सामाजिक अनुशासन
- 3— बच्चों के विकास के प्रति सहयोगात्मक रुख

1— समरसता पूर्ण वातावरण

समरसतापूर्ण वातावरण से अभिप्राय यह है कि समाज में सभी लोग एक दूसरे को आगे बढ़ाने में मदद करते हों। हर कोई व्यक्ति अपने विकास के साथ-साथ अपने पास – पड़ोस के लोगों के सर्वांगीण विकास हेतु सद्भाव पूर्ण रूप से कार्यरत हो। कोई किसी के विकास में अवरोध उत्पन्न ना करता हो।

2— सामाजिक अनुशासन

सामाजिक अनुशासन से अभिप्राय है कि समाज के जो नियम और कानून बनाए गए हैं, उनका पालन करना। एक स्वस्थ मानसिकता वाला बालक समाज के नियम कानून का पालन भी करता है, और उसे सम्मान भी देता है। वह सामाजिक सीमा और दायरे में रहना पसंद भी करता है, ऐसा व्यक्तित्व वाला बच्चा स्वस्थ मानसिकता का कहलाता है।

3— बच्चों के विकास में सहयोगात्मक रुख

बच्चों के विकास में सहयोगात्मक रुख से अभिप्राय है कि समाज बच्चों के विकास में क्या-क्या और किस प्रकार से अपना योगदान दे रहा है। समाज को यह चाहिए कि अपने पास— पड़ोस के बच्चे यदि गलत रास्ते पर जा रहे हैं, तो उनको रोकें-टोकें और उन्हें सही दिशा प्रदान करें। क्योंकि यदि बच्चे का सही दिशा में मानसिक विकास ना हुआ तो इसका परिणाम समाज के ऊपर भी पड़ेगा, अतः समाज की भी जिम्मेदारी है कि बच्चों के विकास में सहयोगात्मक रुख रखें।

ब— विद्यालय

बच्चा जब और बड़ा होता है तो समाज व समुदाय के द्वारा उचित निर्देशन, परामर्श व सर्वांगीण विकास हेतु जिस संस्था का निर्माण किया गया है, वह विद्यालय कहलाता है। बच्चों के सर्वांगीण विकास के साथ-साथ मानसिक विकास में विद्यालय का सबसे बड़ा योगदान होता है। इसी विद्यालय में बच्चा अपने स्व का विकास, समंजनशीलता और अपने पूर्ण व्यक्तित्व को प्राप्त करता है। विद्यालय निम्न प्रकार से बच्चों की मानसिक विकास में सहयोग करता है—

- 1— शारीरिक विकास
- 2— मानसिक विकास
- 3— भाषाई विकास
- 4— सांवेगिक विकास
- 5— नैतिक व चारित्रिक विकास
- 6— अनुशासन
- 7— उचित निर्देशन व परामर्श

विद्यालय बालक के मानसिक, शारीरिक, भाषाई, सांवेगिक, नैतिक, और चारित्रिक, विकास के साथ-साथ उसे अनुशासन में रहना भी सिखाता है जिससे वह जीवन में समस्याओं से लड़कर अपनी मानसिक स्थिति को मजबूत करता है। इसके साथ-साथ विद्यालय बालक के मानसिक विकास हेतु उसे आवश्यक उचित निर्देशन व परामर्श भी उपलब्ध कराता है। जिससे बालक भविष्य में लाभान्वित हो सकता है।

मानसिक आरोग्यता

आरोग्यता का शाब्दिक अर्थ है रोग से मुक्त अर्थात् शरीर की वह अवस्था जिसमें शरीर रोग से मुक्त हो। इस प्रकार मानसिक आरोग्यता का अर्थ यह हुआ कि रोग मुक्त मानसिक अवस्था। रोग मुक्त मानसिक अवस्था से अर्थ है कि मानव की वह मानसिक अवस्था जिसमें वह भय, चिंता, कुंठा, द्वेष और कुसमायोजन आदि अवस्थाओं से मुक्त हो। अर्थात् मानसिक आरोग्यता एक ऐसी अवस्था है जिसमें व्यक्ति शारीरिक के साथ-साथ मानसिक रूप से भी वातावरण के साथ कुशल समायोजन करने में समर्थ हो।

परिभाषा—

हैडफील्ड— “ मानसिक आरोग्यता का संबंध मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने तथा मानसिक असंतुलन को रोकने से है”।

ड्रेवर— “ मानसिक आरोग्यता का अर्थ मानसिक स्वास्थ्य के नियमों की खोज करना तथा उसे बनाए रखने के उपाय करने से है” ।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मानसिक आरोग्यता मस्तिष्क को स्वस्थ व समंजनशील बनाने और मानसिक असंतुलन की अवस्था से दूर रखने से है ।

मानसिक आरोग्यता का महत्व

- 1— मस्तिष्क को स्वस्थ रखना
- 2— मानसिक विकारों से दूरी
- 3—मानसिक समस्याओं का निदान

मानसिक आरोग्यता की आवश्यकता

1— स्वस्थ मस्तिष्क रखना

एक अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लिए हमें मस्तिष्क को स्वस्थ रखना होगा। क्योंकि जब मस्तिष्क स्वस्थ रहेगा, तभी व्यक्ति सही निर्णय ले सकेगा, सही कार्य संपादित कर सकेगा। अतः व्यक्ति को समंजनशील बनाने हेतु, उसके मस्तिष्क की रक्षा एक अनिवार्य कार्य है।

2— मानसिक विकारों से दूरी

मानसिक विकारों से दूरी से अभिप्राय यह है कि ऐसी समस्त समस्याएं जिससे बालक का मस्तिष्क दूषित हो उससे उसे दूर रखा जाए। क्योंकि जब समस्याएं मस्तिष्क को कोई प्रभावित ही नहीं कर पाएंगी, तो वह एक स्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति बनेगा जो मानसिक आरोग्यता कहलाता है।

3— मानसिक समस्याओं का निदान

यदि किन्हीं कारणवश मानसिक अस्वस्थता आ ही जाए तो उसका निदान करना आवश्यक है। इस निदान के अंतर्गत हम औषधियों योग आदि का सहारा ले सकते हैं। जिससे मानसिक आरोग्यता की अवस्था पुनः प्राप्त की जा सकती है।

भारतीय वाङ्मय में मानसिक स्वास्थ्य

श्रीमद्भागवत गीता के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य –

अध्याय 2 श्लोक 55 –

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ 55 ॥

अर्थ –

जिस काल में पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को भली-भांति त्याग देता है और आत्मा को आत्मा में ही संतुष्ट रखता है, उस काल में वह स्थित प्रज्ञ कहा जाता है।

अन्वय –

स्थित प्रज्ञ या अच्छा मानसिक स्वास्थ्य वाला व्यक्ति वह होता है जिसने मन को दूषित करने वाली कामनाओं का त्याग कर दिया है, और अपने आप को जान लिया है अर्थात् खुद को ;ज्ञदवू जेलेमसद्धि जान लिया है।

यहां पर कामनाओं से अभिप्राय तन्मात्राओं (गंध,रस, रूप , स्पर्श, शब्द) पर नियंत्रण स्थापित करने से है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में इन तन्मात्राओं पर निरोध ब्रह्मचर्य आश्रम से ही सिखाया जाता था। जिससे छात्र एक स्वस्थ मस्तिष्क वाला बनता था। उसमें विवेक क्षमता विकसित की जाती थी जिससे वह अपने लिए श्रेयस व प्रेयस का चुनाव करने में समर्थ हो सके। और यह तभी संभव होता था, जब व्यक्ति अपने इंद्रियों पर नियंत्रण स्थापित करने में समर्थ हो सके, ना कि इंद्रियों के वशीभूत।

अतः हम कह सकते हैं कि स्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति की इंद्रियां उसके वश में होती हैं और वह अपनी समस्त कामनाओं एवं तन्मात्राओं पर नियंत्रण स्थापित कर लेता है।

श्रीमद्भागवत गीता के अनुसार अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लक्षण—

1— अध्याय 2 श्लोक 56 –

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ 56 ॥

क – दुःख में चित्त की आकुलता या घबराहट का ना होना।

ख – सुख की प्राप्ति में भी उसकी इच्छा शांत हो और कोई भाव का उत्पन्न ना होना।

- ग – राग (अनुकूल भाव से मन का लगाव या इच्छा) रहित हो।
घ – द्वेष (किसी के प्रति प्रतिकूल भाव का जन्म लेना) रहित हो।
ङ – भय(अनिष्ट की आशंका) रहित हो।
च – क्रोध (अप्रसन्नता के तौर पर विरोध) रहित हो।

2- अध्याय 2 श्लोक 57 –

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्त्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 57 ॥

शुभ और अशुभ अर्थात अच्छे और बुरे दोनों परिस्थितियों में समान व्यवहार वाला हो।

3 – अध्याय 2 श्लोक 58-

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 58 ॥

जिस प्रकार कछुआ वाह्य वातावरण से अपने आप को अप्रभावित रखते हुए अपने आप पर नियंत्रण रखता है, उसी प्रकार स्वस्थ मानसिकता वाला व्यक्ति भी अपने इंद्रियों पर तन्मात्राओं का प्रभाव ना पड़ने देते हुए उस पर अपना नियंत्रण स्थापित रखता है। अर्थात वाह्य वातावरण का उसके मन और मस्तिष्क पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

अस्वस्थ मानसिकता के लक्षण –

1- अध्याय 2 श्लोक 62 –

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ 62 ॥

क- विषय (गंध, रस, रूप, स्पर्श , शब्द) आदि का चिंतन करने वाला या इसी के वशीभूत रहने वाला।

ख –विषय में आसक्ती से कामना (इच्छाओं की पूर्ति की चाह) उत्पन्न होती है । व्यक्ति इन्हीं कामनाओं की पूर्ति हेतु सदैव परेशान रहता है।

ग – कामना की पूर्ति न होने पर क्रोध (अप्रसन्नता होने पर तीव्र विरोध की भावना) पैदा होता है, और वह व्यक्ति क्रोधी हो जाता है।

घ – क्रोध से विवेक शक्ति (क्या करने लायक है क्या नहीं का ज्ञान) नष्ट हो जाती है। अर्थात वह विवेकहीन हो जाता है।

2- अध्याय 2 श्लोक 63

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ 63 ॥

क- विवेक शक्ति के नष्ट होने से स्मृति में भ्रम पैदा होता है। अर्थात व सही कार्य कर रहा है या गलत, खुद में उसमें निर्णय शक्ति का अभाव पाया जाता है।

ख – स्मृति में भ्रम से बुद्धि (ज्ञान) का नाश हो जाता है। अर्थात उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार वह व्यक्ति पुरुषार्थ के अयोग्य मानव बन जाता है। यह गीता के अनुसार अस्वस्थ मानसिकता के लक्षण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1- गुप्ता एस.पी. एवं गुप्ता अलका, उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद
- 2- पाठक पी.डी., शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशंस आगरा-2
- 3- अग्रवाल संध्या, शिक्षा मनोविज्ञान, विजय प्रकाशन मंदिर वाराणसी
- 4- भार्गव विवेक, शैक्षिक मनोविज्ञान, राखी प्रकाशन आगरा
- 5- शर्मा अंजली एवं शर्मा संध्या, शिक्षा मनोविज्ञान, अनु प्रकाशन जयपुर
- 6- सिंह अरुण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास पटना
- 7- सिंह अरुण कुमार, उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास पटना
- 8 – श्रीमद्भागवत गीता –गीता प्रेस गोरखपुर



Measurement of Mental Health and Hygiene

Noushia Tabassum

Assistant Professor

Mundeshwari College For Teacher Education

Patna

INTRODUCTION:

Mental health is a person's emotional, psychological, and social well-being. It determines how people think and feel and how they make choices and handle things. Mental health is critical for a person's overall health, and problems in this aspect can adversely affect every aspect of a person's life. There are two dimensions to mental health, positive and negative; the latter dimension is the absence or lack of mental illness. Positive mental health is a valuable and objective ideal of a person's psychical state. Individuals with positive mental health generally present with positive affect and character traits, which may be viewed as resources. They often have high self-esteem, high levels of mastery, sense of coherence and self-efficacy. It can be conceptualized as a person's ability to cope with adversity, and avoid breakdown or diverse health problems when confronted with adverse experiences. Negative mental health encompasses specific symptoms and difficulties with mental disorders. As presently defined and used in diagnostic classifications, mental disorders are designated by the existence of specific collections of symptoms. However, manifestations of mental disorder and psychological issues that do not meet the criteria for clinical disorders are common. These subclinical conditions, as well as general psychological discomfort, are frequently caused by lasting or transient hardships. They may have a systemic impact and often result in consultations with primary care or other qualified practitioners.

POSITIVE MENTAL HEALTH:

Positive mental health refers to a state of well-being in which an individual is able to cope with the normal stressors of life, work productively and effectively, maintain positive relationships, and contribute to their community. It is more than the absence of mental illness; rather, it encompasses a state of emotional, psychological, and social well-being.

Positive mental health encompasses a wide range of factors that contribute to well-being and resilience. By cultivating emotional, psychological, social, physical, spiritual, occupational, and environmental well-being, individuals can enhance their overall mental health and lead fulfilling lives. There are various types of positive mental health, each of which contributes to overall well-being and resilience. Some common types of positive mental health include:

- Emotional Well-being: Emotional well-being involves the ability to recognize and manage one's own emotions, cope with stress, and maintain a positive outlook on life. Individuals with strong emotional well-being can regulate their emotions effectively, express themselves in healthy ways, and form positive relationships with others.
- Psychological Well-being: Psychological well-being is characterized by a sense of purpose, self-acceptance, autonomy, and personal growth. Individuals with strong psychological well-being have a high level of self-awareness, self-esteem, and resilience, allowing them to navigate life's challenges with confidence.
- Social Well-being: Social well-being refers to the quality of an individual's relationships and social connections. It involves having strong social support

networks, effective communication skills, and a sense of belonging and connection to others. Socially well individuals are able to build positive relationships, collaborate with others, and contribute to their communities.

- **Physical Well-being:** Physical well-being is an essential aspect of positive mental health, as physical health and mental health are interconnected. Maintaining a healthy lifestyle through regular exercise, nutritious diet, adequate sleep, and stress management can support overall well-being and mental resilience.
- **Spiritual Well-being:** Spiritual well-being involves a sense of meaning, purpose, and connection to something greater than oneself. This may include beliefs, values, and practices that provide a sense of peace, comfort, and fulfilment. Individuals with strong spiritual well-being often report higher levels of life satisfaction and resilience.
- **Occupational Well-being:** Occupational well-being refers to satisfaction and fulfilment in one's work or chosen activities. Feeling engaged, motivated, and challenged in one's career or daily activities contributes to overall well-being and mental health. Individuals with strong occupational well-being often experience a sense of accomplishment and purpose in their work.
- **Environmental Well-being:** Environmental well-being involves the quality of one's surroundings, including physical, social, and cultural environments. Having access to safe, supportive, and nurturing environments can enhance overall well-being and mental health. Connecting with nature, promoting environmental sustainability, and advocating for social justice can also contribute to environmental well-being.

Negative Mental Health:

It's important to note that mental health disorders can vary in severity and can impact individuals differently. Seeking professional help from a mental health provider is crucial for accurate diagnosis, treatment, and management of mental health issues. Additionally, adopting healthy coping mechanisms, maintaining social connections, and practicing self-care can help promote mental well-being and resilience.

There are various types of mental health disorders, each with its own symptoms, causes, and treatment approaches. Some common types of mental health disorders include:

- ✓ **Anxiety Disorders:** Anxiety disorders are characterized by excessive worry, fear, or nervousness that can interfere with daily activities. Examples of anxiety disorders include generalized anxiety disorder, panic disorder, phobias, and obsessive-compulsive disorder.
- ✓ **Mood Disorders:** Mood disorders involve disturbances in a person's emotional state, leading to persistent feelings of sadness, hopelessness, or mood swings. Common mood disorders include major depressive disorder, bipolar disorder, and seasonal affective disorder.
- ✓ **Schizophrenia:** Schizophrenia is a severe mental health disorder that affects a person's thinking, perception, and behaviour. Symptoms may include hallucinations, delusions, disorganized thinking, and social withdrawal.
- ✓ **Personality Disorders:** Personality disorders are characterized by distorted patterns of thinking, behaviour, and emotions that affect interpersonal relationships and daily functioning. Examples of personality disorders include borderline personality disorder, narcissistic personality disorder, and antisocial personality disorder.
- ✓ **Eating Disorders:** Eating disorders are mental health conditions that involve unhealthy behaviours related to food and body image. Common eating disorders contain anorexia nervosa, bulimia nervosa, and binge eating disorder.

- ✓ Substance Use Disorders: Substance use disorders involve addiction or dependence on drugs or alcohol, leading to significant impairment in daily functioning and relationships.
- ✓ Post-Traumatic Stress Disorder (PTSD): PTSD is a mental health condition that can develop after experiencing a traumatic event. Symptoms may include flashbacks, nightmares and severe anxiety.
- ✓ Attention-Deficit/Hyperactivity Disorder (ADHD): ADHD is a neurodevelopment disorder characterized by difficulty focusing, impulsivity, and hyperactivity. It often begins in childhood and can persist into adulthood.

Factors Affecting mental health:

Mental health is influenced by a complex array of factors, there are some factors that affect individual's mental health.

- ❖ Genetics: Family history and inherited traits.
- ❖ Early childhood experience: Experiencing or witnessing stressful or joyful events.
- ❖ Family environment: Living situation, social surroundings, and access to resources.
- ❖ Age and Developmental Stage: Life stages, like adolescence or old age.
- ❖ Nutrition and Exercise: Healthy eating habits and regular physical activity
- ❖ Social Connections: Strong relationships with family and friends.
- ❖ Social circumstance: Economic stability, education, and employment opportunities.
- ❖ Physical Health: Chronic illness, pain, or sleep disturbances.
- ❖ Education: level of education, school/college environment, competition pressure.
- ❖ Employment and work condition: Job environment, job pressure, job satisfaction and professional relationship issues.
- ❖ Cultural and Societal Expectations: Societal pressure, stigma, and cultural norms.
- ❖ Digital Technology: Social media, screen time, and cyber bullying.
- ❖ Brain Chemistry: Imbalances in neurotransmitters like serotonin and dopamine.
- ❖ Personality Traits: Coping mechanisms, resilience, and personality characteristics.
- ❖ Access to Mental Health Services: Availability and affordability of professional help.

These factors interact and influence one another, making mental health a multifaceted and dynamic aspect of our overall well-being.

Characteristics of mentally healthy individual:

Mentally healthy individual have some specific characteristics. Some characteristics of a mentally healthy individual are mentioned below:

- They wake up every day and feel grateful for something.
- They have something that they look forward to doing or experiencing.
- They let go of anger, and they do not spend time holding grudges against others who have hurt them.
- They enjoy the simple things in life.
- They keep trying when the going gets tough.
- They help others around them.
- They take care of them self.
- They have good boundaries in their relationships.
- They are not envious of what others have.
- They can be happy for others, even when they own life is challenging.
- Mentally healthy individual have strong personality.

- Mentally healthy individual are emotionally stable.
- Mentally healthy individual have no any major adjustment problems.
- They are physically healthy people.
- They are free from mentally illness.
- They have strong motivational power.

How to measure mental Health:

Measuring mental health is a complex process that involves assessing various aspects of an individual's emotional, psychological, and social well-being.

Mental health measurement tools can provide a multi-dimensional approach to help providers assess, diagnose and monitor patients by establishing a baseline, measuring change through treatment and intervention, and measuring outcomes longitudinally across time. This level of data will be critical for healthcare professionals to meet new requirements that fall under measurement-based care guidelines.

There are several steps involved in the measurement of mental health, which may include the following:

- I. **Screening and Assessment:** The first step in measuring mental health is to screen individuals for potential mental health issues. This may involve using standardized screening tools or questionnaires to identify symptoms of common mental health disorders. A comprehensive assessment may also be conducted by a mental health professional to gather information about the individual's mental health history, symptoms, functioning, and risk factors.
- II. **Diagnosis:** Based on the screening and assessment results, a mental health provider may make a formal diagnosis of a specific mental health disorder, if applicable. This process involves considering the individual's symptoms, duration and severity of the symptoms, impact on daily functioning, and any contributing factors.
- III. **Monitoring Progress:** Once a diagnosis is made, it is important to monitor the individual's progress over time. This may involve tracking changes in symptoms, functioning, and overall well-being through regular check-ins with a mental health provider. Monitoring progress helps ensure that the individual is receiving appropriate treatment and support.
- IV. **Outcome Measurement:** Outcome measurement involves assessing the effectiveness of treatment interventions and their impact on the individual's mental health. This may include tracking changes in symptoms, quality of life, functioning, and other relevant outcomes. Outcome measurement helps inform treatment planning and adjustment as needed.
- V. **Quality of Life Assessment:** Mental health measurement should also consider the individual's quality of life and well-being. This may involve assessing factors such as social relationships, work or school functioning, daily activities, and overall life satisfaction. Quality of life assessments provide valuable insights into the individual's overall mental health status and functioning.
- VI. **Feedback and Communication:** Effective communication between the individual and mental health provider is essential for accurate measurement of mental health. Providing feedback on assessment results, treatment progress, and goal setting helps engage the individual in their mental health care and promotes collaboration in the treatment process.
- VII. **Holistic Approach:** Mental health measurement should take a holistic approach, considering the individual's physical health, social support, lifestyle factors, and environmental influences. Taking a comprehensive view of mental health helps

address the complex interactions between various aspects of well-being and promote overall mental wellness.

Previous study:

The World Health Organization (WHO) conceptualizes mental health as a “state of well-being in which the individual realizes his or her own abilities, can cope with the normal stresses of life, can work productively and fruitfully, and is able to make a contribution to his or her community”. Mental disorders and psychoactive substance-related disorders are highly prevalent throughout the world and are major contributors to morbidity, disability, and premature mortality. However, the resources allocated by countries to tackle this burden are insufficient, are inequitably distributed, and, at times, inefficiently used. Together, this has led to a treatment gap that, in many countries, is more than 70%. The stigma, social exclusion, and discrimination that occur around people with mental disorders compound the situation. Mental health disorders increase the risk for other diseases and contribute to unintentional and intentional injury. In the Region, depression continues to be the leading mental health disorder, and is twice as frequent in women as in men. 10% to 15% of women in industrialized countries and 20% to 40% of women in developing countries suffer from depression during pregnancy or the postpartum period. Low-income countries spend around 0.5% of their health budget in mental health services, and high-income countries, 5.1%.

In 2013, the World Health Assembly approved the Comprehensive mental health action plan 2013-2020. The development and establishment of policies and programs for mental health promotion and prevention are a necessary part of regional efforts to improve mental health in the overall population. The situation in mental health is different and significantly more complex.

Many studies have shown that mortality is higher among those suffering from mental ill-health, whether psychological distress or diagnosable disorders, than in the general population. Adverse life events, e.g. loss of spouse, have been linked to increased mortality. Over 90% of those who commit suicide suffer from a mental disorder. The negative impact of mental ill-health on survival has even been noted in community samples. Psychiatric disorders have been associated with increased levels of mortality from natural and violent causes. The mortality ratio of discharged patients has been found to be increased compared with that in the general population.

Tools used for Measuring mental Health:

Mental health status can relate to a wide range of patient experiences, feelings, actions and behaviours areas that aren't always easily observable. Gaining this information through lengthy interviewing can be helpful, but it's not practical with large numbers of patients to see, nor is the interviewing process consistent across care settings and over time.

For this reason, scales have long been used to provide a measurable and comparable means to capture health information. Mental health professionals have access to several scales or tools they use to diagnose, assess and monitor patient progress. There are some misconceptions about use of mental health scales. As an example, many generally assume that measurement scales are used only with adults. Yet, there are many scales specifically designed for use with children, a mental health scale questionnaire for students (ages 6-17) used to assess common disorders in pediatric mental health.

Here are some of the most common scale for measuring mental health and their area of application:

- Brown Assessment of Beliefs Scale (BABS) – Body dysmorphic disorder
- Mood Disorder Questionnaire (MDQ) – Bipolar
- Patient Health Questionnaire 9 (PHQ9) – Depression

- Yale Brown Obsessive Compulsive Scale (YBOCS) – Obsessive compulsive disorder
- Sheehan-Suicidality Tracking Scale (S-STTS) – Suicide
- Cognitive Therapy Rating Scale (CTRS) – Cognitive therapy competence
- Drinking Motives Questionnaire – Addiction
- Generalized Anxiety Disorder 7-Item (GAD7) – Anxiety
- BDD Modification of the YBOCS (BDD-YBOCS) – Body dysmorphic disorder

There are several tools and assessments available that can help measure and track mental health. Some commonly used tools include:

1. **Mental Health Screening Tools:** These are self-assessment questionnaires that can help individuals identify symptoms of mental health conditions such as depression, anxiety, PTSD, and others. Examples include the PHQ-9 for depression and GAD-7 for generalized anxiety disorder.
2. **Mental Health Apps:** There are numerous mental health apps available that offer tools for self-assessment, mood tracking, journaling, and mindfulness practices. Examples include Headspace, Calm, and Mood path.
3. **Psychological Assessments:** These are conducted by mental health professionals to evaluate mental health symptoms, personality traits, and cognitive functioning. Examples include the Beck Depression Inventory (BDI) and the Minnesota Multiphasic Personality Inventory (MMPI).
4. **Online Mental Health Screening tools:** Websites such as Mental Health America and Screening for Mental Health offer free, anonymous online screenings for various mental health conditions.
5. **Wellness Trackers:** Apps and devices that track lifestyle factors such as sleep, physical activity, and nutrition can also provide insights into mental health. Examples include Fitbit and MyFitnessPal.

It's important to note that these tools are not a substitute for professional diagnosis and treatment. If you have concerns about your mental health, it's best to seek evaluation and support from a mental health professional.

Causes of Mental Illness:



The most common causes of mental illness are:

- **Mental exhaustion:** Having to make too many decisions within a short time can be exhausting, leading to mental illness.
- **Lack of sleep:** Having little to no sleep makes us prone to mental illness
- **Poor nutrition:** Poor nutrition causes mental illness. For example, vitamin B12 deficiency can cause depression and memory loss leading to mental illness.
- **Procrastination:** Procrastination can leads to anxiety, which in turn causes mental illness.
- **Medication:** Mental illness may occur as a side effect of specific medication.
- **Cluttered work environment:** Cluttered or chaotic work environments may make it difficult to get into a productive mind frame.
- **Impostor syndrome:** The feeling that we're inadequate or incapable at work is a common cause of mental illness
- **Perfectionism:** Perfectionism can lead to procrastination, self-doubt, and mental illness
- **Pessimism:** A negative outlook causes mental illness. If we believe we have no chance of success, we may become unmotivated.

How to overcome from mental depression:

If we find our self facing a mental block at work, there are many ways to improve our focus and output. Overcoming mental depression can be a long and challenging process, but here are some tips that may help:

- **Seek professional help:** Consider seeing a therapist or counsellor who can provide us with the necessary support and guidance to overcome depression.
- **Stay connected:** Reach out to friends and family for support. Social connections can help us feel less isolated and provide a sense of belonging.
- **Practice self-care:** Engage in activities that bring us joy and relaxation, such as exercise, meditation, yoga, or hobbies.
- **Set realistic goals:** Break tasks into smaller, manageable steps and celebrate our accomplishments.
- **Take a break:** If we tried unsuccessfully to work through a mental block, the next best thing we can do is take a break. We have to try some unrelated activities like solving a crossword, washing dishes, or talking to a friend. Breaks help to reset our mind and connect the dots.

- Challenge negative thoughts: Identify and challenge negative thought patterns that contribute to our depression. Replace them with more positive and realistic thoughts.
- Improving our skills: If we feel unprepared or inadequate for a project/work, we should take time to research, learn, and practice.
- Maintain a healthy lifestyle: Eat a balanced diet, get enough sleep, and avoid excessive alcohol or drug use, as these can worsen depressive symptoms.
- Stay active: Regular physical activity has been shown to improve mood and reduce symptoms of depression.
- Engage in activities that promote mindfulness and relaxation, such as deep breathing exercises or progressive muscle relaxation.
- Resting is one of the best ways to maintain mental health and overcome blocks. Getting a regular 7-9 hours of sleep every night keeps your mind sharp and ready.

How to maintain mental hygiene:

Maintaining mental hygiene, also known as mental health, is essential for overall well-being and quality of life. Here are some tips to help you maintain good mental hygiene:

- Practice self-care: Make time for activities that bring you joy and relaxation, such as exercise, spending time in nature, reading, or practicing mindfulness and meditation.
- Stay connected: Nurture relationships with friends and family members, and make an effort to stay connected and engage with others for social support and companionship.
- Seek help when needed: Don't hesitate to seek help from a mental health professional if you are struggling with your mental health. Therapy and counseling can provide valuable support and strategies for coping with mental health challenges.
- Manage stress: Find healthy ways to cope with stress, such as practicing stress-relief techniques like deep breathing, journaling, or engaging in hobbies.
- Maintain a balanced lifestyle: Eat a healthy diet, get regular exercise, prioritize sleep, and avoid unhealthy habits like excessive alcohol consumption or substance abuse.
- Set boundaries: Learn to say no to things that overwhelm or drain you, and prioritize your own needs and well-being.
- Practice self-compassion: Be kind and gentle with yourself, especially during difficult times. Treat yourself with the same compassion and understanding that you would offer to a friend.
- Challenge negative thoughts: Practice cognitive behavioral techniques to challenge negative thought patterns and reframe them in a more positive and realistic way.
- Engage in activities that promote mental well-being: Engage in activities that promote mental well-being, such as volunteering, taking up a hobby, or engaging in creative pursuits.
- Stay mindful: Practice mindfulness and present-moment awareness to stay grounded and focused, and to reduce feelings of anxiety or overwhelm.

Conclusion:

Mental health is about how people think, feel, and behave. Mental health care professionals can help people manage conditions such as depression, anxiety, bipolar disorder, addiction, and other disorders that affect their thoughts, feelings, and behaviours. Mental health can affect a person's day-to-day life, relationships, and physical health. External factors in people's lives and relationships can also contribute to

their mental well-being. Mental health problems are common and cause unnecessary human suffering. The reasons for this are the ups and downs of life that develop in conjunction with irregularities in biological and social structures. Mental health problems, like all the other health-related problems, have some negative consequences for individuals as well as for society.

Measuring mental health involves a multidimensional approach that considers various factors contributing to an individual's emotional, psychological, and social well-being. We should remember that recovery from depression takes time and effort, but with patience and persistence, we can overcome it. If we are struggling, do not hesitate to seek professional help.

Reference:

1. *Mental Hygiene and Mental Health*. JaypeeDigital. (n.d.). <https://www.jaypeedigital.com/book/9789350902943/chapter/ch7>
2. DomicileEducationCentre. (2024, March 7). *Class-12: Chapter-6: Mental health and hygiene: Education: Notes*. Domicile Education Centre. <https://domicileeducationcentre.com/class-12-chapter-6-mental-health-and-hygiene-education-subject-notes/>
3. <https://www.quora.com/What-are-some-methods-for-measuring-psychological-health-in-individuals-and-societies-What-is-the-current-state-of-research-on-this-topic>
4. Korkeila, J. (n.d.). MEASURING ASPECTS OF MENTAL HEALTH.



सृजनात्मकता

डॉ. जगदीश कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर (बी.एड.विभाग)

श्री गांधी पी.जी.कॉलेज

मॉलटारी, आजमगढ़

सृजनात्मकता का अर्थ है - सृजन करने की योग्यता। सृजन का अभिप्राय है , उपलब्ध साधनों से नयी वस्तु या विचार को जन्म देना। यह एक ऐसा विचार है जिसके माध्यम से बालकों में निहित मौलिक संभावनाओं को विकसित किया जाता है। सृजनशीलता शब्द अंग्रेजी के Creativity शब्द से बना है जिसका अर्थ उत्पादन , रचनात्मक खोज आदि से लगाया जाता है। सृजनात्मकता के बारे में कुछ विद्वान इसे नई वस्तु गढ़ने की योग्यता मानते हैं तथा कुछ इसे एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया मानते हैं जिससे अभिनव और मूल्यवान वस्तुओं का सृजन होता है। सर्वप्रथम चैशल (Chassell, 1914) ने मौलिकता (Originality) को मापने का प्रयास किया। ग्राहम वैलास (1926) की पुस्तक “Art of Thought” में सृजनशीलता से संबंधित कुछ साहित्य प्राप्त होता है। स्पीयरमैन (Spearman,1933) ने अपनी पुस्तक “Creative Mind “ के माध्यम से मानव योग्यताओं का परिचय क्रमबद्ध रूप में संसार को कराया।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत सृजनात्मकता की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नवत हैं -

जेम्स ड्रेवर (James Draver) के शब्दों में , “ सृजनशीलता नवीन रचना या उत्पादों में होती है।”

“Creativity is essentially found in new construction or production.”

क्रो एवं क्रो (Crow and Crow) के अनुसार , “सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को अभिव्यक्त करने की एक मानसिक प्रक्रिया है”

“Creativity is a mental process to express the original outcomes“

ड्रेवहल (Drewhull) के शब्दों में - “ सृजनात्मकता वह मानसिक योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी नवीन रचना या विचारों को प्रस्तुत करता है।”

“Creativity is the human ability by which he presents any noble work or ideas”

कोल और ब्रूस (Cole and Bruce) के शब्दों में - “ सृजनात्मकता मौलिक उत्पाद के रूप में मानव मस्तिष्क को समझने , व्यक्त करने तथा सराहना करने की योग्यता व क्रिया है।”

“Creativity is an ability and activity of man's mind to grasp , express and appreciate in the form of an original product. “

उपर्युक्त परिभाषाओं के अवलोकन एवं विश्लेषण से स्पष्ट है कि सृजनात्मकता का संबंध प्रमुख रूप से मौलिकता या नवीनता से है। समस्या पर नए ढंग से सोचने तथा समाधान खोजने के प्रयास से सृजनात्मकता परिलक्षित होती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सृजनात्मकता वह योग्यता है जो व्यक्ति को किसी समस्या का विद्वतापूर्ण समाधान खोजने के लिए नवीन ढंग से सोचने तथा विचार करने में समर्थ बनाती है। प्रचलित ढंग से हटकर किसी नए ढंग से चिंतन करने तथा कार्य करने की योग्यता ही सृजनात्मकता है।

सृजनात्मकता की विशेषताएं

(Characteristics Of Creativity)

सृजनात्मकता की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं -

- (1) सृजनात्मकता एक ऐसी प्रक्रिया है जो लक्ष्य निर्देशित होती है। इसमें व्यक्ति को लक्ष्य निश्चित रूप से पता होता है और उसका प्रत्येक व्यवहार इसी लक्ष्य से संबंधित होता है। व्यक्ति इस ढंग का व्यवहार अपने व्यक्तिगत या सामूहिक लाभ के लिए भी करता है।

- (2) सृजनात्मकता में व्यक्ति कुछ नया एवं भिन्न चीजों की रचना करता है। इसलिए यह उस व्यक्ति के लिए अनूठा होता है। इस तरह की अनूठी रचना शाब्दिक, अशाब्दिक, मूर्त, अमूर्त कुछ भी हो सकती है।
- (3) सृजनात्मक चिंतन में व्यक्ति समस्या के भिन्न - भिन्न पहलुओं पर भिन्न - भिन्न दिशाओं में चिन्तन करता है। इस तरह भिन्न - भिन्न दिशाओं में चिंतन करने की क्षमता को अपसरण चिंतन कहा जाता है।
- (4) सृजनात्मक चिंतन की प्रक्रिया लक्ष्य निर्देशित होती है।
- (5) सृजनात्मकता सार्वभौमिक होती है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ मात्रा में सृजनात्मकता अवश्य पाई जाती है।
- (6) यद्यपि सृजनात्मक योग्यताएं प्रकृति प्रदत्त होती हैं, परंतु प्रशिक्षण या शिक्षण द्वारा इसे विकसित किया जा सकता है।

सृजनात्मकता के स्तर (Levels of Creativity)

टेलर (Taylor - 1959) के अनुसार , सृजनात्मकता के निम्नलिखित पांच स्तर होते हैं -

- (1) अभिव्यंजक सृजनात्मकता (Expressive Creativity) - इस प्रकार की सृजनात्मकता में कौशल (Skills), मौलिकता (Originality) तथा उत्पादों की गुणवत्ता इतनी महत्वपूर्ण नहीं होती , जितनी कि सृजन करने की प्रक्रिया।
- (2) उत्पादक सृजनात्मकता (Productive Creativity)- इसमें कलात्मक या वैज्ञानिक उत्पाद शामिल किए जाते हैं , जहां स्वतंत्र क्रियाओं को नियंत्रित या सीमित करने तथा परिष्कृत उत्पादों का निर्माण करने के लिए प्रविधियां विकसित करने की प्रवृत्ति होती है।
- (3) आविष्कारशील सृजनात्मकता (Innovative Creativity) - इसमें अन्वेषण या जांच - पड़ताल करने वाला व्यक्ति सामग्री, विधि, माध्यम और प्रविधियों का प्रयोग करने में अपनी निपुणता प्रदर्शित करता है।
- (4) नवाचारात्मक सृजनात्मकता (Modified Creativity)-नवाचारात्मक सृजनात्मकता के अंतर्गत, रूपांतरण द्वारा सुधार निहित होता है, अर्थात् व्यक्ति परिस्थिति विशेष के संदर्भ में अपनी सृजनशीलता में परिवर्तन का सकता है।
- (5) आविर्भावात्मक सृजनात्मकता (Originative Creativity)- पूर्णतः नए नियमों या मान्यताओं का विकास , जिनके आधार पर कला , लेखन , संगीत , विज्ञान आदि के नए संप्रदाय पोषित किए जाते हैं , आविर्भावात्मक सृजनात्मक के अंतर्गत आते हैं।

सृजनात्मकता के तत्व अथवा घटक (Elements or Components of Creativity)

मनोवैज्ञानिक टोरेंस (Torrance) ने सृजनात्मकता के चार तत्व बताए हैं -

1. प्रवाह (Fluency)
2. विविधता (Flexibility)
3. मौलिकता (Originality)
4. विस्तारण (Elaboration)

प्रवाह (Fluency) - प्रवाह से तात्पर्य किसी दी गई समस्या पर अधिकाधिक विचारों की प्रस्तुति से है। प्रवाह को पुनः चार भागों में बांटा जा सकता है -

- वैचारिक प्रवाह (Ideational Fluency)
- अभिव्यक्ति प्रवाह (Expressional Fluency)
- साहचर्य प्रवाह (Associative Fluency)
- शब्द प्रवाह (Word Fluency)

वैचारिक प्रवाह में विचारों के स्वतंत्र प्रस्फुटन को प्रोत्साहित किया जाता है, जैसे - किसी वस्तु को सुधारने के अनेकानेक तरीके बताना। अभिव्यक्ति प्रवाह में मानवीय अभिव्यक्तियों के स्वतंत्र प्रस्फुटन को प्रोत्साहित किया जाता है, जैसे - दिए गए चार शब्दों से वाक्य बनाना। साहचर्य प्रवाह से तात्पर्य दिए गए शब्दों या वस्तुओं में परस्पर साहचर्य स्थापित करने से है, जैसे- किसी दिए शब्द के अधिकाधिक पर्यायवाची या विलोम शब्द लिखना। शब्द प्रवाह का संबंध शब्दों से होता है, जैसे - दिए गए प्रत्ययों तथा उपसर्गों (Prefix and Suffix) से शब्द बनाना।

(2) विविधता (Flexibility) - इसका तात्पर्य समस्या के समाधान के लिए विभिन्न ढंगों एवं तरीकों को अपनाने से है। इससे यह पता चलता है कि व्यक्ति समस्या को कितने तरीकों से समाधान करना जानता है।

(3) मौलिकता (Originality)- मौलिकता से तात्पर्य समस्या के समाधान के लिए व्यक्ति द्वारा दी गई अनुक्रियाओं के अनोखापन (uniqueness) से होता है। जब व्यक्ति समस्या के समाधान के रूप में एक बिलकुल ही नया, अनूठा एवं लाजवाब अनुक्रिया करता है, तो ऐसा समझा जाता है कि उसमें मौलिकता का गुण है। वस्तुओं के नए उपयोग बताना, कहानी, कविता या लेख लिखना, परिवर्तनों के दूरगामी परिणाम बताना, नवीन प्रतीक खोजना आदि मौलिकता के कुछ उदाहरण हैं।

(4) विस्तारण (Elaboration) - विचारों को बढ़ा - चढ़ाकर विस्तार करने की क्षमता को विस्तारण कहा जाता है। इसमें व्यक्ति ऊंचे ऊंचे विचारों को एक साथ संगठित कर उसका अर्थपूर्ण ढंग से विस्तार करता है और पुनः नए विचारों को जन्म देता है। विस्तारण को दो भागों में बांटा जा सकता है - शाब्दिक विस्तारण (Semantic Elaboration) और आकृति विस्तारण (Figural Elaboration)। शाब्दिक विस्तारण में किसी दी गई संक्षिप्त घटना, क्रिया, कार्य, परिस्थिति आदि को विस्तृत करके प्रस्तुत करना जबकि आकृति विस्तारण में किसी दी हुई रेखा या अपूर्ण चित्र में कुछ जोड़कर उससे एक पूर्ण चित्र एवं सार्थक चित्र बनाना होता है।

सृजनात्मकता के सिद्धांत (Theory of Creativity)

सृजनात्मकता की प्रकृति एवं प्रक्रिया को समझाने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई अध्ययन किए हैं और उनके आधार पर कुछ तथ्य उदघाटित किए हैं जिन्हें सृजनात्मकता का सिद्धांत कहा जाता है जिनमें से कुछ मुख्य सिद्धांत निम्न हैं -

1. वंशानुक्रम का सिद्धांत (Theory of Heredity) - इस सिद्धांत के अनुसार सृजनात्मकता जन्मजात होती है, यह शक्ति बालक को अपने माता - पिता के गुणसूत्रों द्वारा प्राप्त होती है। इस सिद्धांत के मानने वालों का स्पष्टीकरण है कि इसी कारण भिन्न भिन्न व्यक्तियों में सृजनात्मक शक्ति भिन्न भिन्न प्रकार की और भिन्न भिन्न मात्रा में होती है।

2. पर्यावरणीय सिद्धांत (Environmental Theory) - इस सिद्धांत का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक एरीटी (Ariete) ने किया है। इस सिद्धांत के अनुसार सृजनात्मक केवल जन्मजात नहीं होती अपितु इसे अनुकूल पर्यावरण द्वारा मनुष्य में अन्य गुणों की तरह विकसित किया जा सकता है।

3. अभिव्यक्ति की सृजनशीलता (Expressive Creativity) - यह वह स्तर है जिस पर कोई व्यक्ति अपने विचार अबाध गति से प्रकट करता है इन विचारों का सम्बन्ध मौलिकता से हो, यह आवश्यक नहीं होता। टेलर के अनुसार यह सबसे निचले स्तर की सृजनशीलता होती है।

4. साहचर्यात्मक सिद्धांत (Associative Theory) - इस सिद्धांत का प्रतिपादन विल्सन (Wilson , 1954) ने किया। इस सिद्धांत के अनुसार सृजनात्मक चिंतन के अंतर्गत साहचर्यात्मक तत्वों के संयुक्तियों (Combination) के तत्व जितने ही अधिक परस्पर दूरस्थ होंगे, प्रक्रिया उतनी ही सृजनात्मक होगी। सृजनशीलता का सिद्धांत उद्दीपक - अनुक्रिया साहचर्य पर आधारित है।

5. अर्धगोलाकार सिद्धांत (Hemisphere Theory) - इस सिद्धांत का प्रतिपादन क्लार्क (Clark) और किटनी (Kitane) ने किया है। यह सिद्धांत जीव विज्ञान के इस तथ्य पर आधारित है कि सृजनशीलता मनुष्य के मस्तिष्क के दाहिने अर्धगोले से प्रस्फुरित होती है और तर्क शक्ति उसके मस्तिष्क के बाएं

अर्धगोले से प्रस्फुरित होती है। इस सिद्धांत के अनुसार सृजनात्मक कृत्य (Creative work) व्यक्ति के मस्तिष्क के दोनों ओर के अर्धगोलों के बीच अंतःक्रिया के फलस्वरूप होते हैं।

6. मनोविक्षेपणात्मक सिद्धांत (Psychoanalytical Theory) - इस सिद्धांत का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक फ्रायड (Freud) ने किया है। इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति में सृजनात्मकता उसके अचेतन मन में संचित अतृप्त इच्छाओं की अभिव्यक्ति के कारण आती है। इनका तर्क है कि व्यक्ति की अतृप्त इच्छाओं को शोधन करने से वे सृजनात्मक कृत्यों की ओर मुड़ जाती हैं।

सृजनात्मकता परीक्षण के प्रकार (Types of Creativity Test) - मैकनील (Mcneel) पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने 1967 में इस बात पर बल दिया कि सृजनात्मकता का मापन करने के लिए इसके घटकों का मापन करना चाहिए और प्रत्येक घटक का मापन करने के लिए पृथक परीक्षण तैयार करना चाहिए। सृजनात्मकता परीक्षण को निम्नलिखित तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

1. शाब्दिक सृजनात्मकता परीक्षण (Verbal Creativity Test) - ये वे सृजनात्मकता परीक्षण हैं जिसमें परीक्षण पदों को शब्दों अर्थात् भाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है और प्रयोज्यों को उनका उत्तर भाषा के माध्यम से ही देना होता है। गिलफोर्ड एवं मेरिफील्ड का कॉलेज छात्रों के लिए सृजनात्मकता परीक्षण और बाकर मेहंदी का सृजनात्मकता चिंतन परीक्षण शाब्दिक सृजनात्मकता परीक्षण हैं।

2. अशाब्दिक सृजनात्मकता परीक्षण (Non-Verbal Creativity Test)- ये वे सृजनात्मकता परीक्षण हैं जिनमें परीक्षण पदों को भाषा के माध्यम से प्रस्तुत न करके स्थूल वस्तुओं, चित्रों और पहेलियों आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है और प्रयोज्यों को इनका उत्तर क्रियाओं द्वारा देना होता है। इन्हें पेपर - पेंसिल परीक्षण (Paper-Pencil Test) और निष्पादन परीक्षण (Performance Test) भी कहते हैं। बाकर मेहंदी का सृजनात्मक चिंतन का अशाब्दिक परीक्षण इसी प्रकार का परीक्षण है।

3. शाब्दिक- अशाब्दिक सृजनात्मकता परीक्षण (Verbal-Nonverbal Creativity Test)- ये वे सृजनात्मकता परीक्षण हैं जिनमें सृजनात्मकता के कुछ घटकों का मापन शाब्दिक पदों द्वारा किया जाता है और कुछ घटकों का मापन अशाब्दिक पदों द्वारा किया जाता है। टोरेंस का सृजनात्मकता चिंतन परीक्षण और पासी का सृजनात्मकता परीक्षण इसी प्रकार के परीक्षण हैं।

बालकों की सृजनात्मकता बढ़ाने के उपाय

(Means of Fostering Creativity of Children)

बालकों में सृजनात्मकता तो जन्मजात होती है परंतु इसका विकास उचित मात्रा में तभी होता है जब उन्हें इसके विकास के लिए उचित पर्यावरण मिलता है। बालकों की सृजनात्मकता को बढ़ाने के लिए परिवार और विद्यालयों को निम्नलिखित कार्य करने चाहिए -

शिक्षक की भूमिका -

- व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर व्यक्तिगत शिक्षण प्रदान किया जाय।
- अध्यापक सृजनशील बालक को पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान करे।
- सृजनात्मक बालकों की बातों को ध्यान से सुने, उनकी सराहना कर उत्साहवर्धन करे।
- अध्यापक बालकों से खुले प्रश्न पूछे।
- समाज में उपलब्ध सृजनात्मक व्यक्तियों का प्रभावपूर्ण उपयोग किया जाय, इसके लिए सृजनात्मक व्यक्तियों, कलाकारों, वैज्ञानिकों को बुलाकर विद्यार्थियों को उनके साथ वार्तालाप का अवसर प्रदान किया जा सकता है।
- कलात्मक अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान किए जाएं।
- अध्यापक ऐसे बालकों को आत्म-मूल्यांकन के लिए प्रोत्साहित करे।
- अध्यापक कक्षा में मनोवैज्ञानिक स्वतंत्रतायुक्त वातावरण पैदा करे जिससे बालक स्वयं को सुरक्षित व स्वतंत्र महसूस करे।
- नवीनता, मौलिकता को प्रेरित कर ऐसे बच्चों के आत्म-विश्वास को उन्नति करने में सहायता प्रदान करे

विद्यालय की भूमिका -

- विद्यालय सृजनशील बच्चों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने के अवसर तथा क्षेत्र प्रदान करे।
- सृजनशील बालकों के कार्यों, उत्पादों, विचारों को समस्त छात्रों के समक्ष उपस्थित करने की समय - समय पर व्यवस्था करे।
- विद्यालय का आंतरिक व बाह्य वातावरण ऐसा हो जो सृजनशीलता के लिए उपयुक्त व प्रेरक हो।
- विद्यालय में स्व-अनुशासन को प्रेरित किया जाए।
- विद्यालय में विभिन्न सृजनात्मक गतिविधियों के प्रोत्साहन व विकास हेतु विभिन्न साधन, विषय व प्रयोगशालाएं उपलब्ध हों।
- विद्यालय योग्य, सृजनशील अध्यापकों का चयन करे।
- विद्यालय शिक्षकों को ऐसे आयोजनों में जाने की स्वतंत्रता व प्रोत्साहन दे जहां शिक्षण कला की आधुनिक प्रविधियों, साधनों के बारे में नवीनतम ज्ञान व प्रशिक्षण प्राप्त हो।
- विद्यालय द्वारा अध्यापकों के लिए समय - समय पर अभिनव कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

संदर्भ - ग्रंथ सूची -

- गुप्ता, एस.पी., ' उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान ' इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, 2011
- लाल, रमन बिहारी, ' शिक्षा मनोविज्ञान ' मेरठ, आर.लाल.बुक डिपो, 2010
- माथुर, एस.एस., ' अधिगमकर्ता का मनोविज्ञान, अधिगम एवं शिक्षण ' आगरा, अग्रवाल ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन, 2021
- रावत, सविता एवं योगेंद्र बाबू, ' अधिगमकर्ता का मनोविज्ञान, अधिगम एवं शिक्षण मेरठ, आर.लाल बुक डिपो, 2018
- सारस्वत, मालती, ' शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा ' इलाहाबाद, आलोक प्रकाशन 2003
- सिंह, अरुण कुमार, ' शिक्षा मनोविज्ञान ' पटना, भारती - भवन पब्लिशर्स, 2007



Creativity

Dr. Nikhat Afroz

Principal

Dr. Zakir Hussain college of Education,
Burhanpur, Madhya Pradesh

Introduction :

According to psychology, creativity is the ability to generate novel and valuable ideas, solutions, or insights that are both original and meaningful. It involves cognitive processes, such as divergent thinking, associative thinking, and problem-solving, as well as personality traits, environmental factors, and motivational aspects.

Creativity is not limited to artistic expression or innovative thinking in specific domains; it encompasses a broad range of activities and contexts. It can manifest in various ways, from artistic creation and scientific discovery to innovative problem-solving and everyday problem-solving.

Psychologists often emphasize that creativity involves more than just generating ideas; it also involves evaluating, refining, and implementing these ideas in a way that adds value or contributes to personal growth, societal progress, or organizational success.

Furthermore, creativity is considered a dynamic and multifaceted construct that evolves over time and can be nurtured and developed through education, training, and exposure to diverse ideas and experiences.

In summary, creativity in psychology is understood as a complex interplay of cognitive, emotional, motivational, and environmental factors that enable individuals to generate original and valuable ideas or solutions in various domains and contexts.

Creativity, often regarded as a hallmark of human intelligence, is a complex psychological phenomenon that has intrigued scholars, educators, and practitioners alike. This chapter delves into the intricate nature of creativity, exploring its definition, underlying psychological mechanisms, developmental aspects, and practical implications.

Definition of Creativity

Creativity is the ability to generate novel ideas, solutions, or insights that are both original and valuable. It encompasses various domains, from artistic expression to scientific innovation, and is not limited to any specific discipline.

Psychological Underpinnings of Creativity

Cognitive Processes:

Divergent Thinking: The ability to generate multiple solutions to a problem.

Insight: Sudden realization or “Eureka!” moment.

Associative Thinking: Making connections between seemingly unrelated ideas.

Personality Traits:

Openness to Experience: Willingness to explore new ideas and experiences.

Risk-taking: Willingness to take risks and embrace uncertainty.

Persistence: Commitment to pursuing ideas despite challenges.

Environmental Factors:

Stimulating Environment: Exposure to diverse ideas and experiences.

Supportive Social Environment: Encouragement from peers and mentors.

Resources: Access to tools, materials, and information.

The Creative Process

The creative process is often described as a series of stages:

Preparation: Gathering information, exploring the topic, and understanding the problem.

Incubation: Allowing ideas to develop subconsciously.

Illumination: The “Eureka!” moment of insight or realization.

Verification: Testing and refining the idea to ensure its viability.

Barriers to Creativity

Fear of Failure: Avoidance of taking risks due to fear of making mistakes.

Cognitive Rigidity: Fixed thinking patterns that limit creative thinking.

External Pressures: Societal norms and expectations that discourage creativity.

Lack of Confidence: Doubt in one’s abilities and ideas.

Developmental Aspects of Creativity

Creativity evolves over the lifespan, influenced by cognitive development, socialization, and life experiences. Children often demonstrate high levels of creativity due to their natural curiosity and openness to new experiences. However, creativity can be nurtured and developed through education, training, and exposure to diverse ideas and experiences.

Practical Implications and Applications

Education: Incorporating creative thinking skills in curriculum to foster innovation and problem-solving.

Workplace: Encouraging a culture of creativity and innovation to drive organizational success.

Therapy: Using creative arts therapies (e.g., art therapy, music therapy) to promote emotional expression and healing.

Personal Development: Enhancing creativity through mindfulness, meditation, and self-reflection.

In psychology, creativity is often categorized into different types or domains based on the nature of the creative activity and the context in which it occurs. Here are some common types of creativity in psychology:

Artistic Creativity:

Description: Involves the production of original works of art, such as paintings, sculptures, music, dance, and literature.

Example: A painter creating a unique piece of abstract art or a composer composing a new piece of music.

Scientific Creativity:

Description: Involves the development of new theories, hypotheses, or research methodologies in the field of science.

Example: A scientist proposing a novel theory to explain a phenomenon or developing a new experimental method to test hypotheses.

Innovative Creativity:

Description: Involves the development of new products, technologies, or solutions to practical problems in various domains, such as business, engineering, or medicine.

Example: An engineer designing a new renewable energy technology or a business strategist developing a new marketing strategy.

Everyday Creativity:

Description: Involves the application of creative thinking in everyday life situations to solve problems, make decisions, or engage in creative activities for personal enjoyment.

Example: Finding a creative solution to organize a cluttered space at home or coming up with a unique recipe using available ingredients.

Social Creativity:

Description: Involves the development of new social concepts, norms, or cultural expressions that shape social interactions, relationships, and societal values.

Example: A social reformer advocating for new policies to address social issues or an artist creating works that challenge societal norms and provoke thought.

Technological Creativity:

Description: Involves the development of new technologies, software, or digital innovations that enhance productivity, communication, or entertainment.

Example: A software developer creating a new mobile app or a digital artist designing innovative visual effects for a movie.

Problem-Solving Creativity:

Description: Involves the application of creative thinking to identify and solve complex problems, overcome obstacles, or address challenges in various contexts.

Example: Finding a creative solution to a challenging puzzle or developing a new strategy to improve organizational efficiency.

Collaborative Creativity:

Description: Involves the collaborative generation of ideas, solutions, or innovations through teamwork, collective brainstorming, and shared creativity.

Example: A group of designers collaborating to create a new product or a team of researchers working together to develop a new scientific breakthrough.

These types of creativity highlight the diverse ways in which creative thinking and innovation manifest across different domains and contexts in psychology. Each type of creativity involves unique cognitive processes, skills, and approaches to generating original and valuable ideas or solutions.

Here are some examples of creativity in psychology across various domains:

Divergent Thinking in Problem Solving:

Example: In a brainstorming session, participants are asked to come up with as many uses for a paperclip as possible. This exercise encourages divergent thinking, where individuals generate multiple creative solutions to a single problem.

Insightful Problem Solving:

Example: A person struggling to solve a complex puzzle suddenly has an “Aha!” moment where the solution becomes clear. This is an example of insight, a sudden realization or understanding that leads to problem resolution.

Creative Therapies:

Example: Art therapy involves using artistic expression as a therapeutic tool to help individuals explore emotions, reduce anxiety, and promote self-awareness. Through painting, drawing, or sculpting, clients can express themselves creatively, facilitating healing and personal growth.

Innovative Research Methods:

Example: A psychologist develops a new research method using virtual reality technology to study social interactions. This innovative approach allows for a more immersive and realistic research environment, providing valuable insights into human behavior.

Creative Interventions in Therapy:

Example: A therapist uses role-playing and improvisation techniques to help clients explore and address interpersonal issues. By adopting different roles and perspectives, clients can gain new insights into their relationships and communication patterns.

Creative Teaching Methods:

Example: A teacher incorporates storytelling, games, and interactive activities into the classroom to make learning engaging and fun. These creative teaching methods not only enhance student interest and participation but also facilitate deeper understanding and retention of the material.

Innovative Product Design:

Example: Industrial-organizational psychologists collaborate with designers to create ergonomic office furniture that promotes comfort and productivity. By integrating psychological principles with design aesthetics, they develop innovative products that meet both functional and psychological needs.

Creative Problem-Solving in Organizations:

Example: A team of organizational psychologists facilitates a creative problem-solving workshop for a company facing declining sales. Through collaborative brainstorming, idea generation, and solution testing, the team helps the company identify and implement innovative strategies to boost sales and enhance customer satisfaction.

Creativity in Personality Assessment:

Example: Psychologists develop a new personality assessment tool that incorporates creative tasks, such as drawing or storytelling, to measure individuals' creative potential and expression. This innovative approach provides a more comprehensive understanding of individuals' personality traits and creative abilities.

Creative Approaches to Mindfulness and Well-being:

Example: Psychologists incorporate creative mindfulness exercises, such as guided visualization, creative writing, or nature-based activities, into therapeutic interventions to promote mental well-being, stress reduction, and self-care.

These examples demonstrate the diverse ways in which creativity manifests in psychology, influencing research, therapy, education, and organizational practices. Creativity plays a vital role in enhancing our understanding of human behavior, promoting personal growth, and driving innovation in various fields.

Conclusion

Creativity is a vital aspect of human experience, influencing personal growth, innovation, and societal progress. Understanding the psychological underpinnings of creativity can help us appreciate its importance and potential, and guide efforts to nurture and enhance creative thinking in various aspects of life. By fostering creativity, we can unlock new possibilities, solve complex problems, and enrich our lives and communities. Creativity in psychology refers to the ability to generate novel and valuable ideas or solutions that are original and meaningful. It involves cognitive processes, personality traits, and environmental factors, and manifests across various domains, from artistic expression to scientific innovation. Creativity is dynamic, evolving over time, and can be nurtured and developed through education, training, and diverse experiences.

References :

- Amabile T.M. Social psychology of creativity: A consensual assessment technique. *Journal of Personality and Social Psychology*. 1982;43:997–1013. [Google Scholar]
- Arendasy M., Hornke L.F., Sommer M., Häusler J., Wagner-Menghin M., Gittler G. Schuhfried GmbH; Mödling: 2004. *Manual Intelligence-Structure-Battery (INSBAT)* [Google Scholar]
- Arendasy M., Sommer M., Feldhammer M. Schuhfried GmbH; Mödling: 2011. *Manual Big-Five Structure Inventory (BFSI)* [Google Scholar]
- Benedek M., Franz F., Heene M., Neubauer A.C. Differential effects of cognitive inhibition and intelligence on creativity. *Personality and Individual Differences*. 2012;53:480–485. [PMC free article] [PubMed] [Google Scholar]
- Benedek M., Könen T., Neubauer A.C. Associative abilities underlying creativity. *Psychology of Aesthetics, Creativity, and the Arts*. 2012;6:273–281. [Google Scholar]
- Carson S.H., Peterson J.B., Higgins D.M. Decreased latent inhibition is associated with increased creative achievement in high-functioning individuals. *Journal of*

Personality and Social Psychology. 2003;85:499–506. [PubMed] [Google Scholar]

- Carson S.H., Peterson J.B., Higgins D.M. Reliability, validity, and factor structure of the creative achievement questionnaire. *Creativity Research Journal*. 2005;17:37–50. [Google Scholar]
- Chamorro-Premuzic T., Furnham A. Lawrence Erlbaum Associates; Mahwah: 2005. *Personality and intellectual competence*. [Google Scholar]
- Davies R.B. Hypothesis testing when a nuisance parameter is present only under the alternative. *Biometrika*. 1987;74:33–43. [PubMed] [Google Scholar]
- Eysenck H.J. Cambridge University Press; New York: 1995. *Genius: The natural history of creativity*. [Google Scholar]
- Feist G.J. A meta-analysis of personality in scientific and artistic creativity. *Personality and Social Psychology Review*. 1998;2:290–309. [PubMed] [Google Scholar]
- Guilford J.P. McGraw-Hill; New York: 1959. *Personality*. [Google Scholar]
- Guilford J.P. McGraw-Hill; New York: 1967. *The nature of human intelligence*. [Google Scholar]



निर्देशन मनोविज्ञान

Manisha Singhal
Assistant Professor
Maa Sharda Vidyapeeth
Bulandshahar

निर्देशन की अवधारणा

मानव एक विवेकशील प्राणी है। अपनी बुद्धि के आधार पर ही वह न केवल अपने विकास के प्रति सचेत रहा है अपितु अपने जीवन के उद्देश्य को निर्धारित करने में सफल रहा है। निर्देशन एवं परामर्श किसी न किसी रूप में संभवत मानव के प्रादुर्भाव से ही चले आ रहे हैं। आदिकाल से ही मानव अपने बच्चों की मूलभूत आवश्यकताओं जैसे भोजन, वस्त्र, मकान, सुरक्षा आदि को सुनिश्चित करने के लिए निर्देश देता रहा है। उस समय मनुष्य के सामने यह बड़ी समस्या थी कि मनुष्य भोजन कैसे, कहां से प्राप्त करें अथवा सर्दी गर्मी, बरसात में किस प्रकार रहा जाए जैसे प्रश्नों पर अधिक जोर था। समय चक्र के साथ मानव जाति ने उन्नति की। मनुष्य के संचित अनुभव धीरे-धीरे विस्तृत एवं जटिल होते गए। मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया कि प्रत्येक बालक की अपनी कुछ विशिष्ट क्षमताएं रूचियां वह रुझान होते हैं तथा इसको ध्यान में रखकर ही बालक का विकास किया जाना चाहिए।

वर्तमान युग में सामाजिक व्यवस्था एवं समाज की संरचना अधिक जटिल होती जा रही है। व्यक्ति दिन प्रतिदिन पारिवारिक सामाजिक व्यवसायिक आर्थिक शैक्षिक इत्यादि समस्याओं से ग्रसित होता जा रहा है। इन समस्याओं से बाहर आने के लिए व्यक्ति निर्देशन का सहारा लेता है। निर्देशन प्रक्रिया के अंतर्गत निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति के अंतर निहित योग्यताओं, क्षमताओं, विशेषताओं, शैक्षिक, व्यावसायिक आदि जानकारी को सम्मिलित अध्ययन करना आवश्यक है। "निर्देशन वह प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत व्यक्ति को उसकी समस्याओं का समाधान पाने के लिए विशेष प्रकार की सहायता प्रदान की जाती है।"

निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करना ही नहीं बल्कि निर्देशन के आधार पर किसी व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान करने में स्वयं ही सक्षम हो सके।

निर्देशन का अर्थ

निर्देशन वह प्रक्रिया है। जो किसी व्यक्ति को अपने प्राकृतिक शक्ति नेचुरल पावर से अवगत कराने के उपाय का बोध कराती है। इस विचार को यूनाइटेड ऑफिस आफ एजुकेशन ने इस प्रकार व्यक्त किया गया है कि "किसी व्यक्ति की प्रकृति शक्तियों की खोज करने के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की विभिन्न विधियों से अवगत कराने वाली वह प्रक्रिया ताकि वह व्यक्ति अपने जीवन को अपने और समाज के अधिकतम हित के लिए चला सके।"

निर्देशन से तात्पर्य निर्देश अथवा आदेश देना नहीं है निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें किसी व्यक्ति को निर्णय लेने में सहायता प्रदान की जाती है। निर्देशन द्वारा ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व अपनी क्षमताओं अपनी योग्यताओं को समझ कर अपनी समस्याओं का समाधान करने की स्थिति में आता है। निर्देशन का मुख्य केंद्र बिंदु व्यक्ति होता है उसकी समस्या नहीं। निर्देशन में व्यक्ति की स्थिति का अध्ययन सबसे पहले किया जाता है। इस समस्या पर विचार किया जाता है

निर्देशन का कार्य व्यक्ति अपनी अंतर्निहित शक्तियों का सर्वांगीण विकास करने के योग्य बना सके। विभिन्न विद्वानों ने निर्देशन को निम्नलिखित परिभाषित किया है।

चाइ सोलन के अनुसार - "निर्देशन का उद्देश्य जीवन जीने तथा सृजनात्मक पहल वाली शक्तियों का विकास करना है। जिसकी सहायता से वह जीवन पर्यन्त अपने जीवन की समस्याओं को सुगमता तथा सरलता पूर्वक हल करने योग्य बनाएं।"

कुप्पुस्वामी के अनुसार - "निर्देशन व्यक्ति को अपने समायोजन की समस्याओं में सहायता देने की प्रक्रिया है।"

स्किनर के अनुसार - "नवयुवकों को अपने प्रति, दूसरे के प्रति तथा परिस्थितियों के प्रति समायोजन में सहायता करने की प्रक्रिया निर्देशन है।"

हेमरिन के अनुसार - "निर्देशन से यह आशय है कि जो व्यक्ति को उसकी शक्तियों का ज्ञान इस प्रकार करा दो कि वह अपनी शक्तियों को पहचान सके।"

जॉन्स के अनुसार - "निर्देशन का अर्थ प्रदर्शन करना, इंगित करना, सूचित करना तथा पथ प्रदर्शन करना इसका अर्थ सहायता देने में अधिक है।"

स्मिथ के अनुसार - "निर्देशन प्रक्रिया सेवाओं के उस समूह से संबंध है जो व्यक्तियों विभिन्न क्षेत्रों में संतोषजनक व्यवस्थापन के लिए आवश्यक पर्याप्त चयन योजनाओं एवं व्याख्या के लिए अपेक्षित कुशलताओं एवं ज्ञान को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है।"

जे. एम. ब्रेवर के अनुसार - "निर्देशन एक ऐसा पराक्रम प्रक्रिया है जो व्यक्ति अपनी अपनी समस्याओं को हल करने में स्वयं निर्देशन की क्षमता का विकास करता है।"

एमरी स्टेप्स के अनुसार - "निर्देशन सहायता प्रदान करने की एक ऐसी सतत प्रक्रिया है जो व्यक्ति में व्यक्तिगत तथा सामाजिक दृष्टि से हितकारी क्षमताओं का विकास अधिकतम रूप से करती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि निर्देशन एक ऐसी सहायता है जो किसी योग्य, अनुभवी एवं प्रशिक्षित व्यक्ति के द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को अपने कार्य को करने, अपनी योग्यताओं को समझने तथा उनका अधिकतम विकास करने अथवा अपनी समस्याओं के समाधान के लिए उपलब्ध कराई जाती है। निसंदेह निर्देशन एक सकारात्मक प्रक्रिया है। जो व्यक्ति को इस योग्य बनाने का प्रयास करती है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान तथा निदान स्वयं खोज लेता है।

निर्देशन के उद्देश्य

निर्देशन वस्तुतः एक उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया है। अतः इसके कुछ निश्चित उद्देश्य होने स्वाभाविक ही हैं निर्देशन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

1. व्यक्ति को उसकी योग्यताओं व शक्तियों का ज्ञान करना।
2. व्यक्ति को उसकी योग्यताओं व क्षमताओं को विकसित करने में सहायता देना।
3. व्यक्ति को उसकी योग्यताओं के अनुरूप शैक्षिक व्यावसायिक अवसरों की जानकारी देना।
4. व्यक्ति को अपने वातावरण के साथ अच्छा समायोजन करने में सहायता प्रदान करना।
5. व्यक्ति को अपनी समस्याओं का स्वयं समाधान करने योग्य बनाना।
6. व्यक्ति को अपनी उपलब्धियों को ज्ञात करना।

निर्देशन की आवश्यकता

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जिसे समाज के उपयोगी, सक्रिय तथा उत्पादक सदस्य के दायित्वों का निर्वाह करना होता है। शिक्षा हमें इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देती है। वर्तमान

समय में विशिष्ट दक्षता एवं योग्यता वाले कर्मचारियों की मांग बढ़ने के कारण निर्देशन की आवश्यकता बढ़ रही है। परंपरागत मान्यताएं टूट रही हैं तथा नई मान्यताएं जन्म ले रही हैं पुरातन तथा वर्तमान की परस्पर विरोधी बातों में जब व्यक्ति उलझ जाता है तो उसे निर्देशन की आवश्यकता होती है। वर्तमान परिस्थितियों में निर्देशन न केवल शिक्षा के क्षेत्र में वरन जीवन के सभी क्षेत्रों में अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है। निर्देशन की आवश्यकता निम्न दृष्टि से महसूस की जाती है।

सामाजिक दृष्टिकोण में निर्देशन की आवश्यकता

समाज दिन भर दिन प्रगति के पद पर अगर सर हो रहा है उसी प्रकार दिन पर दिन समस्याओं का जन्म भी बढ़ता जा रहा है तेजी से बदल रही पारिवारिक सामाजिक तथा व्यावसायिक परिस्थितियों जनसंख्या वृद्धि एवं सामाजिक धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों में परिवर्तन आदि के कारण सभी के लिए निर्देशन की सहायता पड़ती है समझ में उत्पन्न समस्याओं के प्रति सचेत रहते हुए उन समस्याओं के समाधान में योगदान दे सके समस्याओं के समाधान तथा नागरिकों को अपनी भूमिका का निर्वाह करने में निर्देश का सार्थक उपयोग किया जा सकता है।

स्त्रियों के लिए रोजगार की आवश्यकता

स्त्री और पुरुषों को भारतीय संविधान के अनुसार विकास एवं व्यवसायिक जगत में स्त्रियों के प्रवेश की संख्या बढ़ी है उच्चतर शिक्षा और प्रशिक्षण प्राप्त करके गांव और शहर की महिलाएं आधुनिक व्यवसाय कर रही हैं महिलाएं व्यवसाय के अनेक क्षेत्रों में भागीदारी दिख रही हैं और यह भागीदारी संध्या एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है और महिलाएं आगे से आगे बढ़कर हिस्सा ले रही हैं महिलाओं की सामाजिक एवं पारिवारिक स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए हैं पहले की अपेक्षा आज के युग में स्त्रियां बहुत आगे जा चुकी हैं उन्होंने यह मान्यता को गलत साबित कर दिया है कि स्त्रियां केवल घर के कार्य एवं शिक्षण कार्य में अच्छा कर सकती हैं अपितु वह रोजगार के साथ-साथ स्त्रियां घर में बच्चों को भी संभाल रही हैं यह सब कार्य निर्देशन के माध्यम से कर रही हैं।

सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन

प्राचीन काल में संस्कृति आदर्श गुणा का अत्यधिक महत्व था परंतु आधुनिक समय में सामाजिक मूल्यों में अनेक परिवर्तन हुए हैं और दिन प्रतिदिन प्राचीन मूल्य में कमी आती जा रही है वर्तमान समय में नवीन विचारों जैव के कार्य को जनसंख्या की वृद्धि के कारण अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं प्राचीन मूल्य के स्थान पर नए-नए मूल्यों को स्वीकृति प्रदान की गई है समाज में इस प्रकार के मूल्यों का विकास होने से सामाजिक तनाव में लगातार वृद्धि हो रही है यह स्थिति देश के लिए भी घातक हो सकती है दुर्भाग्य की बात यह है कि वर्तमान समय में पुराने मूल्यों की आस्था उत्पन्न हो रही है और ना ही नए-नए मूल्यों का निर्धारण हो पा रहा है इसीलिए सामाजिक परिवर्तन की भूमिका में छात्रों का उचित निर्देशन की आवश्यकता है।

उचित नियोजन की आवश्यकता

समाज में वर्तमान के बदलते परिवेश में ध्यान में रखकर प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता योग्यता एवं रुचि के अनुसार व्यक्ति को शांति प्रदान करने वाला कार्य करना चाहिए व्यक्ति समाज में उचित ढंग से अपने आप को समायोजित नहीं कर सकता जिसके कारण वह शैक्षिक औद्योगिक में अपनी कार्य कुशलता का सही ढंग से प्रदर्शन नहीं कर पाता और मानसिक तनाव तथा अन्य समस्याओं समस्याओं से घिरा रहता है निर्देशन के माध्यम से ही व्यक्ति को साक्षी वह अन्य संस्थाओं में स्थापित करके नियोजित ढंग से कार्य करने का मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

मानवीय क्षमता का समुचित उपयोग एवं उसका संरक्षण

वर्तमान समय में निर्देशन सेवाओं के उचित संयोजन से मानवीय क्षमताओं एवं व्यक्ति की अंतर नहीं शक्तियों का समुचित विकास किया जा सकता है जब व्यक्ति का सर्वाधिक विकास ठीक होगा तो वह समाज की उन्नति में ठीक प्रकार से अपना योगदान दे सकता है जो व्यक्ति आर्थिक रूप से गरीब हो प्रतिभाशाली होने के बाद भी वह अपनी क्षमताओं के अनुरूप समाज को योगदान नहीं दे पाता छात्र निर्देशन के अभाव में उचित पाठ्यक्रम का चयन नहीं कर पाते हैं जिसके कारण मानवीय शक्तियों का पास होता है उपयुक्त समस्याओं को रोकने के लिए समुचित निर्देशन सेवाओं की आवश्यकता होती है।

व्यक्ति के मौलिक महत्व की स्वीकृति

समाज का निर्माण व्यक्तियों पर आधारित होता है समाज की उन्नति एवं प्रगति उसे समाज का निर्माण करने वाले व्यक्तियों पर निर्भर होती है क्योंकि यदि समाज अपने व्यक्तियों के विकास में समुचित अवसर व सुविधा उपलब्ध कराने में पूरा ध्यान देता है तो उसे समाज की प्रगति निश्चित रूप से हो जाती है जिस समाज में व्यक्ति के विकास एवं उसकी क्षमताओं की अभिव्यक्ति के समुचित अवसर नहीं मिलते तो वह प्रगति की दौड़ में पीछे जाते हैं व्यक्तियों के अंतर निहित क्षमताओं योग्यताओं एवं संभावनाओं के अनुसार पूर्व विकास के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है।

धार्मिक तथा नैतिक मूल्यों में परिवर्तन

प्राचीन काल में धार्मिक तथा नैतिक मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान होता है वर्तमान समय में समाज में धार्मिक तथा नैतिक मूल्यों का पतन होता जा रहा है। नैतिक अथवा धार्मिक मूल्यों पर सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों का विशेष प्रभाव पड़ा है आज के युग में दिन प्रतिदिन लगातार नैतिकता एवं धार्मिकता का परिहास होता जा रहा है। बालकों में नैतिकता प्रायः खत्म होती जा रही है इन सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए नवयुवकों को नैतिक तथा अनैतिक दृष्टि से बचने के लिए निर्देशन की आवश्यकता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता

किसी भी व्यक्ति के विकास में उसके वातावरण समाज एवं परिवार का महत्वपूर्ण योगदान होता है ठीक उसी प्रकार से व्यक्ति का व्यक्ति उसकी अनुवांशिकता पर भी निर्भर करता है वह जिस परिवेश में रहता है जब उसमें परिवर्तन होता है तो व्यक्ति के विकास में भी परिवर्तन होता है मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह अत्यंत आवश्यक है कि व्यक्ति का विकास निरंतर होता रहे व्यक्ति के विकास का अवरोध व्यक्ति व समाज दोनों ही लिए खतरनाक हो सकता है अतः व्यक्ति एवं समाज को इन विकृतियों से सुरक्षा प्रदान करने के लिए मनोवैज्ञानिक आधार पर निर्देशन प्रदान करना आवश्यक है मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

वैयक्तिक विभिन्नताओं के अनुरूप शिक्षा

वर्तमान समय में अनेक मनोवैज्ञानिक खोजों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि कोई भी दो व्यक्ति एक समान नहीं होते। दो व्यक्तियों में किसी न किसी रूप में पारस्परिक विभिन्नता आवश्यक होती है व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति विभिन्नताओं के महत्व प्रदान किया जाए वर्तमान समय में शिक्षा का स्वरूप बदल रहा है व्यक्तिक विभिन्नता से तात्पर्य प्रत्येक व्यक्ति की रुचि, योग्यता, आकांक्षा, क्षमता अलग-अलग होती है। उसी को ध्यान में रखते हुए हमें शिक्षा प्रदान करनी चाहिए ताकि व्यक्ति को अपनी रुचि के अनुसार आगे बढ़ने का अवसर प्रदान हो सके। बाल केंद्र शिक्षा में बालक की योग्यता को

ध्यान पर रखकर ही शिक्षा प्रदान की जाती है तथा निरंतर उसके सर्वांगीण विकास पर जोर दिया जा रहा है।

कुप्पुस्वामी के अनुसार - विद्यालय के शैक्षिक कार्यक्रम का विभिन्नताओं की इस विस्तृत सीमा से समायोजन करने के लिए प्रत्येक छात्र की विभिन्न आवश्यकताओं और योग्यताओं की अधिक जानकारी आवश्यक है। यह विद्यालय में केवल विशिष्ट निर्देशन सेवा का आरंभ करके ही संभव है।

व्यक्ति की भावात्मक समस्याएं

प्रत्येक व्यक्ति की भावात्मक समस्याएं अलग-अलग होती हैं अधिकतर बच्चे अपने परिवार से घुलते मिलते नहीं है ना ही अपनी कोई बात किसी से बताते हैं वर्तमान समय में समाज की बदलती परिस्थिति के कारण भावात्मक समस्याओं का जन्म व्यक्ति के जीवन में अन्य क्षेत्र में उपस्थित होने वाली कठिनाइयों के कारण होता है व्यक्ति समाज में भावात्मक समायोजन पूर्ण रूप से कर सके इसके लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है क्योंकि निर्देशन प्रदान करने वाले व्यक्ति को कठिनाइयों का हल खोजने की सहायता प्रदान की जाती है जिसके कारण व्यक्ति की भावात्मक समस्याओं का समाधान भी होगा।

श्रेष्ठ समायोजन

वर्तमान समय में बदलते समाज के पर्यावरण में समायोजन की समस्या बढ़ रही है व्यक्ति स्वयं को समाज परिवार तथा विभिन्न स्थानों पर समायोजित नहीं कर पाता है समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए दूसरे व्यक्ति से समायोजन होना बहुत आवश्यक है उत्तम समायोजन से वह असुरक्षा एवं उदासीनता आदि द्वारा मुक्ति निहित होती है समझ में व्यक्ति को अपने सर्वांगीण विकास हेतु समायोजन की आवश्यकता है जिसके लिए व्यक्ति को निर्देशन प्रदान किया जाना चाहिए निर्देशन प्राप्त करके व्यक्ति स्वयं को दूसरे व्यक्ति के साथ समायोजित करने में सफल होता है।

क्रो एंड क्रो के अनुसार - यदि हम अपने स्वयं के निकटवर्ती वातावरण के कुछ समायोजित व्यक्तियों की संख्या पर विचार करते हैं तो हम बोल व्यवहार और मनोभाव के अधिक उपयुक्त निर्देशन की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं।

बाल अपराध का निदान एवं उपचार

प्राचीन समय में संयुक्त परिवार होते थे उसे समय माता-पिता अपने बच्चों पर ध्यान देते थे और उन्हें धार्मिक सांस्कृतिक और नैतिक आचरण के लिए प्रेरित करते थे परंतु वर्तमान समय में समाज के बदलते परिवेश में भाग दौड़ की जिंदगी में माता-पिता अपने बच्चों पर पूरी तरह ध्यान नहीं दे पाते हैं बच्चा अपने समाज के साथ समायोजन स्थापित नहीं कर पाता है और वह धीरे-धीरे अपने आप में खोया रहता है जिसके कारण वह अपराध की ओर कदम बढ़ाना शुरू कर देता है जैसे विद्यालय में किसी बालक को पीटना सामान चोरी करना गुमसुम होकर बैठना धीरे-धीरे अपराधों की वृद्धि होने लगती है क्योंकि उसका उठना बैठना अपराधी बोधन बालक से होने लगता है बाल अपराध को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक और अभिभावक बच्चों की कमजोरी का पता कर उसका उपचार करें ताकि वह अपने मन की कुंठा से भर आए विद्यालय स्तर पर पारिवारिक स्तर पर बालकों को निर्देशन प्रदान किया जाना चाहिए जिससे कि वह अपराध की ओर अग्रसित ना हो। निर्देशन के माध्यम से उचित उपचार करके उसमें सुधार किया जा सकता है। इस प्रकार आज के बदलते परिवेश तथा शिक्षा में निर्देशन की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

व्यक्ति को संतोष प्रदान करने के लिए समाज में समुचित समायोजन की आवश्यकता

व्यक्ति को निर्देशन प्रारंभ से ही दिया जाना चाहिए क्योंकि निर्देशन के अभाव में व्यक्ति की शिक्षा व्यवस्था उचित प्रकार से नहीं हो पाती है वह अपनी रुचि योग्यता और क्षमता के अनुभव विषय का चुनाव नहीं कर पाता है इसीलिए विद्यालय में प्रारंभ से निर्देशन प्रदान करने के लिए उचित विशेषज्ञों की नियुक्ति की जानी चाहिए जो निरंतर विविध तकनीकी माध्यम से छात्र की अभिरुचियों का मूल्यांकन करें और उन्हें समय पर उचित दिशा निर्देश प्रदान करें ताकि छात्रों को उचित मार्गदर्शन मिल सके।

संवेगात्मक संतुलन को बनाए रखना

बालक के संवेगात्मक संतुलन में समाज आस पड़ोस परिवार एवं विद्यालय का विशेष उत्तरदायित्व होता है जहां परिवार में अभिभावकों के पारस्परिक संबंध मधुर नहीं होते हैं वह बच्चों के सामने ही लड़ते रहते हैं एवं एक दूसरे की बुराई करते रहते हैं बाल को पर ध्यान नहीं दिया जाता है इससे बच्चों में गलत गलत विचार पर अपने लगते हैं प्रत्येक बालक में हठी स्वार्थी निराशा करना एवं हताशा इत्यादि प्रवृत्तियों का जन्म हो जाता है बालक अपने से बड़ों की आज्ञा का उलंघन करता है उनका कहना नहीं मानता है इस तरह के बालकों में किसी भी कार्य में मन नहीं लगता है वह अलग-अलग रहने लगता है माता-पिता की कोई भी बात हमको अच्छी नहीं लगती है इन संवेगात्मक संतुलन का प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में विशेष महत्व होता है निर्देशन प्रदान करके बालकों की समस्याओं को हल किया जा सकता है तथा उसकी उचित मार्गदर्शन प्रदान किया जा सकता है।

व्यक्तित्व का विकास करने में सहायक

व्यक्ति की समस्त मनोदैहिक विशेषताओं को व्यक्तित्व में शामिल किया जा सकता है कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में क्या बनेगा अथवा किसी क्षेत्र में उसकी रुचि होगी यह सब व्यक्ति के व्यक्तित्व के आधार पर किया जा सकता है व्यक्तित्व निर्धारण से संबंधित जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षण का विकास किया जा चुका है निर्देशन के माध्यम से या ज्ञात किया जा सकता है कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास किस दिशा में होगा तथा व्यक्ति को किस प्रकार की सहायता प्रदान करने की आवश्यकता है यह सब निर्देशन के माध्यम से होता है निर्देशन प्रदान करके व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वाधिक विकास किया जा सकता है निर्देशन के माध्यम से व्यक्ति में आत्मविश्वास एवं तरण इच्छा शक्ति को निरंतर बनाए जा सकता जा सकता है तथा उसे उसके लक्ष्य तक पहुंचने में सहायक है।

राजनीतिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता

समाज के बदलते परिदृश्य में देश की राजनीति का समाज में प्रायः प्रत्येक क्षेत्र पर किसी न किसी के प्रभाव वर्ष होता है राजनीति का प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर भी अत्यधिक पड़ता है एक सामान्य व्यक्ति राजनीति के चलते अपने जीवन पर सुचारू रूप से चलने में सक्षम नहीं होता है राज की सुरक्षा धर्मनिरपेक्षता भावात्मक एकता तथा प्रजातांत्रिक व्यवस्था आदि के दृष्टिकोण से भी देश से भाविक नागरिकों को सभी क्षेत्रों में निर्देशन की बहुत आवश्यकता होती है राजनीतिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता को अब लिखित बिंदुओं के माध्यम से भी स्पष्ट किया जा सकता है।

1. अंतर्राष्ट्रीय भावना के विकास की आवश्यकता

वर्तमान समय में सभी राष्ट्र अपनी भौगोलिक सीमाओं को तोड़कर किसी न किसी रूप में एक दूसरे के आपस में समृद्ध है सामाजिक आर्थिक राजनीतिक भौगोलिक एवं सांस्कृतिक इत्यादि विभिन्न क्षेत्र में प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरे पर किसी न किसी प्रकार से निर्भर है पूरे

विश्व को भावी संकटों से बचने के लिए अंतरराष्ट्रीय भावना का विकास अत्यंत आवश्यक है विभिन्न प्रकार के अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रमों प्रदर्शनियों पुस्तकों तथा एक दूसरे के लिए किए जाने वाले योगदान की जानकारी प्रदान करके इस उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है निर्देशन क्या भाव में किसी समाज या व्यक्ति के विकास एवं प्रगति की कल्पना भी नहीं की जा सकती निर्देशन का व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका है।

2. देश की रक्षा हेतु आवश्यकता

प्राचीन समय में युवा वर्ग के अंदर देश प्रेम की भावना देखने को मिलती थी जिसने देश को अंग्रेजों के गुलाम से मुक्त कराया वर्तमान समय में समाज में युवा वर्ग में देश प्रेम की भावना खत्म होती है नजर आ रही है सदैव तत्पर बनाने में व्यक्तियों को सम्मिलित होने के लिए और रिलेशन सेवा का उपयोग किया जा सकता है भारत में देश की सुरक्षा हेतु निर्देशन की अत्यंत आवश्यकता है विद्यालय स्तर में भी छात्रों को देश सुरक्षा से शुरू जुड़ी कहानियों का वर्णन करना चाहिए तथा निर्देशन प्रदान करना चाहिए।

3. धर्मनिरपेक्षता

हमारे देश में सभी धर्म के लोग निवास करते हैं सभी को सामान्य मताधिकार भी प्राप्त है इसीलिए इसे धर्मनिरपेक्ष कहा जा सकता है सभी वर्गों के लोग अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं यह हमारी राष्ट्रीय एकता को दर्शाता है हमारे देश को सोने की चिड़िया भी कहा जाता है सभी नागरिकों को निर्देशन के माध्यम से एक जुट होकर रहने व अपने राष्ट्र के हित में अपना योगदान देने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए अतः समय पर निर्देशन के माध्यम से मार्गदर्शन किया जाना चाहिए।

4. राष्ट्रीय एकता की भावना के विकास की आवश्यकता

राष्ट्र की प्रगति के अभाव में व्यक्ति तथा समाज के प्रगति भी कल्पना नहीं की जा सकती है जब राष्ट्रपति के पद की ओर अगस्तिस्य होगा तभी व्यक्ति तथा समाज की प्रगति संभव है अतः इसके लिए आवश्यक है कि नागरिकों के अंदर राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करना बहुत जरूरी है राष्ट्रीय एकता की भावना के प्रसार के लिए हमें हर व्यक्ति हर वर्ग के व्यक्तियों को जोड़कर रखना चाहिए नागरिकों को राष्ट्रीय एकता भावना के विकास के लिए समय-समय पर निर्देशन प्रदान किया जाना चाहिए।

व्यावसायिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता

वर्तमान समाज में पहले की अपेक्षा अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी में व्यापक स्तर पर वृद्धि हो रही है। वैयक्तिक विभिन्नता एवं व्यवसायों की विविधता के कारण निर्देशन प्रदान करना एक आवश्यक प्रक्रिया बन चुकी है। व्यावसायिक कार्यक्षेत्रों में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। व्यक्ति को उसकी क्षमता, योग्यता, रुचि एवं अभिरुचि के अनुसार व्यवसाय का चयन करने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है। निर्देशन के माध्यम से ही व्यक्ति का सही दिशा में मार्गदर्शन किया जाता है। व्यावसायिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है-

स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक

व्यवसाय की दृष्टि से एक व्यक्ति का स्वस्थ होना अनिवार्य है। एक व्यक्ति के जीवन में स्वास्थ्य का महत्व अवश्य होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह सत्य है कि जब कोई व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार व्यवसाय में लगा होता है तो वह अधिक संतोष की अनुभूति करता है। दूसरे शब्दों में मानसिक शान्ति का अनुभव करता है, जिससे उसका स्वास्थ्य भी ठीक रहता है। वहीं दूसरी तरफ अगर व्यक्ति अरुचिकर व्यवसाय में लगा होता है तो

उसका स्वास्थ्य भी दिन-प्रतिदिन गिरता जाता है। धीरे-धीरे उसके मन में निराशा की भावना का जन्म होने लगता है और उसका मस्तिष्क अशान्त रहने लगता है। व्यावसायिक निर्देशन के अभाव में व्यक्ति अपने शारीरिक स्वास्थ्य के अनुरूप व्यवसाय का चुनाव नहीं कर पाता है।

डॉ० सीताराम जायसवाल के अनुसार- "घर से विभिन्न परिवेश में पले हुए बालक जब प्राथमिक या पूर्ण प्राथमिक विद्यालयों में आते हैं तब उनके समुचित समायोजन पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यहाँ पर निर्देशन का दायित्व शिक्षक को ही वहन करना पड़ता है। बालक विद्यालय में ठीक आदतों का विकास कर सकें, अपनी पाठ्यचर्या के प्रति रुचि प्रदर्शित कर सकें एवं उसका स्वस्थ मानसिक विकास हो, इस हेतु अध्यापक को, जो निर्देशक का कार्य भी करता है, बालक की आवश्यकताओं की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है।"

1. मानव प्रतिभाओं की खोज

समाज वैयक्तिक भिन्नताओं से ओत-प्रोत है तथा प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके अन्दर एक से अधिक शक्तियाँ अन्तर्निहित होती हैं। इन शक्तियों के कारण ही वे मानव जाति की महान सेवाएँ कर पाए हैं। व्यावसायिक निर्देशन के माध्यम से ही व्यक्ति के अन्दर छिपी हुई प्रतिभाओं को ज्ञात किया जा सकता है व्यक्ति अपनी प्रतिभा को विविध प्रकार के कार्यों में लगाकर लोगों के हित के लिए कार्य करता है।

2. वैयक्तिक भिन्नताओं की दृष्टि से

समाज में वैयक्तिक भिन्नता का परिदृश्य हमें देखने को मिलता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से अपनी योग्यता, क्षमता, बौद्धिक स्तर, रुचि एवं अभिरुचि के आधार पर समान नहीं होता है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ अलग शक्तियाँ अंतर्निहित होती हैं। अतः विद्यालयों में वैयक्तिक भिन्नता को दृष्टिगत रखते हुए ही शिक्षक को शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। किसी भी प्रकार के व्यवसाय के लिए अनुकूल व्यक्तियों का चयन करने से पहले वैयक्तिक भिन्नताओं के स्तर एवं स्वरूप की जानकारी अवश्य होनी चाहिए, क्योंकि प्रत्येक व्यवसाय के लिए कुछ विशेष योग्यता एवं क्षमता वाले व्यक्ति की आवश्यकता होती है। निर्देशन के माध्यम से ही वैयक्तिक भिन्नता के सन्दर्भ में विविध माध्यमों से पर्याप्त सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती हैं।

3. पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने की दृष्टि से

प्राचीन समय में व्यक्ति परिवार एवं व्यावसायिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने में सफल हो जाता था, परन्तु आज वर्तमान समय में समाज में व्यक्ति पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवन में सामंजस्य नहीं स्थापित कर पाता है। व्यक्ति के जीवन में व्यावसायिक एवं पारिवारिक जीवन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जो व्यक्ति अपने पारिवारिक जीवन में सुख और शांति का अनुभव करते हैं वे व्यावसायिक जीवन को भी सुख और शांति के साथ सन्तुलित कर लेते हैं। जो व्यक्ति व्यावसायिक जीवन को आगे की ओर अग्रसित रखते हैं वे भी पारिवारिक जीवन में तालमेल बैठा लेते हैं। परन्तु जो व्यक्ति इन दोनों में तालमेल नहीं बैठा पाते हैं वे निराश एवं हताश हो जाते हैं और अपने जीवन में तरक्की नहीं कर पाते हैं और न ही व्यवसाय के निर्देशन में माध्यम से व्यक्ति इन समस्याओं का समन्वित रूप से समाधान करने में सफल हो जाता है और अपने जीवन को सुचारु रूप से निर्वहन करने के लिए तत्पर रहता है।

4. व्यावसायिक प्रगति की दृष्टि से

वर्तमान समय में व्यवसाय के क्षेत्र में व्यापक स्तर पर वृद्धि हो रही है। समाज का जैसे-जैसे स्वरूप बदल रहा है ठीक वैसे ही व्यवसाय का भी स्वरूप बदल गया है। आज प्रौद्योगिकी ने विविध कार्यक्षेत्रों में प्रगति कर ली है। व्यावसायिक प्रगति के लिए व्यक्तियों को निर्देशन की आवश्यकता होती है। निर्देशन की सहायता से व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने में सहायता मिलती है, जिससे वह अपने कौशलों के आधार पर व्यवसाय का चयन कर सकें तथा उसमें प्रगति करें।

5. व्यावसायिक भिन्नता की दृष्टि से

प्राचीन समय में देश की अधिकतर जनता कृषि करती थी और इससे अपना जीविकोपार्जन करती थी। उस समय समाज की आवश्यकताएँ भी सीमित थीं तथा जनसंख्या का घनत्व अपेक्षाकृत बहुत कम था। उस समय संयुक्त परिवार हुआ करते थे और एक साथ एक स्थान पर रहते थे। वर्तमान समय में तीव्रगति से जनसंख्या में वृद्धि हुई है उसी के अनुसार आवश्यकताओं में वृद्धि, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण इत्यादि के परिणामस्वरूप अनेक नवीन प्रकार के उद्योगों, व्यवसायों की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता, क्षमता, रुचि एवं अभिरुचि भिन्न-भिन्न होती है। उसी आधार पर उनको व्यवसाय के विषय में निर्देशन प्रदान किया जाना चाहिए जिससे व्यक्ति को व्यवसाय को चुनने में सहायता मिलेगी। इस समाज में व्यावसायिक भिन्नता की दृष्टि से निर्देशन की महत्वपूर्ण भूमिका है।

शैक्षिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता

व्यक्ति को निर्देशन की आवश्यकता किसी-न-किसी रूप में बचपन से लेकर जीवनपर्यन्त बनी रहती है। व्यक्ति के विकास में शिक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति एवं समाज के जीवन में परिवर्तन सम्भव है। समाज का जो भी स्वरूप आज हमारे सामने है, वह स्वरूप उस समाज के विद्यालयों में प्रदान की गई पहले शिक्षा का ही परिणाम है। हमें समाज के स्वरूप को 'सर्वोत्कृष्ट' बनाना है, तो वर्तमान शिक्षा को आज की पीढ़ी के युवाओं के भावी अपेक्षाओं के अनुकूल बनाना है। यह तभी सम्भव है जब शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में निर्देशन का भी समुचित उपयोग किया जाए। शैक्षिक दृष्टिकोण से निर्देशन की महत्वपूर्ण भूमिका है। शैक्षिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है-

1. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर बल

शिक्षा आयोग ने कहा है कि भारत का आधुनिकीकरण करने के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की शिक्षा पर बल दिया जाए। वर्तमान समय में आधुनिकीकरण के मुख्य आधार हैं- 'विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी', जिसके कारण ही चीन और अमेरिका विकसित देशों की श्रेणी में हैं। सरकार ने यह मान्यता प्रदान की है कि माध्यमिक एवं उच्च स्तरों पर विज्ञान और

प्रौद्योगिकी की शिक्षा विस्तृत हो रही है। छात्रों को उनकी रुचि, योग्यता एवं क्षमता के अनुसार उन्हें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आगे की ओर अग्रसित होने के लिए निर्देशन प्रदान किया जाए। छात्रों को निर्देशन प्रदान किया जाएगा तो वे विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में और अधिक विशिष्टता अर्जित कर सकते हैं।

2. वैयक्तिक भिन्नता के अनुरूप शिक्षा का विकास

वैयक्तिक भिन्नता से तात्पर्य है एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से योग्यता क्षमता, रुचियों इत्यादि से समान नहीं होता है। सभी व्यक्ति की योग्यता, क्षमता तथा रुचियाँ अलग-अलग होती हैं शिक्षक उसी अनुरूप उन्हें शिक्षा प्रदान करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह अत्यन्त आवश्यक है कि छात्रों को वैयक्तिक भिन्नता के अनुरूप ही शिक्षा की व्यवस्था की जाए। वर्तमान समय में विद्यालयों में छात्रों की संख्या में निरन्तर वृद्धि के कारण इस सिद्धान्त का व्यावहारिक प्रयोग देना आज कठिन हो गया है। निर्देशन सेवाओं के माध्यम से छात्रों में स्वाध्याय से सम्बन्धित पाठ्य-पुस्तक, सीखने की सरल विधियों का ज्ञान प्रदान किया जा सकता है, जिसके द्वारा उपरोक्त समस्या का समाधान हो सकता है। निर्देशन प्रदान करके छात्र को अधिक-से-अधिक अपनी रुचि के अनुसार स्वाध्याय के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

3. व्यावसायीकरण पर बल

आज वर्तमान समय में समाज में बेरोजगारी एक बहुत बड़ी एवं गम्भीर समस्या है। जिसका कारण है, छात्रों को पर्याप्त निर्देशन का अभाव होना। विद्यालय स्तर पर छात्र को उसकी रुचि, योग्यता एवं क्षमता के अनुसार उसे व्यवसाय के चयन हेतु निर्देशित किया जाना चाहिए।

4. पाठ्यक्रम में विविधता

प्राचीन समय की अपेक्षा आज समाज में शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यक्रमों में अनेक प्रकार की विविधता देखने को मिलती है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश की राजनैतिक और औद्योगिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा का पुनर्गठन किया गया है। माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा नवीन शिक्षा नीति, 1986 ने 10+2 के पाठ्यक्रम की विविधता पर जोर दिया। पाठ्यक्रम में विविधता के चलते निर्देशन प्रदान करने की आवश्यकता है जिससे छात्र अपनी सार्थकता के आधार पर पाठ्यक्रम का चयन करने में सक्षम हो सके। माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार- "शिक्षा के विविध पाठ्यक्रम की व्यवस्था शिक्षकों और विद्यालय प्रशासकों पर छात्रों को उचित पाठ्यक्रमों और आजीविकाओं का चयन करने के लिए उचित निर्देशन देने का अतिरिक्त उत्तरदायित्व रखती है।"

5. अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या के समाधान की आवश्यकता

भारतीय शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर अपव्यय एवं अवरोधन के समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। शिक्षण के क्षेत्र में अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या से आशय वांछित शैक्षिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने से पहले ही विद्यालय छोड़ देना या भविष्य में शिक्षा-प्राप्ति के अवसरों से वंचित हो 'जाना' है। अपव्यय से तात्पर्य है- वांछित स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने से पहले ही विद्यालय छोड़ देना तथा अवरोधन से तात्पर्य - छात्र का एक ही कक्षा में कई वर्ष तक अनुत्तीर्ण होते रहना है। शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर इस समस्या का गम्भीर स्वरूप देखने को मिलता है। अगर छात्र उनके इन प्रस्तावों का उल्लंघन करते हैं तो उन्हें अनुत्तीर्ण कर देते हैं। निर्देशन के माध्यम से इन समस्याओं को दूर किया जा सकता है।

छात्रों को निर्देशन प्रदान करके उनकी समस्या का हल किया जा सकता है। शिक्षा आयोग के अनुसार, "निर्देशन प्राथमिक विद्यालय की निम्नतम कक्षा से आरम्भ होना चाहिए। इसे उन छात्रों

को सहायता देने के लिए प्रयोग किया जा सकता है, जिनकी विद्यालय को छोड़ने की सम्भावना है।"

निर्देशन के प्रकार

सन् 1930 में विलियम मार्टिन प्रोक्टर (William Martin Procter) ने अपनी पुस्तक Educational and Vocational Guidance में निर्देशन के निम्न छह रूप प्रस्तुत किये -

1. व्यावसायिक निर्देशन
2. शैक्षिक निर्देशन
3. सामाजिक एवं नागरिक कार्यों में निर्देशन
4. स्वास्थ्य एवं शारीरिक समस्याओं में निर्देशन
5. चरित्र-निर्माण क्रियाओं में निर्देशन
6. अवकाश के समय के उत्तम उपयोग के लिए निर्देशन

प्रोक्टर द्वारा बताये गये उपयुक्त वर्गीकरण पर यदि दृष्टि डालें तो स्पष्ट होगा कि प्रथम दो शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के सर्वमान्य प्रकार हैं, एवं सामाजिक एवं नागरिक कार्यों को सामाजिक निर्देशन में तथा स्वास्थ्य, चरित्र निर्माण एवं अवकाश के समय के उपयोग के निर्देशनों को व्यक्तिगत निर्देशन के अंतर्गत रखा जा सकता है।

इस सूची के प्रकाशित होने के लगभग दो वर्ष पश्चात् 1932 में जॉन एम ब्रिवर ने निर्देशन के दस निम्नलिखित प्रकार बताये -

1. शैक्षिक निर्देशन
2. व्यावसायिक निर्देशन
3. घरेलू कार्यों के सम्बन्ध में निर्देशन
4. धार्मिक निर्देशन
5. अवकाश एवं मनोरंजन के लिए निर्देशन
6. नागरिकता के लिए निर्देशन
7. व्यैक्तिक उन्नति सम्बन्धी निर्देशन
8. उचित कार्य करने के लिए निर्देशन
9. सहयोग एवं विचार सम्बन्धी निर्देशन
10. सांस्कृतिक कार्यों से सम्बन्धी निर्देशन

ब्रिवर द्वारा दिये गये निर्देशन के प्रकारों का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि उसने व्यक्ति के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन से सम्बन्धी अनेक पक्षों को निर्देशन के प्रकार के रूप में गिनाकर इनकी संख्या बढ़ाने का प्रयास किया है।

शैक्षिक निर्देशन

शैक्षिक निर्देशन से तात्पर्य शिक्षा के क्षेत्र में दिये जाने वाले निर्देशन से है। वैसे तो शिक्षा की समस्त प्रक्रिया ही एक प्रकार से निर्देशन ही है, फिर भी विस्तृत अर्थों में शिक्षा और निर्देशन को समानार्थी मानना उचित नहीं है। शैक्षिक निर्देशन वस्तुतः शैक्षिक विकास के मार्ग पर छात्र को आगे बढ़ने में विशिष्ट सहायता प्रदान करता है। इस दृष्टि से निर्देशन विस्तृत अर्थों वाली शिक्षा का एक अंग मात्र है। शैक्षिक निर्देशन को विद्वानों ने निम्न ढंग से परिभाषित किया है -

रूथ स्ट्रेंग के अनुसार- 'व्यक्ति को शैक्षिक निर्देशन प्रदान करने का उद्देश्य छात्र को उपयोगी कार्यक्रम को चुनने तथा उसमें प्रगति करने में सहायता देना है।

जॉन्स के अनुसार- "शैक्षिक निर्देशन छात्रों को अपने लिए उपयुक्त विद्यालय, पाठ्यक्रम, पाठ्यविषय तथा पाठ्यातिरिक्त क्रियाओं का चयन करने तथा उनमें समायोजित होने के लिए दी जाने वाली सहायता है।"

जी० ई० मायर्स के अनुसार- "शैक्षिक निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक ओर छात्र तथा उसके विशिष्ट गुणों एवं दूसरी ओर अवसरों के विभिन्न समूहों और माँगों के मध्य व्यक्ति के विकास या शिक्षा के लिए अनुकूल आधार तैयार किया जाता है।"

ब्रेवर से अनुसार - "शैक्षिक निर्देशन चेतनाभिभूत प्रयत्न है जिसके द्वारा व्यक्ति के बौद्धिक विकास में सहायता प्रदान की जाती है।... कोई भी चीज जो शिक्षण या सीखने के साथ की जाती है, शैक्षिक निर्देशन के अंतर्गत आती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि शैक्षिक निर्देशन छात्र की योग्यताओं तथा उसे मिल सकने वाले शैक्षिक अवसरों के बीच सामंजस्य का मार्ग प्रशस्त करता है। ।

शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता

शिक्षा के उद्देश्यों, शिक्षण, अधिगम की व्यवस्था तथा अनुदेशन की प्रक्रिया में इन परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं है कि वर्तमान विद्यालयों में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के समक्ष आज अपेक्षाकृत अधिक समस्याएँ उपस्थित होती हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए शैक्षिक निर्देशन का उपयोग आवश्यक है। शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता निम्नलिखित दृष्टियों से है-

1. पाठ्यक्रम से सम्बन्धित विषयों का चयन

प्रत्येक विद्यार्थी का बौद्धिक स्तर, रुचि, अभिरुचि एक-दूसरे से भिन्न होती है। वांछित अधिगम की दिशा में सफलता प्रदान करने के लिए यह आवश्यक होता है कि प्रत्येक विद्यार्थी को उसके अनुरूप विषयों के अध्ययन का अवसर प्राप्त हो। प्रायः यह देखने में आता है कि कुछ विद्यार्थी विज्ञान वर्ग के विषय लेकर अनुत्तीर्ण हो जाते हैं, परन्तु कला वर्ग के विषय लेकर उच्च कोटि के अंक प्राप्त कर लेते हैं। अधिकांश विद्यार्थियों को यह ज्ञात नहीं होता है कि किस व्यवसाय में जाने के लिए किन विषयों का चयन किया जाना चाहिए। ऐसे असंख्य उदाहरण सामने आ जाते हैं, जिनमें एक विद्यार्थी की अभिरुचि डॉक्टर बनने में प्रदर्शित होता है, परन्तु वह अध्ययन जीव विज्ञान वर्ग के विषयों को कर रहा होता है, इस प्रकार की परिस्थितियों में निर्देशन का विशेष महत्त्व होता है। प्रारम्भ में ही असंगत विषयों का चयन, विद्यार्थी के समस्त भविष्य को किसी-न-किसी रूप में अवश्य प्रभावित करता है।

2. अग्रिम शिक्षा के सम्बन्ध में जानकारी

अग्रिम शिक्षा प्राप्त करने के लिए भी शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता होती है। हाई स्कूल स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त प्रत्येक अभिभावक एवं विद्यार्थी के समक्ष यह समस्या उत्पन्न होती है कि वह भावी शिक्षा के सम्बन्ध में किन आधारों पर निर्णय लें उनके सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वे अपनी शैक्षिक उपलब्धि को ही आगे बढ़ाएँ। किसी व्यवसाय के लिए प्रतियोगितात्मक परीक्षा की तैयारी करें अथवा किसी औद्योगिक संस्थान में प्रशिक्षण प्राप्त करें।

3. नवीन विद्यालयों में समायोजन की दृष्टि से

नवीन विद्यालयों में प्रवेश करने के उपरान्त, विद्यार्थियों के समक्ष अनेक प्रकार की समस्या उत्पन्न होती हैं। विशेषकर पब्लिक स्कूलों अथवा अंग्रेजी माध्यम के उच्च स्तरीय विद्यालयों से हिन्दी माध्य के विद्यालय में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के समक्ष यह समस्या उत्पन्न होती है। ग्रामीण क्षेत्र में नगते है स्थापित विद्यालयों में प्रवेश प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के समक्ष भी इस प्रकार की अनेक कठिनाइयाँ आते हैं। एक शैक्षिक वातावरण से दूसरे शैक्षिक वातावरण में प्रवेश लेने वाले छात्र-छात्राओं को नवीन शैक्षिक वातावरण से सम्बन्धित नियमों का ज्ञान नहीं होता है, वहाँ सहपाठियों का व्यवहार उनके लिए नया होता है तथा उन विद्यालयी आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं से तत्काल समायोजन कर पाना भी उनके लिए कठिन होता है।

4. विभिन्न अवसरों की जानकारी प्राप्त करना

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से भारत में विभिन्न प्रकार के व्यवसायों का विकास हुआ है, इन समस्त व्यवसायों का सम्बन्ध कुछ विशिष्ट प्रकार के पाठ्यक्रमों से होता है। इन व्यवसायों की समुचित जानकारी के अभाव में विद्यार्थियों को यह ज्ञात नहीं हो पाता है कि वे अपने अध्ययन काल में निरन्तर किन विषयों का चयन करें अथवा अनिवार्य शैक्षिक योग्यता प्राप्त करने के उपरान्त किन संस्थानों में जाकर प्रशिक्षण प्राप्त करें। शैक्षिक बेरोजगारी की वृद्धि करने में यह कारण प्रमुख रूप से उत्तरदायी होता है। निर्देशन सेवाओं के माध्यम से इस सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध कराई जा सकती है।

5. अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या का समाधान

हमारे देश में अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या एक गम्भीर रूप में विकसित हुई है। देश के अनेक बालक प्रतिवर्ष प्राथमिक शिक्षा से भी वंचित होकर अपने घरों में बैठ जाते हैं और अशिक्षित होने के कारण अपेक्षित जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो जाते हैं, यद्यपि भारतीय संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि 6 से 14 वर्ष के बालकों के लिए अनिवार्य रूप से शिक्षा की व्यवस्था की जाए, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इस दिशा में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है। अभिभावकों का संकुचित दृष्टिकोण, उनकी आर्थिक दशा, पर्याप्त विद्यालयों का अभाव, अनुकूल विद्यालयी वातावरण का अभाव आदि कारण भी इस समस्या के लिए उत्तरदायी हैं। इसी प्रकार एक ही परीक्षा में निरन्तर अनुत्तीर्ण होने के कारण भी अनेक बालक अपनी शिक्षा प्राप्ति के क्रम में अवरोध अनुभव करने लगते हैं और सदैव के लिए अपना अध्ययन छोड़ देते हैं। इस समस्या के समाधान की दिशा में छात्रों, अभिभावकों और शिक्षकों को पर्याप्त निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

6. अधिगम की दिशा में तल्लीन बनाए रखने हेतु

वांछित उपलब्धि स्तर के क्रम को सतत रूप से बनाए रखने हेतु यह आवश्यक है कि प्राप्त ज्ञान का सहज अधिगम करने में विद्यार्थी को सफलता प्राप्त होती रहे। अनेक विद्यार्थी सीखने की समुचित विधियों के ज्ञान के अभाव के कारण ही अन्य छात्रों की अपेक्षा पीछे रह जाते हैं और सही मार्गदर्शन प्राप्त होते ही अन्य छात्रों की तुलना में अधिक उत्तम उपलब्धि कर लेते हैं। स्मृति अथवा बोध क्षमता का पर्याप्त विकास एवं इनको प्रभावित करने वाले कारकों की समुचित जानकारी के अभाव में ही ऐसा होता है।

शैक्षिक निर्देशन के उद्देश्य

शैक्षिक निर्देशन के महत्व तथा आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए कहा जा सकता है कि शैक्षिक निर्देशन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1. छात्रों को शिक्षा सम्बन्धी सूचनायें प्राप्त करने में सहायता करना
2. विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों की जानकारी प्रदान करना
3. विभिन्न शिक्षा-संस्थाओं की जानकारी प्रदान करना
4. प्रवेश सम्बन्धी अहर्ताओं की सूचना प्रदान करना
5. शैक्षिक परिवेश में समायोजन करने में छात्रों की सहायता करना
6. प्रतियोगी परीक्षाओं की सूचनायें प्राप्त करने में छात्रों की सहायता करना
7. छात्रों को उनकी रुचियों व क्षमताओं से अवगत कराना
8. रोजगार के लिए अपेक्षित पाठ्यक्रमों के चुनाव में छात्रों का पथप्रदर्शन करना

व्यावसायिक निर्देशन

व्यावसायिक निर्देशन के आशय पर वर्ष 1924 में नेशनल वोकेशनल गाइडेंस एसोसिएशन के द्वारा आलेख किया गया। इस एसोसिएशन ने अपनी रिपोर्ट में व्यावसायिक निर्देशन को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "व्यवसाय निर्देशन के व्यवसाय को चुनने, उसके लिए तैयार करने, उसमें प्रवेश करने तथा उसमें विकास करने हेतु सूचना देने, अनुभव देने तथा सुझाव देने की प्रक्रिया है।

व्यवसाय मनुष्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। जीविकोपार्जन के लिए व्यक्ति किसी न किसी व्यवसाय में संलग्न रहता है। व्यवसाय मनुष्य के जीवन को सार्थक रूप से प्रभावित करता है। व्यक्ति के द्वारा अपनाये गये व्यवसाय या जीविका का उसके सम्पूर्ण जीवन व समायोजन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि व्यक्तियों के द्वारा व्यवसाय के उचित चयन पर विगत कुछ वर्षों से विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। उचित व्यवसाय के चयन करने के लिए व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता होती है। व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति को अपनी क्षमताओं के अनुरूप अनुकूल व्यवसाय का चयन करने में सहायता प्रदान करता है। विद्वानों ने व्यावसायिक निर्देशन की अनेक परिभाषायें दी हैं -

सन् 1937 में नेशनल वोकेशनल गाइडेन्स एसोसिएशन ने कहा कि- "व्यावसायिक निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यवसाय चयन, इसके हेतु तैयार होने में, इसमें प्रवेश करने में तथा उसमें दक्षता प्राप्त करने में सहायता देती है। इसका मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों को भावी नियोजन तथा जीविका निर्माण में समाहित ऐसे निर्णयों व पसन्दों में सहायता प्रदान करना है जो सन्तोषप्रद व्यावसायिक समायोजन के लिए आवश्यक है।"

सुपर ने अपनी पुस्तक 'अप्रेजिंग वोकेशनल फिटनेस' में व्यवसायिक-निर्देशन की परिभाषा देते हुए कहा है कि- "व्यवसायिक निर्देशन व्यक्तियों को व्यवसायों में समायोजित होने में सहायता करता है तथा मानवीय शक्ति का प्रभावोत्पादक ढंग से उपयोग कर सामाजिक अर्थ-व्यवस्था को सरलतम ढंग से चलाने में सुविधायें प्रदान करता है।"

सन् 1949 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O) ने व्यवसाय-निर्देशन की परिभाषा देते हुए कहा है कि- "व्यवसायिक-निर्देशन वह सहायता है जो एक व्यक्ति को व्यवसाय चयन से सम्बन्धित समस्याओं को हल करने हेतु दी जाती है जिससे व्यक्ति की क्षमताओं का उनसे सम्बन्धित व्यवसाय-सुविधाओं के साथ समायोजन हो सके।"

उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि- “व्यवसायिक-निर्देशन, व्यवसाय-चयन तथा व्यावसायिक समायोजन की दृष्टि के व्यक्ति को दिया जाने वाला मार्गदर्शन है जो व्यक्ति की योग्यताओं, अभिरुचियों, मूल्यों आदि को ध्यान में रखकर दिया जाता है। इसका प्रमुख उद्देश्य मानव-क्षमताओं का अधिकतम व सार्थक उपयोग करने का मार्ग प्रशस्त करना होता है।”

व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य

1. छात्रों के व्यावसायिक विकास को समुचित प्रोत्साहन देने की आवश्यकता की दृष्टि से व्यावसायिक निर्देशन के प्रमुख उद्देश्य को निम्नवत लिखा जा सकता है-
2. छात्रों को विभिन्न व्यवसायों के सम्बन्ध में सूचनायें एकत्र करने में सहायता करना।
3. छात्रों को भिन्न-भिन्न व्यवसायों के लिए आवश्यक गुणों, योग्यताओं व क्षमताओं का ज्ञान कराना।
4. छात्रों को विभिन्न व्यवसायों का निरीक्षण करने की सुविधा उपलब्ध कराना।
5. छात्रों को व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थाओं से अवगत कराना।
6. छात्रों को ऐसे अवसर प्रदान करना जिससे वे कार्य की परिस्थितियों को समझ सकें।
7. छात्रों को विभिन्न व्यवसायों के सामाजिक महत्व से अवगत कराना।
8. छात्रों में कार्यों के प्रति आदर्श की भावना जागृत करना।
9. निर्धन छात्रों को सरकार द्वारा चलाई जा रही व्यावसायिक सहायता योजनाओं की अद्यतन जानकारी देना।
10. व्यावसायिक संस्थाओं एवं व्यक्तियों की जानकारी प्रदान करना।
11. व्यवसाय में उन्नति करने के लिए मार्गदर्शन देना।
12. व्यवसाय चयन के उपरान्त व्यावसायिक समायोजन में व्यक्ति की सहायता करना।

व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता

शैक्षिक निर्देशन के साथ-साथ छात्रों को व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करना भी अत्यन्त आवश्यक तथा महत्वपूर्ण होता है। व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकताओं का वर्णन इस प्रकार है-

1. वैयक्तिक भिन्नताओं का होना

प्रत्येक व्यक्ति में निहित योग्यताएँ, क्षमताएँ, रुचि, अभिरुचि आदि भिन्न-भिन्न होती हैं। किसी-न-किसी रूप में व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न होता ही है। इस विभिन्नता की समुचित जानकारी प्राप्त किए बिना यह सम्भव नहीं है कि व्यक्ति की अभिरुचि, अथवा व्यावसायिक अनुकूलता के सम्बन्ध में निश्चित कथन किया जा सके, किसी भी व्यवसाय के लिए अनुकूल व्यक्तियों का चयन करने से पूर्व वैयक्तिक विभिन्नताओं के स्तर एवं स्वरूप की जानकारी आवश्यक होती है, क्योंकि प्रत्येक व्यवसाय के लिए कुछ विशेष योग्यताओं वाले व्यक्ति की आवश्यकता होती है। निर्देशन के द्वारा इस सन्दर्भ में विभिन्न माध्यमों से पर्याप्त सूचनाएँ एकत्र की जा सकती हैं।

2. विभिन्न प्रकार के व्यावसायों की उपलब्धता

प्राचीन समय में देश की अधिकांश जनता कृषि व्यवसाय के माध्यम से ही अपनी जीविकोपार्जन की समस्या का समाधान कर लेती थी। संयुक्त परिवार प्रथा के कारण एक परिवार के सदस्यों को एक ही स्थान पर रहकर अधिकाधिक अर्थोपार्जन का अवसर सुलभ रहता था, परन्तु जनसंख्या की तीव्रगति से होती हुई वृद्धि, आवश्यकताओं में

वृद्धि, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण आदि के फलस्वरूप अनेक नवीन प्रकार कोड वृद्धि, आवश्यकताओं आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। अतः विद्यालयी स्तर पर ही यह आवश्यक समझा गया कि शिक्षार्थियों को उनकी अभिरुचि के अनुसार विषयों के चयन में सहायता प्रदान की जाएँ, जिससे शिक्षा और व्यवसाय अथवा शैक्षिक उपलब्धि एवं जीविकोपार्जन से सम्बन्धित अपेक्षाओं में समन्वय स्थापित किया जा सके। व्यावसायिक निर्देशन द्वारा विद्यार्थियों को उनकी रुचियों, कौशलों, योग्यताओं, अभिरुचियों आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की जा सकती है।

3. समाज की परिवर्तित दशाएँ

समाज की पारिवारिक; आर्थिक, धार्मिक आदि विभिन्न दशाओं में आज पर्याप्त अन्तर हो चुका है। एक समय था जब व्यक्ति की योग्यताओं, व्यक्ति के अस्तित्व एवं परोपकार की दृष्टि से किए जाने वाले कार्यों को महत्त्व दिया जाता था लेकिन वर्तमान समाज की परिस्थितियाँ सर्वथा भिन्न हैं। आज व्यक्ति के स्तर, धन, भौतिक साधनों की अधिक महत्त्व दिया जाता है, अपने पड़ोस, सम्बन्धियों एवं परिचितगणों से सम्मान प्राप्त करने के लिए आज यह आवश्यक है कि व्यक्ति का रहन-सहन का स्तर सन्तोषजनक हो।

4. मानवीय क्षमताओं का वांछित उपयोग

समाज अथवा राष्ट्र को प्रगति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि मानवीय क्षमताओं का समुचित प्रयोग किया जाए। प्रगति की दौड़ में आज जितने भी राष्ट्र अग्रणी हैं, उनकी सफलता का एक प्रमुख रहस्य यह भी है कि उन देशों में व्यक्ति की क्षमताओं का समुचित उपयोग किया जाता है। हमारे यहाँ व्यक्ति की योग्यता का सही मूल्यांकन प्रायः नहीं हो पाता है योग्यता एवं व्यावसायिक अवसर में अन्तर इस सीमा तक है कि जिन व्यक्तियों को मात्र एक लिपिक के रूप में कार्य करना चाहिए था, वह अफसर बना दिए हैं, और जो अधिकारी होने चाहिए थे वह मात्र लिपिक के रूप में ही जीविकोपार्जन कर रहे हैं। रिश्वत, सिफारिश, जातिवाद, वर्गवाद, मूल्यांकन की अनुमति कसौटियाँ आदि अनेक कारक इस प्रकार की दुरावस्था के लिए उत्तरदायी हैं। इस दृष्टि से विद्यार्थियों एवं शिक्षा प्राप्त कर चुके युवकों के लिए, व्यावसायिक निर्देशन विशेष रूप से सहायक हो सकता है।

5. स्वास्थ्य को बनाए रखने की दृष्टि से

स्वास्थ्य का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से महत्त्व होता है। किसी व्यवसाय में निरन्तर निपुणता अथवा वांछित कार्यक्षमता के साथ कार्य करना भी केवल उसी परिस्थिति में सम्भव हो सकता है। जब व्यवसाय में लगे कर्मियों का स्वास्थ्य सन्तोषजनक हो। स्वास्थ्य को बनाए रखने से वृत्तिक सन्तोष का विशेष महत्त्व होता है, तथा यह तभी सम्भव है। जब प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुकूल व्यवसाय का अवसर प्राप्त हो। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि अनेक व्यवसायों में किस विशिष्ट कार्य के संचालन की विशेष क्षमताओं की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए घड़ी-साजी, कम्पोजिंग, प्रूफरीडिंग जैसे कार्यों में नेत्र संचालन एवं नेत्रों की गतिविधि के नियन्त्रण का अधिक महत्त्व होता है।

6. पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने की दृष्टि से

व्यक्ति के व्यावसायिक एवं पारिवारिक जीवन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। परिवार में घटित होने वाली घटनाएँ एवं समस्याएँ जिस प्रकार व्यावसायिक जीवन को प्रभावित करती हैं, उसी व्यावसायिक क्षेत्र से सम्बन्धित सफलताएँ एवं असफलताएँ

पारिवारिक जीवन पर प्रभाव डालती हैं। प्रायः यह देखने को आता है कि जो व्यक्ति अपने पारिवारिक जीवन में सुख एवं सन्तोष की अनुभूति कर रहे हैं वह व्यावसायिक जीवन को भी शान्त, सौम्य एवं सन्तुलित ढंग से व्यतीत करते हैं।

इस प्रकार, शैक्षिक निर्देशन के उपरान्त व्यावसायिक निर्देशन का व्यक्ति के जीवन में विशेष महत्त्व होता है। वस्तुतः व्यावसायिक निर्देशन के अभाव में न तो व्यक्ति के जीवन में समुचित सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है और न ही शैक्षिक उपलब्धियों का वांछित उपयोग ही सम्भव हो सकता है।

निर्देशन की प्रक्रिया

शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया एक उद्देश्याधारित, व्यवस्थित तथा योजनाबद्ध प्रक्रिया होती है। निर्देशन की प्रक्रिया को निम्नांकित सोपानों में बांटा जा सकता है-

1. अनुस्थापक वार्तायें (Orientation Talks)
2. प्राथमिक साक्षात्कार (Initial Interview)
3. सामाजिक व आर्थिक स्थिति अध्ययन (Social and Economic Status Study)
4. मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological Testing) (
5. विद्यालयी जीवन का अध्ययन (Study of School Life)
6. स्वास्थ्य परीक्षण (Medical Examination)
7. अन्तिम साक्षात्कार (Final Interview)
8. अन्य विशेषज्ञों से विचार विनियम (Exchange of Opinion with other Experts)
9. रिपोर्ट लेखन (Report Writing)
10. अनुवर्ती कार्य (Follow-up)

निर्देशन के सिद्धांत

शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया एक ऐसी सोद्देश्य तथा तार्किक प्रक्रिया होती है जो कुछ निश्चित सिद्धांतों पर आधारित होती है। निःसन्देह किसी भी प्रकार के निर्देशन को निम्नांकित प्रमुख बिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए -

1. सभी को निर्देशन दिया जाना चाहिए।
2. समस्या अनुभव करने के तत्काल बाद निर्देशन करना चाहिए।
3. निर्देशन हेतु आवश्यक सूचनायें संकलित की जानी चाहिए।
4. सूचना प्राप्ति हेतु प्रमापीकृत परीक्षण प्रयोग में लाई जानी चाहिए।
5. अभिभावकों तथा अन्य परिजनों का सहयोग लिया जाना चाहिए।
6. अनुवर्ती अध्ययन करते रहना चाहिए।

निर्देशन में प्रयुक्त मापन विधियाँ

छात्रों को शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने के लिए उनकी योग्यता, क्षमता, रुचि आदि का मापन करने के कार्य में प्रयुक्त की जाने वाली प्रमुख कुछ विधियाँ निम्नवत् हैं -

1. प्रत्यक्षालाप (Interview)
2. प्रश्नावली (Questionnaire)
3. मापनी (Scales)
4. परीक्षण (Tests)

5. व्यक्ति इतिहास (Case Studies)
6. समाजमिति (Sciometry)
7. प्रक्षेपी विधि (Projective Method)
8. पार्श्व चित्र (Profiles)
9. संचित अभिलेख (Cumulative Records)
10. अनुस्थापन व्याख्यान (Orientation Lectures)
11. अनुवर्ती अध्ययन (Follow up Studies)

इन विधियों की संक्षिप्त चर्चा इस पुस्तक में अन्यत्र की जा चुकी है। पाठक इन विधियों की विस्तृत चर्चा मापन तथा मूल्यांकन अथवा निर्देशन की पुस्तकों से प्राप्त कर सकते हैं।

भारत में निर्देशन की स्थिति

निर्देशन मानव सभ्यता के प्रादुर्भाव के साथ-साथ निरंतर किसी न किसी रूप में चला आ रहा है। समय के साथ इसके स्वरूप में परिवर्तन होता रहा है। वर्तमान युग में निर्देशन को शिक्षा के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार किया जाता है। मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से किसी न किसी रूप में भिन्न होता है इसलिए उसके सर्वांगीण विकास के लिए समय-समय पर उसके पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है। स्वतंत्रता के उपरान्त भारतीय शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। अब शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को ज्ञान प्रदान करना मात्र नहीं है वरन् उनका सर्वांगीण विकास करके समाज में समायोजित करना भी है। यह सब उचित निर्देशन के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। निर्देशन का कार्य यद्यपि स्वतंत्रता के पूर्व प्रारम्भ हो गया था फिर भी अभी यह शैशवावस्था में ही है। स्वतंत्रता के उपरान्त गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा शिक्षा आयोग ने निर्देशन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सुझाव दिये।

सन् 1953 में डॉ० लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के विस्तार की आवश्यकता महसूस करते हुए निम्न सुझाव दिये -

1. शिक्षा अधिकारियों को निर्देशन के कार्य पर अधिक ध्यान देना चाहिए।
2. सभी शिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षित निर्देशन अधिकारियों तथा कैरियर मास्टर्स की नियुक्ति की जानी चाहिए।
3. सभी राज्यों में निर्देशकों के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण संस्थायें खोली जानी चाहिए।
4. छात्रों की क्षमताओं रुचियों, रुझानों तथा व्यावसायिक गुणों को ध्यान में रखकर समुचित कार्य में लगाया जाना चाहिए।

सन् 1964 में डॉ० दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में गठित आयोग ने निर्देशन एवं परामर्श की तात्कालिक स्थिति का अध्ययन करके उसमें सुधार हेतु अनेक महत्वपूर्ण संस्तुतियां दीं -

1. निर्देशन का उद्देश्य समायोजनात्मक व विकासात्मक दोनों है।
2. निर्देशन सभी छात्रों को सतत रूप से दिया जाना चाहिए।
3. प्राथमिक स्कूल शिक्षकों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में सरल नैदानिक परीक्षण तथा व्यक्तिगत भिन्नता को सम्मिलित करना चाहिए।
4. निर्देशन सेवाओं को प्रशिक्षण संस्थाओं में शुरू करना चाहिए।

5. प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर बालकों व अभिभावकों को भावी शिक्षा के चयन में मार्गदर्शन करना चाहिए।
6. सभी माध्यमिक विद्यालयों में न्यूनतम निर्देशन सेवा प्रदान की जानी चाहिए।
7. निर्देशन साहित्य, व्यावसायिक सूचना-सामग्री तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विकास के कार्यक्रम बढ़ाए जाने चाहिए।

मुदालियर आयोग तथा कोठारी आयोग के द्वारा निर्देशन के विकास के लिए की गई संस्तुतियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण थीं। इन सुझावों के फलस्वरूप शिक्षा संस्थाओं में निर्देशन सेवाओं की व्यवस्था करने के प्रयासों को तीव्रगति मिली। परन्तु इन प्रयासों के बावजूद भी भारत में निर्देशन की स्थिति को संतोषप्रद स्वीकार नहीं किया जा सकता है। छात्रों की योग्यता व रुझान को देखते देखते हुए उन्हें उचित मार्गदर्शन देने तथा शैक्षिक, सामाजिक व व्यावसायिक जीवन में उन्हें अच्छी तरह से समायोजित होने में सहायता देने की दृष्टि से निर्देशन सेवाओं का विस्तार किये जाने की आवश्यकता है। वास्तव में सभी छात्रों को, सभी स्तरों पर, सभी प्रकार का निर्देशन सतत रूप से प्रदान करने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम तैयार किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा करने पर ही निर्देशन के कार्य को सुचारु रूप से चलाकर देश की मानव-प्रतिभा को देश निर्माण के कार्य में अपना अधिकतम योगदान करने में सक्षम बनाया जा सकता है। केन्द्र व राज्य सरकार को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

निःसन्देह भारत में निर्देशन के क्षेत्र में हुई प्रगति बहुत धीमी रही है। निर्देशन की आवश्यकता तथा महत्व को समझ कर अनेक शिक्षा संस्थाओं द्वारा निर्देशन मनोविज्ञान की शाखायें खोली जा चुकी हैं तथा शैक्षिक व व्यावसायिक व्यूरो की स्थापना भी की गई है। निर्देशन की वर्तमान स्थिति को संतोषप्रद नहीं कही जा सकती है। निर्देशन सेवाओं का समुचित विकास न हो पाने के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं। निर्देशन के विकास में आने वाली प्रमुख समस्यायें निम्नवत हैं-

1. अप्रशिक्षित अध्यापक तथा निर्देशक

हमारे देश में अभी भी प्रशिक्षित शिक्षकों तथा प्रशिक्षित निर्देशकों का अभाव है जिसके कारण निर्देशन कार्य में अत्यन्त कठिनाई होती है। निर्देशन देना कोई सरल कार्य नहीं है केवल योग्य, प्रशिक्षित तथा धैर्यशील व्यक्ति ही निर्देशन का कार्य सम्पादित कर सकते हैं। अयोग्य निर्देशक के द्वारा गलत निर्देशन प्राप्त करने से अच्छा होगा कि कोई निर्देशन नहीं दिया जाये। आवश्यकता इस बात की है कि निर्देशन प्रशिक्षण के कार्यक्रम को प्रोत्साहित किया जाये, प्रशिक्षित व्यक्तियों को निर्देशक से रूप में नियुक्त किया जाये तथा अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में निर्देशन विधियों को सम्मिलित किया जाये।

2. अध्यापकों पर अधिक कार्य भार

हमारे देश में शिक्षकों को शिक्षण कार्य में अत्यधिक व्यस्त रहना पड़ता है जिसके कारण यह किसी अन्य कार्य हेतु समय नहीं निकाल पाता। समय न मिल पाने के कारण अध्यापक के लिए निर्देशन देना असम्भव हो जाता है।

3. अध्यापक-छात्र अनुपात

शिक्षा-संस्थाओं में अध्यापकों तथा छात्रों की संख्या में असंगत अनुपात होने के कारण निर्देशन प्रक्रिया असम्भव सी हो जाती है। सामान्यतः एक अध्यापक पर 50 से भी अधिक छात्र आते हैं। एक शिक्षक 50 छात्रों को सही ढंग से निर्देशित कर सकता है, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। अध्यापक छात्र अनुपात का अधिक होना निर्देशन की

दृष्टि से अत्यंत घातक है। इसलिए शिक्षा संस्थाओं में अध्यापक-छात्र अनुपात को कम करने की आवश्यकता है।

4. प्रमापीकृत परीक्षणों का अभाव

मापन उपकरण निर्देशन प्रक्रिया की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामग्री है। परीक्षण के अभाव में छात्र की योग्यताओं, रुचियों अथवा व्यक्तित्व के बारे में समुचित जानकारी सम्भव नहीं हो सकती है जब छात्र के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती, तब उसे निर्देशन देना कैसे सम्भव हो सकता है। छात्रों के द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा में प्रमापीकृत परीक्षण तैयार करने की तीव्र आवश्यकता है जिससे छात्रों के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जाना सम्भव हो सके।

5. अशिक्षित माता-पिता

भारत की अधिकांश ग्रामीण जनसंख्या अभी तक अशिक्षित है। अधिकांश माता-पिता निर्देशन के महत्व को नहीं समझते हैं। वे अपनी पसंद-नापसंद को बालकों के ऊपर थोपने का प्रयास करते हैं। माता-पिता को बालकों के मनोविज्ञान के सम्बन्ध में प्रारम्भिक जानकारी प्रदान करने की महती आवश्यकता है जिससे वे निर्देशन के महत्व को समझ सकें।

6. सुविधाओं की कमी

निर्देशन का समुचित लाभ तथा आवश्यकता तभी सम्भव है जब बालकों को उनकी योग्यता, क्षमता तथा रुचि के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने की सुविधायें उपलब्ध हों। विज्ञान व गणित में प्रतिभा सम्पन्न छात्र को तकनीकी व अभियांत्रिकी पाठ्यक्रमों में जाने का निर्देशन तभी दिया जा सकता है जब उस छात्र को इसकी सुविधायें उपलब्ध हो सकती हैं।

7. अंग्रेजी का आधिपत्य

हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनाने तथा मातृभाषा व क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा प्रदान करने के प्रावधानों के बावजूद हमारे देश में अंग्रेजी भाषा का आधिपत्य बना हुआ है। अंग्रेजी भाषा का आधिपत्य सम्प्रेषण में कठिनाई उत्पन्न करता है। काफी छात्रों की समस्या भाषागत होती है। निर्देशन को प्रभावशाली बनाने के लिए भाषायी समस्या के स्थायी समाधान की आवश्यकता है।

8. आर्थिक विपन्नता

हमारे देश की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय है। अधिकांश शिक्षा-संस्थायें घाटे में चल रही हैं। उनसे यह उम्मीद करना कि वे होने वाले खर्च में भार वहन कर सकेंगे, व्यर्थ ही है। आर्थिक कठिनाई के कारण निर्देशन क्रिया ठप सी हो गई है। निर्देशन कार्य के लिए वित्त की अतिरिक्त व्यवस्था करके इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है।

9. शोध का अभाव

निर्देशन के क्षेत्र में हमारे देश में शोध कार्य बहुत कम हुए हैं। निर्देशन प्राविधियों की अधिकांश जानकारी विदेशों से आयातित है। निर्देशन प्रक्रिया में सुधार के लिए इस क्षेत्र में शोध कार्यों की आवश्यकता है। निर्देशन के क्षेत्र में शोध कार्यों को प्रोत्साहित करके इस कमी को दूर किया जा सकता है।

सारांश

शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन अत्यंत आवश्यक है। निर्देशन से तात्पर्य व्यक्ति को निर्णय लेने में सहायता प्रदान करने से है। निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति को उसकी योग्यताओं का ज्ञान कराकर उनके अनुरूप शैक्षिक व व्यावसायिक अवसरों की जानकारी प्रदान करना है। वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति की वर्तमान जटिल परिस्थितियों में निर्देशन अत्यंत आवश्यक है।

पाठ्यविषयों के चयन में विद्यालय में समायोजन करने के लिए, शैक्षिक प्रक्रिया में वांछित परिवर्तन लाने के लिए तथा छात्रों को प्रोत्साहित करने के लिए शैक्षिक निर्देशन अत्यंत आवश्यक है। विभिन्न व्यवसायों के लिए आवश्यक योग्यताओं की जानकारी प्रदान करने के लिए, विभिन्न रोजगारों की परिस्थितियों को समझने के लिए, रोजगारों के अवसरों की जानकारी के लिए तथा व्यवसाय में उन्नति के लिए व्यावसायिक निर्देशन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया में वार्तायें, साक्षात्कार, परीक्षण आदि विधाओं का प्रयोग किया जाता है। भारतवर्ष में शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन की वर्तमान स्थिति अत्यंत दयनीय है। प्रशिक्षित निर्देशकों का अभाव तथा प्रमापीकृत परीक्षणों की कमी इसके लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है।

Reference

1. Singh Bobender, Pandey Munish kumar, *Guidance and Counselling in school, 2022, RL Book, Meerut*
2. Sharma RA, Chatturvedi Sikha, *Fundamental of Guidance and Counselling, 2018, RL Book, Meerut*
3. Gupta SP, Gupta Alka, *Advance Educational Psychology, 2007 , Shardha Pushkar Bhavan , Allahabad*
4. पाल एस०के० (1968) 'गाइडेन्स इन मैनी लेण्ड्स-एजुकेशनल वोकेशनल एण्ड परसनल सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद।
5. मेहन्दी, बाकर, (1978) 'गाइडेन्स इन स्कूल्स नेशनल काउन्सिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग' दिल्ली।
6. पाण्डेय, के०पी० (1987) 'शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के आधार' अमिताश प्रकाशन, दिल्ली।
7. जायसवाल, सीताराम (1987) 'शिक्षा में निर्देशन और परामर्श' विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।



रुचि, अभिधमता, अभिवृत्ति तथा मूल्य

डॉ. रीना राय

Former Research Scholar

शिक्षा एवं कौशल विकास विभाग

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय

महू, मध्य प्रदेश

परिचय:

रुचि, अभिधमता, अभिवृत्ति, और मूल्य चारों विकल्पों का व्यक्ति के विकास और सफलता में महत्वपूर्ण योगदान होता है। रुचि व्यक्ति के जीवन में उत्साह और प्रेरणा प्रदान करती है और वह अपने पसंदीदा काम में समर्थ होता है।

अभिधमता व्यक्ति के प्राकृतिक या प्राप्त योग्यताओं को प्रकट करती है, जिससे वह अपने क्षेत्र में अधिक प्रभावी होता है। अभिवृत्ति व्यक्ति के जीवन दृष्टिकोण और सम्प्रेषण पर असर डालती है, जो उसकी सोच और व्यवहार को निर्धारित करती है। मूल्य व्यक्ति के नैतिक मूल्यों और आदर्शों को प्रतिनिधित्व करते हैं, जो उसके निर्णयों और व्यवहार में मान और ईमानदारी को स्थापित करते हैं। इन चार तत्वों का सही समन्वय व्यक्ति को एक संतुलित, समर्थ, और नैतिक जीवन जीने में मदद करता है, जिससे वह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल हो सकता है।

रुचि और मनोविज्ञान

रुचि मनोविज्ञान में व्यक्ति के भावनात्मक, मानसिक, और जीवनीय प्रकृति को दर्शाने वाला महत्वपूर्ण तत्व है। यह व्यक्ति के व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में भूमिका निभाता है।

रुचि की परिभाषा:

रुचि एक भावनात्मक अवधारणा या आकर्षण होता है जिसे व्यक्ति किसी विशेष विषय, क्रिया, या गतिविधि में महसूस करता है।

मनोविज्ञान में रुचि की विभिन्न परिभाषाएं हैं:

संज्ञानित परिभाषा: रुचि एक भावनात्मक और मानसिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति को किसी विशेष विषय, गतिविधि, या विकल्प की प्रति आकर्षण होता है।

मानसिक प्रक्रिया परिभाषा: रुचि व्यक्ति के मानसिक प्रक्रिया का एक पहलू है जो उसे किसी विषय या विकल्प की ओर प्रवृत्त करता है।

समाजशास्त्रिक परिभाषा: रुचि व्यक्ति के सामाजिक परिवेश में उसके साथी, परिवार, और समाज के प्रति उसकी प्रतिक्रिया को दर्शाती है।

नैतिक परिभाषा: रुचि व्यक्ति की नैतिक और मौलिक प्रेरणा को प्रकट करती है, जो उसे जीवन में उत्साह और प्रेरणा प्रदान करती है।

उत्पादकता परिभाषा: रुचि व्यक्ति की उत्पादकता और क्रियाशीलता को प्रेरित करती है, जिससे वह अपने कार्य में अधिक सक्रिय बनता है।

ये परिभाषाएं रुचि के मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक, और नैतिक पहलू को व्यक्त करती हैं और इसे अध्ययन करने में मदद करती हैं।

मनोवैज्ञानिक पहलू:

प्रेरणा: रुचि व्यक्ति को एक विशेष विषय या कार्य में सक्रिय बनाती है और उसे उस पर अधिक जानने और समझने की प्रेरणा प्रदान करती है।

स्थिरता: रुचि अवधारणाओं और पसंदों में स्थायित्व और स्थिरता को दर्शाती है, जो व्यक्ति के जीवन में निरंतरता और स्थिरता लाती है।

व्यक्तिगतता: हर व्यक्ति की रुचियां अद्वितीय होती हैं और उसके व्यक्तिगत अनुभवों, संवेदनाओं, और जीवन स्थितियों पर आधारित होती हैं।

प्रभाव:

रुचि व्यक्ति की प्रेरणा, संवेदनशीलता, और उसके अभिमुखता पर प्रभाव डालती है। यह व्यक्ति के विकास और संवेदनशीलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मनोविज्ञान में रुचि के कुछ उदाहरण हैं:

विज्ञान: किसी व्यक्ति को खोज और प्रयोगशाला में नये वैज्ञानिक अनुसंधानों में रुचि हो सकती है।

कला: एक व्यक्ति को पेंटिंग, संगीत, या नृत्य में रुचि होने का उदाहरण दिया जा सकता है।

खेल: क्रिकेट, फुटबॉल, या टेनिस जैसे खेलों में रुचि वाले व्यक्ति को खेल खेलने में मजा आता है।

पढ़ाई: किसी को इतिहास, जियोमेट्री, या साहित्य में रुचि हो सकती है।

सामाजिक गतिविधियां: किसी व्यक्ति को समाज सेवा, संगठन कार्य, या समुदाय में योगदान में रुचि हो सकती है।

प्रकृति: जंगल यात्रा, पर्वतारोहण, या फिशिंग जैसी गतिविधियों में रुचि वाले व्यक्ति को प्रकृति से जुड़ी गतिविधियों में भाग लेने में मजा आता है।

ये उदाहरण दिखाते हैं कि रुचि व्यक्ति के विभिन्न क्षेत्रों में हो सकती है और व्यक्ति को उस क्षेत्र में अधिक सक्रिय बनाती है।

संभावित विकास:

रुचि को समझकर व्यक्ति अपने विकल्पों को समझ, निर्णय लेने, और जीवन में संतुलन बनाए रखने में सहायक हो सकता है।

निष्कर्ष:

रुचि मनोविज्ञान में व्यक्ति के प्रत्येक आयाम में अहम भूमिका निभाती है और उसके विकास और संवेदनशीलता में महत्वपूर्ण है। यह व्यक्ति के जीवन की प्रकृति, दृष्टिकोण, और समर्थताओं को प्रकट करती है।

अभिमुखता और मनोविज्ञान

अभिमुखता मनोविज्ञान में व्यक्ति की प्राकृतिक या विकसित योग्यताओं को दर्शाता है, जो उसे विशेष क्षेत्रों में प्रभावी बनाती है। यह व्यक्ति की क्षमता और प्रदर्शन की गुणवत्ता को मापता है।

अभिक्षमता की परिभाषा:

अभिक्षमता वह संगठित तरीके से विचारने, सोचने, और कार्रवाई करने की क्षमता है जो व्यक्ति को विशेष क्षेत्र में सक्रिय बनाती है।

मनोविज्ञान में अभिक्षमता की विभिन्न परिभाषाएं हैं:

संज्ञानित परिभाषा: अभिक्षमता व्यक्ति की प्राकृतिक या प्राप्त शीलता है जिससे वह किसी विशेष कार्य, कौशल, या गतिविधि में सक्षम होता है।

मानसिक प्रक्रिया परिभाषा: अभिक्षमता व्यक्ति के मानसिक प्रक्रिया का एक अहम घटक है जो उसे नई सीख, समस्या का समाधान, या क्रियाशील गतिविधियों में प्रवृत्त करता है।

शैक्षिक परिभाषा: अभिक्षमता व्यक्ति के शैक्षिक योग्यता और शिक्षा में प्रतिभा को प्रकट करती है, जो वह अध्ययन और सीखने में प्रदर्शित करता है।

प्रतिस्पर्धा परिभाषा: अभिक्षमता व्यक्ति की प्रतिस्पर्धा और संघर्ष क्षमता को प्रकट करती है, जिससे वह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होता है।

नैतिक परिभाषा: अभिक्षमता व्यक्ति की उत्कृष्टता, समर्थता, और निष्ठा को प्रकट करती है, जिससे वह अपने काम में पूर्णता प्राप्त करता है।

ये परिभाषाएं अभिक्षमता के प्राकृतिक, मानसिक, शैक्षिक, सामाजिक, और नैतिक पहलू को प्रकट करती हैं और इसे अध्ययन करने में मदद करती हैं।

मनोवैज्ञानिक पहलू:

प्राकृतिक और प्राप्त अभिक्षमता: अभिक्षमता में दो प्रमुख तरह की होती हैं - प्राकृतिक अभिक्षमता, जो व्यक्ति के जन्म से होती है, और प्राप्त अभिक्षमता, जो अनुभव, प्रशिक्षण, और अभ्यास से विकसित होती है।

विभिन्न प्रकार की अभिक्षमता: अभिक्षमता विभिन्न क्षेत्रों में हो सकती है, जैसे कि गणित, संगीत, कला, विज्ञान, और अन्य क्षेत्र।

संबंध और प्रभाव: अभिक्षमता व्यक्ति के प्रेरणा, स्वाभाविक प्रेरणा, और संवेदनशीलता को प्रभावित करती है, जिससे उसके विकास और में महत्वपूर्ण योगदान दिया जाता है।

संभावित विकास:

अभिक्षमता को समझकर व्यक्ति अपनी अद्वितीयता और समर्थता को पहचान, विकसित, और संवेदनशीलता में प्रयोग कर सकता है।

मनोविज्ञान में अभिक्षमता के कुछ उदाहरण हैं:

गणितीय अभिक्षमता: किसी व्यक्ति को गणितीय समस्याओं को समझने और हल करने में अच्छी क्षमता हो सकती है।

संगीतीय अभिक्षमता: किसी को संगीत या संगीत इंस्ट्रूमेंट को बजाने में अच्छी क्षमता हो सकती है।

भाषाई अभिक्षमता: किसी व्यक्ति को अधिक भाषाओं को सीखने और बोलने में अच्छी क्षमता हो सकती है।

वैज्ञानिक अभिक्षमता: किसी को विज्ञान संबंधित प्रश्नों को अध्ययन करने और समझने में अच्छी क्षमता हो सकती है।

तकनीकी अभिक्षमता: किसी व्यक्ति को मशीनों, कंप्यूटर, या अन्य तकनीकी प्रणालियों का उपयोग करने में अच्छी क्षमता हो सकती है।

व्यक्तिगत अभिक्षमता: किसी व्यक्ति को लोगों को मोटिवेट करने, संबंध बनाने, और अन्य लोगों की भावनाओं को समझने में अच्छी क्षमता हो सकती है।

ये उदाहरण दर्शाते हैं कि अभिक्षमता व्यक्ति की विभिन्न क्षमताओं और योग्यताओं को प्रकट करती है और उसे विशेष क्षेत्र में प्रभावी बनाती है।

निष्कर्ष:

अभिक्षमता मनोविज्ञान में व्यक्ति की क्षमताओं और योग्यताओं की महत्वपूर्ण पहचान है, जो उसे विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने में मदद करती है। यह व्यक्ति की विकास और प्रगति की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

अभिवृत्ति और मनोविज्ञान

अभिवृत्ति मनोविज्ञान में व्यक्ति के विचार, भावनाएं, और दृष्टिकोण को दर्शाती है, जो उसके जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रभाव डालते हैं। यह व्यक्ति की जीवनशैली, संबंध, और निर्णयों को मार्गदर्शन प्रदान करती है।

अभिवृत्ति की परिभाषा:

अभिवृत्ति व्यक्ति के मानसिक, भावनात्मक, और व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं का एक सेट है जो उसके विभिन्न स्थितियों और अनुभवों पर आधारित होती है।

मनोविज्ञान में अभिवृत्ति की विभिन्न परिभाषाएं हैं:

संज्ञानित परिभाषा: अभिवृत्ति व्यक्ति के विचारों, भावनाओं, और विश्वासों का समूह है जो उसके व्यवहार और प्रतिक्रियाओं को प्रेरित करता है।

मानसिक प्रक्रिया परिभाषा: अभिवृत्ति व्यक्ति की मानसिक प्रक्रिया का एक हिस्सा है जो उसे विशेष प्रकार के विषयों या व्यक्तियों के प्रति प्रतिस्पर्धा, सहानुभूति, या विरोध का अनुभव कराता है।

सामाजिक परिभाषा: अभिवृत्ति व्यक्ति के सामाजिक संवाद में उसके सामाजिक संबंध, सम्प्रेषण, और समय-समय पर व्यक्त की प्रतिक्रिया को दर्शाती है।

नैतिक परिभाषा: अभिवृत्ति व्यक्ति की नैतिक और नैतिकता पूर्ण दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करती है, जो उसके नैतिक निर्णयों और व्यवहार में प्रकट होती है।

व्यक्तिगत परिभाषा: अभिवृत्ति व्यक्ति की व्यक्तिगतता, स्वभाव, और व्यक्तित्व को प्रतिबिंबित करती है, जिससे उसके व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में सहायक होती है।

ये परिभाषाएं अभिवृत्ति के मानसिक, सामाजिक, नैतिक, और व्यक्तिगत पहलू को प्रकट करती हैं और इसे अध्ययन करने में मदद करती हैं।

मनोवैज्ञानिक पहलू:

विचार और प्रयोग: अभिवृत्ति व्यक्ति की अन्तरंग मानसिकता को दर्शाती है जो उसके विचारों और भावनाओं में प्रकट होती है।

संबंध और असर: अभिवृत्ति व्यक्ति के समाज में स्थान, संबंध, और अन्य लोगों के प्रति उसके व्यवहार पर प्रभाव डालती है।

प्रतिस्पर्धा और समझ: अभिवृत्ति व्यक्ति की सोच, प्रतिक्रियाएं, और निर्णयों में संघर्ष और समझ को प्रकट करती है।

संभावित विकास:

अभिवृत्ति को समझकर व्यक्ति अपनी भावनाओं और दृष्टिकोण को पहचान, विकसित, और संवेदनशीलता में प्रयोग कर सकता है।

मनोविज्ञान में अभिवृत्ति के कुछ उदाहरण हैं:

जीवन दृष्टिकोण: जिस व्यक्ति का अभिवृत्ति सकारात्मक है, वह जीवन की हर स्थिति में अच्छा देखने की प्रवृत्ति रखता है।

कार्य में अभिवृत्ति: जो व्यक्ति कार्य में सक्रिय और उत्साही है, उसका अभिवृत्ति कार्य में सक्रिय भाग लेने की प्रेरणा दिखाता है।

सामाजिक संबंध: जिस व्यक्ति का अभिवृत्ति सामाजिक संबंधों को महत्व देने वाला है, वह लोगों के साथ मेल-जोल अच्छा रखता है।

समस्या परिभाषा: जो व्यक्ति जीवन की समस्याओं को एक अवसर के रूप में देखता है, उसका अभिवृत्ति समस्याओं को हल करने में उत्सुकता दिखाता है।

स्वीकृति: जो व्यक्ति नई विचारों और धारणाओं को स्वीकार्य रूप में देखता है, उसका अभिवृत्ति खुले और प्रयास कर्मी होता है।

विचारों और मान्यताओं में अभिवृत्ति: जो व्यक्ति विचारों और मान्यताओं को निष्कर्ष और अभिवृत्ति के आधार पर चुनता है, उसका अभिवृत्ति निर्धारित और स्थिर होता है।

ये उदाहरण दर्शाते हैं कि अभिवृत्ति व्यक्ति के विचार, भावनाओं, और दृष्टिकोण को प्रकट करती है और उसके व्यवहार में प्रभाव डालती है।

अभिवृत्ति निर्माण का तीन-घटक मॉडल

निष्कर्ष:

अभिवृत्ति मनोविज्ञान में व्यक्ति की मानसिकता और उसके विभिन्न पहलुओं की महत्वपूर्ण पहचान है। यह व्यक्ति की विकास, संबंध, और व्यवहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और उसे समझ और संवेदनशीलता में वृद्धि प्रदान करती है।

मूल्य और मनोविज्ञान

मूल्य मनोविज्ञान में व्यक्ति के नैतिक, मानविक, और विश्वास प्रणाली को दर्शाते हैं, जो उसके निर्णयों और व्यवहार को प्रेरित करते हैं। मूल्य उसकी जीवन दृष्टिकोण और सोच को मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

मूल्यों की परिभाषा:

मूल्य व्यक्ति की नैतिक और निष्ठावानीयता को दर्शाते हैं, जो उसके निर्णयों और व्यवहार में निर्धारित करते हैं।

मनोविज्ञान में मूल्यों की विभिन्न परिभाषाएं हैं:

संज्ञानित परिभाषा: मूल्य व्यक्ति की नैतिक, सामाजिक, और मानविक मान्यताओं और धारणाओं को प्रतिबिंबित करता है, जो उसके विचारों और व्यवहार में प्रकट होते हैं।

नैतिक परिभाषा: मूल्य व्यक्ति की नैतिकता, ईमानदारी, और सत्यनिष्ठा की मान्यताओं को प्रकट करता है, जो उसके नैतिक निर्णयों और व्यवहार में प्रतिष्ठित होते हैं।

सामाजिक परिभाषा: मूल्य व्यक्ति के सामाजिक संबंध, सामाजिक न्याय, और सामूहिक भलाई की मान्यताओं को प्रकट करता है।

व्यक्तिगत परिभाषा: मूल्य व्यक्ति की व्यक्तिगतता, स्वभाव, और विशेषताओं को प्रतिबिंबित करता है, जो उसके व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण होते हैं।

शैक्षिक परिभाषा: मूल्य व्यक्ति की शैक्षिक मान्यताओं, ज्ञान, और सीखने की प्राथमिकताओं को प्रतिबिंबित करता है, जो उसके शैक्षिक और व्यक्तित्व विकास में सहायक होते हैं।

ये परिभाषाएं मूल्यों के नैतिक, सामाजिक, व्यक्तिगत, और शैक्षिक पहलू को प्रकट करती हैं और इसे अध्ययन करने में मदद करती हैं।

मनोवैज्ञानिक पहलू:

व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्य: मूल्य व्यक्ति के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

निर्णय और प्रतिक्रिया: मूल्य व्यक्ति के निर्णयों, प्रतिक्रियाओं, और व्यवहार पर प्रभाव डालते हैं।

स्थिरता और प्रभाव: मूल्य व्यक्ति की निष्ठा और स्थिरता में मदद करते हैं और उसे अपने मार्ग पर आगे बढ़ने में सहायक होते हैं।

संभावित विकास:

मूल्यों को समझकर व्यक्ति अपनी निष्ठा और मूल्य प्रणाली को पहचान, विकसित, और संवेदनशीलता में प्रयोग कर सकता है।

निष्कर्ष:

मूल्य मनोविज्ञान में व्यक्ति के नैतिक और मानविक मानकों की महत्वपूर्ण पहचान है। यह व्यक्ति के निर्णय, विचार, और व्यवहार में सहायक भूमिका निभाते हैं और उसे समझ और संवेदनशीलता में वृद्धि प्रदान करते हैं।

मनोविज्ञान में मूल्यों के कुछ उदाहरण हैं:

नैतिकता: जिस व्यक्ति के लिए नैतिकता महत्वपूर्ण है, वह ईमानदारी और सत्यनिष्ठा में विश्वास रखता है।

समाज सेवा: जो व्यक्ति समाज सेवा में विश्वास रखता है, वह लोगों की मदद करने में अधिक उत्सुक होता है।

परिवार मूल्य: जिस व्यक्ति के लिए परिवार महत्वपूर्ण है, वह परिवार के साथ समय बिताने में अधिक रुचिवान होता है।

स्वतंत्रता: जो व्यक्ति स्वतंत्रता को महत्व देता है, वह अपनी आत्मनिर्भरता को महत्वपूर्ण समझता है।

शिक्षा: जो व्यक्ति शिक्षा में महत्व देता है, वह ज्ञान प्राप्ति और स्वयं को बेहतर बनाने में जुटा रहता है।

धर्म: जिस व्यक्ति के लिए धर्म महत्वपूर्ण है, वह धार्मिक अनुष्ठानों और मान्यताओं का पालन करता है।

ये उदाहरण दर्शाते हैं कि मूल्य व्यक्ति की नैतिक, मानविक, और नैतिक प्रतिस्पर्धा को प्रकट करते हैं और उसके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

रुचि, अभिधमता, अभिवृत्ति, और मूल्यों के बीच संबंध मानव व्यक्तित्व में गहरा और मानवीय पहलु दिखाते हैं।

रुचि और अभिधमता: जब व्यक्ति किसी विषय में रुचि लेता है, तो उसकी अभिधमता उसे उस विषय में अधिक सक्रिय बनाती है। इस तरह, रुचि और अभिधमता एक-दूसरे को प्रोत्साहित करते हैं और व्यक्ति को उस क्षेत्र में महारती प्राप्त करने में मदद करते हैं।

रुचि और अभिवृत्ति: व्यक्ति की रुचि उसकी अभिवृत्ति को प्रेरित कर सकती है। अगर किसी के पास सकारात्मक रुचि है, तो उसकी अभिवृत्ति भी सकारात्मक होती है।

अभिधमता और मूल्य: अभिधमता व्यक्ति के मूल्यों और धारणाओं को प्रकट करती है। व्यक्ति जो अभिधमता से किसी काम में सफल होता है, वह अपने मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध रहता है।

अभिवृत्ति और मूल्य: व्यक्ति की अभिवृत्ति उसके मूल्यों को प्रतिबिंबित करती है। अगर किसी का अभिवृत्ति सकारात्मक है, तो वह अपने मूल्यों के अनुसार जीवन जीता है।

इस प्रकार, रुचि, अभिधमता, अभिवृत्ति, और मूल्य एक-दूसरे के साथ संबंधित हैं और व्यक्ति के संपूर्ण विकास और समाज में सहभागिता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

निष्कर्ष: रुचि, अभिधमता, अभिवृत्ति, और मूल्यों की आवश्यकता मानव जीवन और समाज में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

इन चारों तत्वों की सही समझ और प्रयोग से व्यक्ति स्वस्थ, संतुलित, और समृद्ध जीवन जीता है और समाज में भी विकास करता है। इनके बिना जीवन में निष्क्रियता, असमंजस, और असफलता का अनुभव होता है।

सन्दर्भ:

- Eagly, A. H. (1992) Uneven progress: Social psychology and the study of attitudes. *Journal of Personality and Social Psychology*; 63(5): 693–710.
- Snow, R. E. (1992) Aptitude Theory: Yesterday, Today, and Tomorrow. *Educational Psychologist*; 27(1): 5-32.
- Sherif, M., & Cantril, H. (1947) The psychology of ego-involvements: Social attitudes and identifications. John Wiley & Sons Inc.
- Bingham, W. V. (1942) The army personnel classification system. *The Annals of the American Academy of Political and Social Sciences*; 220: 18-28.
- Ames, C.A. (1991). Motivation: What Teachers Need to Know. *Teachers College Record*, 91 (3), 409-422.
- Blake, B., & Pope, T. (2008). Developmental Psychology: Incorporating Piaget's and Vygotsky's Theories in Classrooms. *Journal of Cross-Disciplinary Perspectives in Education*, 1 (1), 59-67.
- Bojuwoye, O., Moletsane, M., Stofile, S., Moolla, M., & Sylvester, F. (2014). Learners' Experiences of Learning Support in Selected Western Cape Schools. *South African Journal of Education*, 34 (1), 1-15.

- Cohen, E. (1994). *Restructuring the Classroom: Conditions for Productive Small Groups*. United Publications, New York, pp. 321-348.
- Crombie, G., Pike, S.W., Silverthorn, N., Jones, A., & Piccinin, S. (2003). Students' Perceptions of their Classroom Participation and Instructor as a Function of Gender and Context. *The Journal of Higher Education*, 74 (1), 51-76.
- Dallimore, E.J., Hertenstein, J.H., & Platt, M.B. (2004). Classroom Participation and Discussion Effectiveness: Student-Centered Strategies. *Communication Education*, 53 (1), 103-115.
- Ackoff, R. (1979). The Future of Operational Research is Past. *Journal of the Operational Research Society*, 30(2), 93–104. Doi:10.1057/jors.1979.22
- Ajzen, I. (1991). The Theory of Planned Behavior. *Organizational Behavior and Human Decisions*, 50, 179–211.
- Ajzen, I. (2005). *Attitudes, Personality, and Behavior*. New York: McGraw-Hill International.
- Ajzen, I., & Fishbein, M. (2005). The Influence of Attitudes on Behavior. In *The Handbook of Attitudes* (pp. 173–221). Mahwah, NJ: Lawrence Erlbaum Associates.
- Ansell, C., & Torfin, J. (Eds.). (2014). *Public Innovation Through Collaboration and Design*. London: Routledge.
- Atladottir, G., Hvannberg, E. T., & Gunnarsdottir, S. (2011). Comparing task practicing and prototype fidelities when applying scenario acting to elicit requirements. *Requirements Engineering*, 17(3), 157–170. Doi:10.1007/s00766-011-0131-2
- Augoustinos, M., Walker, I., & Donaghue, N. (2006). *Social Cognition: An Integrated Introduction*. SAGE Publications Ltd.
- Ballon, B., & Skinner, W. (2008). Attitude is a Little Thing That Makes a Big Difference: Reflection Techniques for Addiction Psychiatry



Minimising Academic Stress for Higher Secondary Students in the light of NEP 2020

Abha Kumari

Ph.D., Research Scholar

St. Xavier's College of Education (Autonomous)

Digha Ghat, Patna

Introduction

Adolescence is a critical developmental period characterized by significant physical, emotional, cognitive, and social changes. During this time, education performs an important role in shaping the future of young individuals, influencing their personal development, academic achievements, and career paths. Understanding the unique needs and challenges faced by adolescents in the educational context is essential for developing encouraging setting that stimulate learning and fostering growth and development. The educational journey during adolescence is shaped by essential developmental characteristics and poses unique challenges and opportunities:

Academic stress is a prevalent issue among senior secondary students, often manifesting in various physical and psychological symptoms that can hinder their overall health and achievement in performance. This stress is frequently driven by the intense pressure to perform well in exams, meet high parental and societal expectations, and secure a promising future. India's National Education Policy (NEP) 2020 was introduced with aims to address these challenges by overhauling the educational system to make it more holistic, enjoyable, and less burdensome. Academic stress in senior secondary students is multifaceted, stemming from a combination of academic workload, fear of failure, and the high-stakes nature of board examinations and competitive entrance tests. This stress can have a number of detrimental effects, such as anxiety, depression, burnout, and even a decrease in academic achievement. It is crucial to explore strategies and measures that may reduce this stress to promote a healthier and more conducive learning environment. Academic stress can stem from various factors related to the educational environment and the expectations placed on students.

Objectives of the Investigation

The primary objectives of this study are to:

1. The underlying causes of senior secondary pupils' academic stress.
2. Evaluate the potential impact of NEP 2020 on reducing academic stress.
3. Identify the effective strategies and recommendations that align with NEP 2020 to reduce learner's stress level.

Research Methodology:

A combination of qualitative and descriptive research methods are used. Numerous offline and internet sources, including journals, websites, papers, and other publications provided the secondary data. It also considers the extraction of summaries from different materials pertaining to educational policies.

Significance of the study

Understanding and addressing academic stress is essential for fostering a supportive educational environment that promotes the pupils' overall development. By aligning with the principles of NEP 2020, this study aims to assist with the creation of a more balanced, inclusive, and stress-free educational experience for senior secondary

students in India. Teachers, lawmakers and other stakeholders in the education system will find great value in the insights in the education sector to implement effective stress-reduction strategies and support the holistic development of students.

Sources of Academic Stress

The Indian education system, like many others globally, faces challenges of stress related to education among senior secondary pupils. This stress can be influenced by a variety of factors, including:

- **Pressure to Perform:** Expectations from parents, teachers, and society to excel academically can create significant stress. This distress may come from a desire to secure admission to prestigious colleges or universities.
- **Heavy Workload:** Balancing multiple subjects, assignments, projects, and exams can lead to feelings of overwhelm and stress, especially if students feel they have inadequate time to complete tasks to a satisfactory level.
- **Competitive Environment:** In environments where academic success is highly competitive, students may experience stress related to comparisons with their peers, fear of failure, and a constant need to outperform others.
- **High-Stakes Exams:** Exams such as college entrance exams or standardized tests can amplify stress due to their significant impact on future academic and career prospects.
- **Lack of Time Management Skills:** Stress can be increased by ineffective time management in managing extracurricular activities, social obligations and personal interests with curricular responsibilities.
- **Perceived Lack of Support:** Feeling unsupported by teachers, parents, or peers can exacerbate stress levels. This lack of support may manifest in absence of guidance, understanding, or encouragement.
- **Fear of Disappointing Others:** Students may fear disappointing their parents, teachers, or themselves if they are not meeting academic expectations, leading to increased stress and anxiety.
- **Perfectionism:** Striving for perfection in academic performance can lead to excessive stress, as students might establish unreasonable standards for themselves and feel constant pressure to meet or exceed them.
- **Poor Coping Mechanisms:** Inadequate coping strategies for managing stress, such as avoidance, substance use, or unhealthy lifestyle habits, can exacerbate the negative effects of academic stress.
- **Personal Issues:** Outside elements like family problems, financial difficulties, health issues, or social pressures can spill over into academic life and contribute to heightened stress levels.

Minimizing Academic Stress in the light of NEP 2020

Addressing senior secondary pupils stress related to their studies within the framework of the National Education Policy (NEP) 2020 involves a multi-faceted approach that encompasses various aspects of education, mental health, and support systems. Here's how the NEP 2020 can guide efforts to mitigate academic stress:

- **Holistic and Multidisciplinary Education:** NEP 2020 emphasizes a shift from rote learning to a more holistic and multidisciplinary approach. This means students are urged to investigate various subjects and disciplines, rather than focusing solely on exam-oriented studies. This approach can alleviate stress by allowing students to follow their passion and talents, thus reducing the pressure to succeed in a limited set of subjects.
- **Flexible Curriculum and Assessment:** The policy advocates for a flexible educational programme and evaluation system, including the introduction of

competency-based learning. This move reduces the emphasis on high-stakes exams and encourages continuous assessment depending on a student's overall performance and understanding. With less reliance on a single exam determining a student's future, could possibly decrease stress related to exam performance.

- **Focus on critical thinking and Problem-Solving:** NEP 2020 aims to foster critical thinking, creativity, and problem-solving skills among students. By focusing on enhancing these abilities instead of memorization, students are empowered to approach challenges with confidence, reducing anxiety associated with academic performance.
- **Reduced Academic Burden:** The policy recommends rationalizing curriculum content to reduce the academic burden on students. By streamlining syllabi and eliminating redundant topics, students can focus on mastering core concepts rather than feeling overwhelmed by excessive coursework.
- **Early Childhood Care and Education (ECCE):** NEP 2020 emphasizes the relevance of early childhood care and education, recognizing the formative years as crucial for holistic development. By providing a strong foundation during the early years, children are better equipped to handle academic challenges later on, potentially reducing stress in higher grades.
- **Counselling and Support Services:** The policy highlights the significance of psychological health and well-being in educational institutions. It suggests the creation of counselling and support services to address the psychological needs of students. By providing access to mental health resources, pupils are more capable of handling academic stress and seek help when needed.
- **Flexibility in Choice of Subjects and Careers:** NEP 2020 promotes flexibility in the choice of subjects and careers, allowing students to pursue their passions and interests. This flexibility can alleviate stress by reducing the pressure to conform to traditional career paths and expectations, empowering students to explore diverse opportunities.
- **Parental Engagement:** NEP 2020 encourages active involvement of parents in their children's education. Schools can organize workshops and seminars to educate parents regarding the significance of developing caring and encouraging environment at home, one that prioritizes overall well-being over academic performance alone.
- **Skill Development:** The policy emphasizes the integration of vocational education and skill development into the curriculum from an early age. Giving students the chance to develop practical skills alongside academic learning can enhance their confidence and reduce stress by offering alternative pathways to success beyond traditional academic achievements.
- **Technology Integration:** NEP 2020 advocates for the application of technology in education. Schools can leverage educational technology tools to personalize learning experiences, provide additional support to students who may be struggling academically, and provide adaptable learning opportunities that accommodate diverse learning styles, thereby reducing stress associated with one-size-fits-all teaching methods.

By aligning efforts with the principles outlined in NEP 2020, educators, policymakers, and stakeholders can work together to create a more nurturing and supportive educational environment that prioritizes the overall well-being of senior secondary students, thereby alleviating academic stress and fostering holistic development. Overall, NEP 2020 has the potential to create a more favourable setting for learning that prioritizes the holistic development and well-being of students, thereby

mitigating the factors contributing to academic stress. Nevertheless, effective execution will demand concerted efforts from educational establishments, decision-makers, educators, parents, and learners to express this concern.

Suggestions and Recommendations

For senior secondary pupil's general wellbeing and academic achievement, it is essential that they experience less educational stress as possible. These are a few suggestions and recommendations:

- **Establish a Supportive Environment:** Construct an efficient and nurturing environment both at school and at home. To quickly address any problems or issues as soon as they arise, parents teachers and learners should communicate openly.
- **Promote Time Management Skills:** Teach students efficient time management strategies, like making study schedules, prioritizing tasks, and breaking more complex jobs into smaller, more manageable ones. Students who have abilities in time management can avoid last-minute cramming and reduce stress.
- **Encourage a Balanced Lifestyle:** Emphasize the importance of maintaining a healthy way of living that incorporates regular exercise, sufficient sleep, and healthy nutrition. Exercise as well as enough rest can reduce stress levels and improve concentration.
- **Teach Stress Management Techniques:** Teach adolescents about proper stress management techniques such as techniques for concentrated meditation, deep breathing and progressive muscle relaxation. These methods can benefit pupils relax and stay calm during stressful situations.
- **Foster a Growth Mindset:** Encourage attitude of growth where students understand that intelligence and abilities can be developed through effort and perseverance. Teach them to view difficulties as chances of growth rather than obstacles to be feared.
- **Provide Academic Support:** Offer academic support services such as tutoring, study groups, and extra help program intended for pupils who could be struggling academically. Providing additional resources can make learners feel more confident and competent in their academic abilities.
- **Promote Self-Care Practices:** Encourage students to engage in self-care practices such as hobbies, creative outlets, and spending time with friends and family. Taking breaks and engaging in activities they enjoy may aid pupils to recharge and prevent burnout.
- **Reduce Performance Pressure:** Avoid placing excessive pressure on students to achieve certain academic outcomes. Instead, focus on their individual progress and growth, celebrating their efforts and achievements along the way.
- **Cultivate a Constructive School Culture:** Foster a productive and welcoming school culture where students feel valued, supported, and included. Promote kindness, empathy, and respect among students and staff members.
- **Address Test Anxiety:** Provide strategies for managing test anxiety, such as relaxation techniques, positive self-talk, and practicing test-taking skills. Creating a low-stress testing environment might help students to reduce their anxiety.

By implementing these suggestions and recommendations, schools can help minimize educational stress of young students and generate a more responsive and favourable atmosphere for learning.

Conclusion

Through encouraging experiential learning, critical thinking, and creativity, the NEP aims to foster an appealing environment for learning where students can explore

their interests and talents without the fear of failure. Additionally, the policy's focus on student well-being, including mental health support and stress management programs plays a crucial role assuring that students receive the necessary assistance to cope with academic challenges. However, the successful implementation of NEP 2020 necessitates cooperation from various stakeholders, including teachers, parents, and students. It is imperative to prioritize teacher training, infrastructural development, and effective communication to ensure that the objectives of the policy are met.

Overall, the National Education Policy 2020 provides a promising roadmap for minimizing stress and anxiety for students by promoting a more holistic and inclusive approach to education. Even so, its efficiency will be contingent on the commitment and concerted actions of all involved parties to create a supportive and nurturing learning environment for students.

References

1. Hess, R.S., & Copeland, E.P. (2001). Students' stress, coping strategies, and school completion: A longitudinal perspective. *School Psychology Quarterly*, 16 (4), 389-405.
2. Marwan Zaid Bataineh (2013). Academic stress among undergraduate students: the case of education faculty at King Saud University. *International Interdisciplinary Journal of Education – January 2013, Volume 2, Issue 1*, 82-88.
3. Prabu, P. S. (2015). A study on academic stress among higher secondary students. *International Journal of Humanities and Social Science Invention*, 4(10), 63-68.
4. Roy, K., Kamath, V. G., & Kamath, A. (2015). Determinants of adolescent stress: A narrative review. *European Journal of Psychology & Educational Studies*, 2(2), 48-56. doi: 10.4103/2395-2555.170719.
5. Sarita, S. (2015). Academic stress among students: role and responsibilities of parents. *International Journal of Applied Research*, 1(10), 385-388.
https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEPFinalEnglish_0.pdf

